जलते बुझते लोग

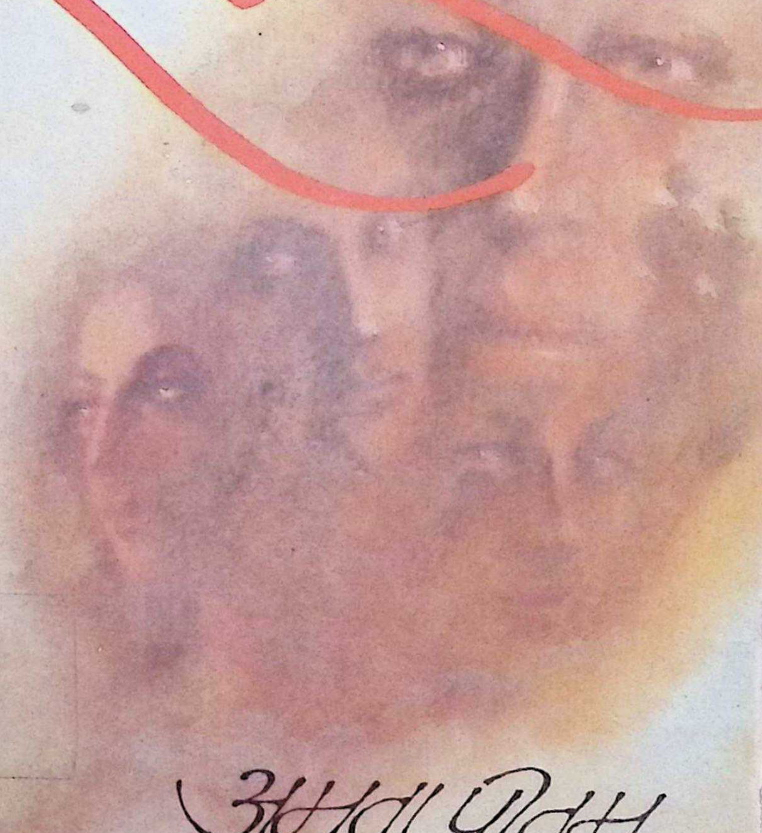

अमृता प्रीतम

४२२
र ज

''उठती जवानी की रगों में जाने क्या-क्या सुलगने लगता है, और जाने खुदा, एक तकदीर ज़ेहन में किस तरह खेलने लगती है-इसी का अनुमान कुछ उतर पाया है-इन तीनों लघु उपन्यासों में–

जलावतन–तन के थोड़े-से बरसों में, मन की अन्दर की सतह में उतर जाने की वह कहानी है, जो जलते बुझते अक्षरों में लिपटी हुई है–

जेबकतरे–यह एक उदास नस्ल की वह कहानी है, जिसमें किरदारों के पैर ज़िन्दा हैं, पैरों के लिए रास्ते मर गए हैं–

कच्ची सड़क–उठती जवानी में किस तरह एक कम्पन किसी के अहसास में उतर जाता है कि पैरों तले से विश्वास की ज़मीन खो जाती है–यही बहक गए बरसों के धागे इस कहानी में लिपटते भी हैं, मन-बदन को सालते भी हैं, और हाथ की पकड़ में आते भी हैं–

ये तीनों लघु उपन्यास उन किरदारों को लिए हुए हैं, जो उठती जवानी में चिन्तन की यात्रा पर चल दिए हैं। और इन तीनों का इकट्ठा प्रकाशन समय-और समाज का एक अध्ययन होगा।

जलते बुझते लोग

मूल्य : नब्बे रुपये (90.00)

संस्करण : 1994 © अमृता प्रीतम
JALTE BUJHTE LOG (3 Novels by Amrita Pritam)
IBSN : 81-7078-128-8
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

जलते बुझते लोग

अमृता प्रीतम

भारतीय राजदूतावास, काठमाण्डौ, नेपालको
सौजन्यबाट सप्रेम भेंट

राजपाल

7145
8045

८९१.४३३
प्र ३३३ ५

दो शब्द

उठती जवानी की रग़ों में जाने क्या-क्या सुलगने लगता है, और जाने खुदा, एक तकदीर ज़ेहन में किस तरह खेलने लगती है—इसी का अनुमान कुछ उतर पाया है—इन तीनों लघु उपन्यासों में—

जलावतन—तन के थोड़े-से बरसों में, मन की अन्तर-सतह में उतर जाने की वह कहानी है, जो जलते बुझते अक्षरों में लिपटी हुई है—

जेबकतरे—यह एक उदास नस्ल की वह कहानी है जिसमें किरदारों के पैर जिन्दा हैं, पर पैरों के लिए रास्ते मर गए हैं—

कच्ची सड़क—उठती जवानी में किस तरह एक कम्पन किसी के अहसास में उतर जाता है कि पैरों तले से विश्वास की ज़मीन खो जाती है—यही बहक गए बरसों के धागे इस कहानी में लिपटते भी हैं, मन-बदन को सालते भी हैं, और हाथ की पकड़ में आते भी हैं—

ये तीनों लघु उपन्यास उन किरदारों को लिए हुए हैं, जो उठती जवानी में चिन्तन की यात्रा पर चल दिए हैं। और इन तीनों का इकट्ठा प्रकाशन—समय काल का एक अध्ययन होगा।

—अमृता प्रीतम

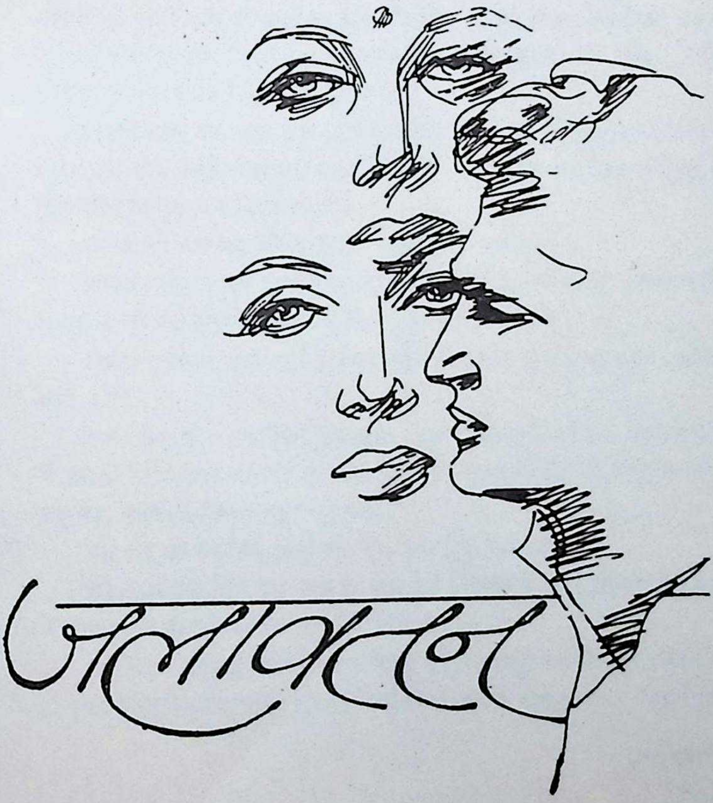

पहला पहर

सुबह का पहला पहर रोज मेरे हाथ में एक कुदाल-सी पकड़ा देता है, और मैं इस कुदाल से अपने-आपकी खुदाई करने लग जाता हूं···

इस वक्त भी मेरे हाथ मिट्टी से सने हुए हैं, रोज सन जाते हैं···

सने हुए हाथों से लोग इस धरती में से बीती हुई सभ्यता के निशान खोजते हैं, पत्थरों के बर्तन, चांदी के सिक्के, मिट्टी की मूर्तियां···और या आने वाली सभ्यता के यानी सोने की खानें या तेल के सोते···। पर मैं अपने-आपकी खुदाई में से सिर्फ अपना वर्तमान ढूंढ़ रहा हूं—जो बाहर होता हुआ भी बाहर नहीं है। सोचता हूं शायद यह मेरे अन्दर होगा···

पिछले साल तक सब कुछ बाहर लगता था—मुझे भी, पापा को भी। जब एम० एस-सी० करने लगा था, पापा ने अपना भविष्य भी मेरे साथ जोड़कर बहुत कुछ सोचना शुरू कर दिया था···

उनका सोचना अब भी जारी है···सिर्फ मेरा रुक गया है···

शायद वर्तमान एक खाई बन गया है, मैं किसी ख्याल को परे तक ले जाने भी लगता हूं तो यह इधर इस खाई में गिर पड़ता है···

शायद वर्तमान खाई नहीं है, खाई कोई और चीज है और वर्तमान उसमें गिर गया है···

एम० एस-सी० तकरीबन कर चुका हूं, कल आखिरी पेपर था। थोड़े-से दिनों में उसकी सनद मिल जाएगी, पर इस सनद को अगर मैं दीये की तरह जला लूं तो यह मेरा वर्तमान ढूंढ़कर नहीं दे सकती···

यह कब खो गया था, कहां खो गया था, कुछ पता नहीं···

गये साल उस दिन तक याद है, जब मेरे होस्टल के चार दोस्तों ने मेरे कमरे में आकर मेरे हाथ से किताब छीन ली थी···

"मैं केवल उर्फ कालीदास आज किसी मेघ का नहीं, रम का दूत बनकर आया हूं, उठो दोस्त ! आज ड्राई वेल पार्टी होगी।" केवल ने कहा था, और मेरी मेज

पर पड़ा हुआ सिगरेट का पैकेट उठाकर अपनी जेब में डाल लिया था।

नलिन ने मुस्कराकर कहा, "लड़का है या हुक्के का पानी ? तुझे यह भी पता नहीं ड्राई वेल पार्टी क्या होती है ?" इस नलिन को सब दोस्त 'हेयर ऑफ हेनरी मिलर' [हेनरी मिलर का वारिस] कहते हैं। जावेद, जिसे सब शैले लखनवी कहते हैं, वह मेरे हाथ में पकड़े हुए सिगरेट को पीता और उसकी राख मेरे ऊपर झाड़कर शेर पढ़ने लगा था, "एक सिगरेट से लेकर एक इश्क तक हर चीज अमल है, यह बात अलग है कि कइयों को एक ही ब्रैंड चाहिए···"

मैं अपने बालों में से सिगरेट की राख झाड़ने लगा था, और जावेद ने शेर पूरा करते हुए कहा था, "एक ही ब्रैंड की अकीदत आशिक होने की निशानी है।"

चौथा, रावल, न होस्टल में रहता है न कालेज में पढ़ता है, पर अपने घरवालों के लिए वह कालेज में भी पढ़ता है और होस्टल में भी रहता है—अपने-आपको 'रोड स्कालर' कहता है, वह मेरे कान को धीरे से पकड़कर कहने लगा था, "मिस्टर आउट आफ डेट ! उठो, जल्दी करो। रम को बोतल की कैद से जल्दी छुड़ाना चाहिए···"

'ड्राई वेल पार्टी' का रहस्य मुझे होस्टल से एक मील दूर एक वीरान जगह पर एक सूखे हुए कुएं पर जाकर पता लगा था। कुएं की चरखी से रस्सी बांधकर, रस्सी के एक सिरे से एक बड़ी भारी बाल्टी बांध दी थी। इस बाल्टी में बारी-बारी एक कोई बैठ जाता था और कुएं में उतर जाता था।

लड़कियों के होस्टल में से पांच लड़कियां भी आई हुई थीं, सबके नाम याद नहीं—एक जो बहुत बातें करती थी उसे सब 'मिस स्टेटमैंट' कहते थे। एक जो बहुत चुप थी, उसे 'मिस मिस्ट्री' कहते थे। एक का कद छोटा था, उसे 'मिस शार्ट स्टोरी' कह रहे थे। और एक जो हर बात में दखल दे रही थी, उसका नाम 'मिस क्रिटिसिज्म' था। पांचवीं तरीज़ा थी। उसके लिए उन्होंने मुझसे पूछा कि उसका क्या नाम होना चाहिए ? मैंने उस वक्त कुछ कहना था कह दिया था, "पोएम इन मेकिंग !"

हम सब एक ही बार कुएं में नहीं जा सकते थे, दो जनों को बारी-बारी बाहर ठहरना पड़ता था—चरखी की रस्सी खींचकर अन्दर जाने वालों को बाहर निकालने के लिए।

पहली बार मैं और तरीज़ा बाहर रहे थे। बाकी सबको रम पीने की जल्दी थी। जावेद उर्फ शैले लखनवी ने कुएं में उतरते हुए रम की बन्द बोतल को सूंघकर और झूमकर कहा था, "गंगाजल से लेकर वोडका तक, यह सफरनामा है मेरी प्यास का···"

नलिन, जो हेनरी मिलर का वारिस था, उसने जावेद की कमीज का कालर खींचकर कहा था, "शैले लखनवी के बच्चे ! रम को हाथ में पकड़कर वोडका का

शेर पढ़ता है ? यह सरासर रम की इन्सल्ट है। शेर जोड़ना है तो रम का जोड़—"

शैले लखनवी को कहने के लिए कुछ न सूझा तो केवल कालीदास ने उसके कालर को छुड़ाते हुए कहा था—"अरे रम क्या और वोडका क्या—अंडर द क्लाथ्स वी आर मेड इन इण्डिया !"

और फिर कुएं में उतरकर वह गाने लगा था, "अंडर द क्लाथ्स···" बाकी सब उसके साथ गा रहे थे, "वी आर मेड इन इण्डिया···" आवाजों से कुआं भरा-सा लग रहा था। फिर कुएं में रिकार्ड प्लेअर बजने लगा था। सारे डांस कर रहे थे। मैं कुएं की मेंड के पास खड़ा सिगरेट पी रहा था···रिकार्ड प्लेअर में से उस वक्त आवाज आ रही थी, "आई हेव कन्फीडेन्स इन सन-शाइन।"

मेरे पास खड़ी तरीज़ा ने पता नहीं क्यों पूछा था, "मिस्टर मलिक ! आप एम०एस-सी० के बाद क्या करोगे ?"

यह मेरा एम०एस-सी० का फाइनल साल शुरू हुआ था, पर जो कुछ सोचना था, अगले साल सोचना था, मुझे उस वक्त तक यह पता जरूर था कि यह मेरी उम्र, मेरे सपने, मेरे पास हैं, मेरे सामने···मैं कुछ भी कर सकता हूं···मुस्कराकर कहा था, "कुछ भी कर लूंगा···"

पर यह पिछले साल की बात है···सूरज अब भी उगता है, पर सूरज की धूप में यकीन करने वाला—मेरे भीतर का कुछ—अब सूरज की धूप में यकीन कर सकता है, न बादलों की छांव में···

इस 'कुछ' को मैं एक पात्र की गीली और गर्म आंख से नहीं, एक दर्शक की सूखी और ठंडी आंख से देखना चाहता हूं—पर अभी तक नहीं पता चलता कि इस 'कुछ' ने किस वक्त मेरी आंख बचाकर अपना जन्म बदल लिया था—यह जो कुछ इसने बदला है, यह चोले की तरह नहीं, सचमुच एक जन्म की तरह है···

मुझे याद है—उस दिन मैं कुएं की मेंड के पास चुप खड़ा था, पर मेरे और तरीज़ा के दरम्यान यह चुप किसी तरह भी भारी नहीं थी—यह धीमे से हवा की तरह सरक रही थी···

तरीज़ा की जगह होकर मैं कुछ नहीं कह सकता, पर अपनी जगह यह जरूर कह सकता हूं कि खामोशी की सरकती हवा में से मैं उस तरह ही ताजा सांस ले रहा था—जिस तरह कोई भी एक बेलगाव आदमी ले सकता है।

केवल, कालीदास और मिस स्टेटमैंट कुए से बाहर आ गए, और अपनी जगह उन्होंने मुझे और तरीज़ा को कुएं में भेज दिया। कुआं पानी की जगह आवाजों से भरा था—मुझे अपना आप, जाने क्यों, वहां डूबता-सा लगा—जेब में हाथ डाला, एक सिगरेट खोजने लगा—उस वक्त एक सिगरेट की जरूरत जैसे कुएं में लटकती उस रस्सी की तरह थी, जिसे डूबते समय कोई थाम ले।

जेब में कोई सिगरेट नहीं था। केवल मेरे कमरे से मेरा पैकेट उठा लाया था,

और शायद कोई सिगरेट अब भी उसमें बचा हुआ था, पर वह पैकेट केवल की जेब में था, और केवल उस वक्त कुएं से बाहर मेंड पर खड़ा था।···जावेद ने मेरी सिगरेट टटोलती उंगलियों में एक सिगरेट थमा दिया और अपने लखनवी अन्दाज में कहने लगा, "इस समय रीजेंट नहीं हुजूर, जो सामने आया है पी लो!"

मैंने सिगरेट सुलगा लिया था पर मेरे गले ने इस नई और अजनबी महक को कबूल नहीं किया था। जावेद ने देख लिया था, और मेरे पास होकर कहा था, "यही आसार होते हैं किसी आशिक की आयी मरने के। मैंने तुम्हें आज बताया था कि एक ब्रैंड की अकीदत आशिक होने की निशानी है···" और फिर जावेद ने जाने क्यों एक बार तरीज़ा की ओर देखकर दोबारा मेरी ओर देखा था—ऐसे जैसे अपनी पलकों से उसके चेहरे की कुछ नरमाई उठाकर उसने मेरी आंखों में डाल देनी चाही थी।

मुझे जावेद पर एक गुस्सा आ गया था और तरीज़ा से एक शर्मिन्दगी। रिकार्ड बज रहा था, "डार्क मून ओ अप इन द स्काई, टेल मी वाई···टेल मी वाई—आई हेव लॉस्ट माई लव···" मिस क्रिटिसिज्म ने तरीज़ा का हाथ मेरे हाथ में देकर हम दोनों को अपने नाच में शामिल करना चाहा था। मैंने तरीज़ा का हाथ पकड़ लिया था, पर गीत की लय के साथ लचकती तरीज़ा के कान में धीरे से कहा था, "मून इज़ द सिम्बल आफ नान बीइंग।" [चांद अनस्तित्व का प्रतीक है।] तरीज़ा हंस दी थी, "अच्छा फिलासफर साहब!" और मैंने जावेद की डाली हुई खामखाह की झिझक को उतारने के लिए तरीज़ा के सिर पर एक हल्की-सी चपत लगाई, "तुझे यह सिली सांग्ज़ अच्छे लगते हैं? तू अभी बिल्कुल छोटी-सी बच्ची है···"

कुएं से बाहर आने की अभी मेरी बारी नहीं थी, पर रम का और जावेद के दिए हुए सिगरेट का जायका मेरी छाती में नहीं उतर रहा था। मैं बाहर आ गया। तरीज़ा ने भी बाहर आना चाहा, मैंने इन्कार नहीं किया। बाहर कुएं की मेंड पर खड़ा केवल मेरे पैकेट का आखिरी सिगररेट पी रहा था। मैंने दूर तक नजर दौड़ाई, सिगरेट की कोई दुकान नजर नहीं आ रही थी—कोई छोटी-सी दुकान होती भी तो वहां से रीजेंट नहीं मिल सकता था।

तरीज़ा होस्टल की लड़की नहीं थी, डे-स्कालर थी। बाकी लड़कियों से वह इकरार लेकर आई थी कि वह अंधेरा होने से पहले उसे घर पहुचा देंगी। मैं सिगरेट की तलाश में जाने लगा, तो मिस स्टेटमैंट ने मुझे कहा कि मैं तरीज़ा को रास्ते में घर छोड़ता जाऊं। सिगरेट की कोई बड़ी दुकान नजदीक नहीं थी, पर तरीज़ा का घर दूर नहीं था। तरीज़ा से रास्ता पूछकर मैं उसे उसके घर ले गया।

"मिस्टर मलिक, आप दो मिनट मेरे साथ अन्दर आ जाइए—हमारी कोठी की ऊपरी मंजिल में जो हमारे किरायेदार रहते हैं मिस्टर पटेल, मेरा ख्याल है वह

रीजेंट पीते हैं—आप एक मिनट बैठना, मैं उनसे एक सिगरेट मांग लाऊंगी।" तरीज़ा ने कहा था। और मैंने जवाब में कहा था "नानसेन्स!" पर तरीज़ा के चेहरे पर एक छाया सी आ गई तो मैं खड़ा रह गया।

कोई पल जाने कैसे होते हैं, ठंडे चाकू की तरह इन्सान की जिन्दगी को काट-कर दो टुकड़ों में कर देते हैं।···

तरीज़ा ने अपने घर के ड्राइंगरूम का पर्दा सरकाया, मुझे अन्दर जाने का इशारा किया, और खुद पीछे चली गई—शायद ऊपरी मंजिल में रहने वाले मिस्टर पटेल से मेरे लिए एक सिगरेट मांगने।

कमरे में हरे रंग की हल्की-सी रोशनी थी, खिड़कियों के आगे मोटे पर्दे लटके हुए थे, इसलिए कमरा बाहरी रोशनी से नहीं भीतरी रोशनी से जग रहा था—जग रहा नहीं, सुलग रहा था।

कमरे के जिस कोने में हरे शेड वाला लैम्प था, वहां रोशनी गाढ़ी-सी थी, बाकी कमरे की सब दीवारों पर रोशनी सिर्फ पुती हुई लगती थी—हल्की-सी, जैसे किसीने दीवारों पर रोशनी की एक कूंची फेरी हो।

कमरे में दो बुत थे—एक मर्द का, एक औरत का। मर्द-बुत की उपमा के लिए मुझे जल्दी से एक लफ्ज़ सूझ आया था—'रोमन फिगर' पर दूसरे बुत के लिए कुछ नहीं सूझ रहा था···

बहुत छोटा था जब मां से कोई कहानी सुनते हुए कोहकाफ की परी की बात सुनी थी, पर परी लफ्ज़ के साथ मेरी बाल-यादों में पंख लफ्ज़ भी जुड़ा हुआ था, क्योंकि कहानी की परी अपने पंखों से उड़ती थी, कमरे में बुत की तरह बैठती नहीं थी। इसलिए मेरा ख्याल है मैं दूसरे बुत को देखकर उस वक्त उसके साथ 'कोहकाफ की परी' लफ्ज़ नहीं जोड़ सकता था। और कोई इसके अलावा और बड़ा लफ्ज मेरी यादों के साथ जुड़ा हुआ नहीं था···

सुना हुआ था कि तरीज़ा किसी रईस बाप की बेटी थी—उसके मरहूम बाप की शोहरत अमीरी के लिहाज़ से सुनी हुई थी, पर उसके किसी हुनरी शौक के लिहाज़ से नहीं। हैरान था—ऐसे बुत बनवाने के लिए उसने कोई बुत-तराश कहां से पाया होगा।

दोनों बुत एक-से हसीन थे, सिर्फ एक फर्क था—मर्द का बुत सफेद सिल्की मिट्टी से बना दिख रहा था, और औरत का टसरी रंग की मिट्टी का बना हुआ—इन्सान के कुदरती मांस जैसे रंग का।

कुछ हिला—मेरी आंखों के सामने कमरे में। पर मुझे लगा कि यह मेरी आंखों का अचम्भा था, जो आंखों से बाहर नहीं, आंखों के भीतर हिल रहा था; बाहर सिर्फ उसका साया था।

अजीब बात थी कि साया सिर्फ एक बुत पर इकट्ठा हो गया था—औरत के

बुत पर क्योंकि सिर्फ औरत का बुत हिल रहा था। मर्द का बुत उसी तरह अडोल था···

मेरे हाथों को कुछ छुअन-सी महसूस हुई—मैं शायद कुछ चौंक गया था—देखा, मेरे पास खड़ी तरीज़ा हंस दी थी। वह एक सिगरेट मेरे हाथ में पकड़ा रही थी।

और फिर तरीज़ा की आवाज आई, "ममी! यह मेरे कालेज में पढ़ते हैं, मिस्टर मलिक···हम एक पिकनिक पर गए थे···" तरीज़ा उस तरफ देखकर कह रही थी, जो अभी मेरी आंखों के सामने मेरे ख्याल से एक बुत था···

मैंने शायद हाथ जोड़े थे या सिर्फ सिर झुकाया था, मुझे याद नहीं। शायद मैंने कुछ भी नहीं किया था—पर जो कुछ भी नहीं कर सका था, तो इस ना कर सकने में, जुड़े हुए हाथ भी शामिल थे, और झुका हुआ सिर भी।···

किसी बुत के अचानक किसी घड़ी होंठ मुस्करा पड़े हों, किसीने नहीं देखे होंगे, मैंने देखे थे···

होंठ हिलते भी देखे। कमरे में धीमे से सरकते हवा के झोंके की तरह आवाज आई, "मिस्टर मलिक! आओ बैठो···"

नहीं, आवाज हवा के झोंके की तरह नहीं थी, एक ठोस चीज की तरह मेरी तरफ आई थी, क्योंकि मुझे लगा कि मेरे सारे बदन को कुछ छू गया था—छू गया नहीं, टकरा-सा गया। इतना कि मैंने पास पड़ी एक कुर्सी पर अपनी बांह रख दी···

"प्लीज मलिक, दो मिनट बैठो!" यह तारीज़ा की आवाज थी, और वह कह रही थी, "मैं सिगरेट ले आई, पर माचिस लाना भूल गई," और फिर वह मेरी तरफ नहीं दूसरी तरफ देखकर कह रही थी, "ममी, आज मिस्टर मलिक के साथ खूब गुज़री। इनके रीजेंट सिगरेट इनका एक दोस्त ले गया, और इनसे कोई और पिया ही नहीं गया···" और फिर वह दूसरी तरफ नहीं, मेरी तरफ देखकर कह रही थी, "ममी सिगरेट पीने का बुरा नहीं मानतीं, मैं माचिस लाती हूं।"

माचिस मेरी जेब में थी, मैंने निकालकर हाथ में पकड़ ली। तरीज़ा रुक गई। पर मैंने सिगरेट जलाया नहीं—सिर्फ उस बुत की तरफ देखता रहा, जो अभी तक हिला नहीं था, शायद मैं उसके हिलने का भी इन्तजार कर रहा था···

पर यह दूसरा बुत हिला नहीं, सिर्फ मेरी आंखें उस पर हिलती रहीं—शायद उसे हिलाकर देखती रहीं···

"यह बुत आपको कैसा लगा है?" तरीज़ा की आवाज आई।

जवाब में कुछ कहने लगा था—शायद वह बात जो अभी-अभी गुजरी थी—पर मेरे होंठ जरा-से हिलकर रह गए?

"वह बुत आपको पता है किसने बनाया है?" तरीज़ा की आवाज आई।

जवाब में मैंने तरीज़ा की तरफ देखा—कहने लगी, "ममी ने··· बहुत साल हो गए हैं। मैं तब छोटी-सी थी, जब ममी ने यह बुत बनाया था—ममी ने स्कल्पचरिंग सीखा था, पर सिर्फ एक बुत बनाया, और फिर सब छोड़ दिया—"

मैंने उस तरफ देखा, जिधर तरीज़ा देख रही थी—वहां ना गरूर था ना पछतावा। कुछ था जरूर, पर मैं उसे कोई नाम नहीं दे सकता—'सम थिंग नेमलैस'··· [कोई चीज़—अनाम]

मैं चुप था, पर चुप भी शायद एक जबान होती है···और वह जबान, मैंने पहली बार सुनी—सिर्फ सुनी, समझी नहीं···

समझने की कोशिश सी कर रहा था, कि मेरी जबान पर 'आठ' लफ्ज़ आने लगा—कुछ तालू से लगा हुआ, कुछ जबान पर सरकता-सा—

और फिर लगा कि मैं—सामने उसके गले में पहने हुए ड्रेसिंग गाऊन जैसी चीज पर उभरे हुए फूल गिन रहा था, एक···दो···तीन···चार···पांच···छै··· सात···आठ···

एक बार गिनती खत्म होती थी दूसरी बार शुरू कर देता था—आंखों को और सोच को शायद जल्दी से कोई सहारा चाहिए था···यह ड्रेसिंग गाऊन जैसा जो भी कुछ था, टसरी रंग का था, इन्सानी जिस्म की जिल्द के रंग का। जिस्म के साथ जिस्म का हिस्सा सा··· इसीको मैंने थोड़ी देर पहले, उस मिट्टी के रंग में सोचा था जिससे मुझे यह बुत गढ़ा हुआ लगा था···और अब शायद जिस्मानी हकीकत पर यकीन करने के लिए मैं उसके गले में पड़े कपड़े पर के फूल गिन रहा था···

मैं अपने जिस्म को एक झटका-सा देकर कुर्सी पर से उठ गया। तरीज़ा उस वक़्त शायद मुझे कॉफी पीने के लिए कह रही थी, पर भीतर से लग रहा था कि मुझे अभी बहुत जल्दी वहां से उठ जाना चाहिये। अनजाने खौफ की एक लकीर-सी हिलकर मेरी कनपटियों तक जा रही थी—कि मैं अभी, यहां बैठा मिट्टी के बुत की तरह हो जाऊंगा···और इस बुत की तराशी आंखों की तरह मेरी आंखें भी खुली रह जाएंगी—पलकें नहीं झपक सकेंगी···

मैं कमरे से बाहर आ गया। याद है मैंने आते हुए कुछ कहा नहीं था—सिर्फ देखा था। सिर जब झुक जाए—वही अदब की निशानी नहीं होती, सीधे तने हुए भी अदब वाले हो सकते हैं—यह मुझे उस दिन पहली बार पता लगा था···

याद है—गर्दन के पास मुझे कुछ बहुत गरम-सा लगा था, हाथ अपने-आप उस जगह चला गया—सिगरेट में से झड़ी हुई यह छोटी-सी चिनगारी थी जो हवा से उड़कर परे गिरने के बजाय मेरी गर्दन के साथ लगकर मेरी कमीज पर गिर गई थी—

बाहर सड़क पर चलते हुए याद नहीं मैंने किस वक्त सिगरेट जला लिया

था—यह सिगरेट वही होगा जो तरीज़ा ने दिया था—मुझे सिर्फ उस वक्त पता लगा था जिस वक्त मैंने कमीज के गले के पास से एक चिनगारी झाड़ी थी, और उस वक्त मुझे लगा कि मैं अपने जिस्म के साथ-साथ नहीं चल रहा था—जिस्म आगे चल रहा था, मैं उसके पीछे-पीछे था···

मेरे हाथों में कुछ नहीं था—पर इस 'कुछ नहीं' का जैसे वजूद था, यह क्या था, पता नहीं, उसे पढ़ना, समझना, और सोचना चाहता, तो भी नहीं कर सकता था—अब तक नहीं कर सकता—यह किसी उस पुराने दस्तावेज सरीखा था जिसके कीमती होने का अहसास हो—पर जिसे पढ़ा या पढ़वाया ना जा सके··· सिर्फ यह पता हो कि उसे सारी उम्र संभालकर रखना है···

इसके वजूद का मेरे पास कोई सबूत नहीं था पर एक अजनबी खुशबू से मैंने इसके वजूद का अन्दाजा लगाया था—मैं अपने जिस्म की हल्की से हल्की गंध से भी वाकिफ हूं, मेरा तौलिया चाहे बीसों तौलियों में मिला दिया जाए, मैं अपने तौलिये को सूंघकर ढूंढ़ सकता हूं—और उस दिन पहली बार मुझे लगा था कि कोई अलग चीज मेरे साथ या मेरे भीतर थी। एक हल्की पर नई खुशबू थी जो बराबर मेरे साथ चल रही थी···

मेरे पैर चल भी रहे थे, अटक भी रहे थे, और शायद वह खुशबू मेरे साथ जाना भी चाहती थी, रुकना भी चाहती थी···

एक बड़ी दुकान राह के दायें हाथ थी—मैंने वहां से एक सिगरेट का पैकेट खरीदा—सामने रीजेंट् पड़ा था—मैंने हाथ के इशारे से पैकेट मांगा। दुकान वाला समझा नहीं, रीजेंट की जगह कोई और पैकेट पकड़ा दिया। मैंने मना नहीं किया। वही पैकेट ले लिया जो उसने दिया था। सड़क पर आकर एक सिगरेट जलाया। कोई आधा सिगरेट पी चुका था—कानों में जावेद की कही हुई बात कसक गई, 'एक सिगरेठ से लेकर एक इश्क तक हर चीज अमल है, सिर्फ यह बात अलग है कि कइयों को एक ब्रैंड चाहिए ।'

उस वक्त मुझे लगा कि मेरे अन्दर कहीं कोई खौफ जैसी चीज भी थी—मैंने अनजाने ही सिगरेट का ब्रैंड बदल लिया था—शायद इस बात से बचने के लिए कि एक ब्रैंड की अकीदत आशिक होने की निशानी होती है और मैंने जल्दी से निशानी मिटा दी थी···

निशानी जो सामने थी, मिटा दी। पर इन्सान का सिर्फ सामने का तरफ ही नहीं होता, पीठ वाला भी होता है—आंखें अपनी पीठ पर नहीं प्रहुंचतीं, और पता नहीं वहां कोई निशानी उतर आई थी—वहां, मेरी पीठ के पीछे कुछ हिलता, रेंगता सा लगता था। सामने के हिस्से को देख सकता था, टटोल सकता था, पोंछ भी सकता था, पर उसका कुछ नहीं कर सकता था जो मेरी पीठ के पीछे था···

जो कुछ था, अगर इसका नाम इश्क था तो इसने मेरी पीठ पर से वार करने वाली बात की थी…

नहीं, वार से मुझे शिकवा नहीं था, सिर्फ यह सोचता था कि अगर कहीं मेरी आंखें मेरी पीठ पर होतीं—मैं इस वार करते हाथों को देख सकता…

अजीब हालत थी—किसी के हाथों से कुछ नसीब हुआ था, पर हाथ देखने नसीब में न हुए…

माई गॉड…फिर मैंने जो कुछ देखा था…अजीब था…मुझे याद नहीं, पर मैं कमरे में आकर जरूर सो गया होऊंगा, इसी तरह खिड़की के पास कुर्सी पर बैठे हुए ऊंघ गया होऊंगा—और जो कुछ देखा जरूर सपना होगा…मेरी आंखें मेरी पीठ पर लगी हुई थीं,…पीठ गीली थी, सिर्फ गीली नहीं, पोली भी…और देख सकता था कि दो हाथ मेरी पीठ पर थे—एक अन्दाज में, एक सलीके से, वह मेरी पीठ को गढ़ रहे थे, एक गोलाई दे रहे थे…हाथों के दायीं ओर जमीन पर बहुत-सी चिकनी मिट्टी पड़ी थी, हाथ मिट्टी को उठाते और मेरी पीठ पर, जहां कोई जगह ऊंची-नीची थी, वहां मिट्टी की नई तह जमा रहे थे…मैं एक बुत की तरह गढ़ा जा रहा था—मैं बन रहा था, संवर रहा था, पर अपनी जगह से हिल नहीं सकता था…पीठ पर मेरे होंठ नहीं थे—बोल नहीं सकता था।

सिर्फ आंखें थीं—देख सकता था…

वाट ए ड्रीम…

सपने में मुझे आंखें मिल गई थीं पर होंठ नहीं मिले थे…

फिर जाग रहा था—देख सकता था—मेरे होंठ सलामत थे। पर सोच सकता था—समझ सकता था—कि होंठ सारी उम्र के लिए गूंगे हो गए थे…

इस बीते साल में तरीज़ा कई बार मिली थी—अचानक कहीं सामने आ गई नहीं—खास तौर पर मेरे कमरे में आकर। शायद उसने मुझमें कोई अन्तर देखा हो, शायद मुझसे कुछ पूछना चाहा हो, और फिर शायद उसने मेरे गूंगेपन को कबूल लिया था, कुछ भी पूछना छोड़ दिया…

"तू नहीं समझ सकती, तू अभी बच्ची है," जिस दिन मैंने उसे यह कहा था, उसी दिन से उसने मुझसे कुछ भी पूछना छोड़ दिया था…

"मैं बच्ची नहीं," सिर्फ उसने एक बार यह जवाब दिया था—सीधा मेरी आंखों में देखकर—फिर चुप हो गई थी।

"तू शायद बच्ची नहीं, पर मैं—मैं शायद बहुत बड़ा हो गया हूं—" यह मैंने कहा था, पर कहते वक्त मैंने तरीज़ा की आंखों में देखा नहीं था। जैसे अचानक यूं बड़ा हो जाना एक रहस्य था, जिसे तरीज़ा से छुपाने की जरूरत थी…

"मुझे सभी बच्ची समझते हैं…" तरीज़ा ने एक शिकवे के लहजे में कहा था।

"सब कौन ?" मैंने पूछा था।

"आपने अभी कहा था—तू अभी बच्ची है···"

"मैंने कहा था, मैं समझता हूं पर सब कौन ?"

"ममी भी मुझे बच्ची समझती हैं···ममी की अलमारी में एक खाना है, वह हमेशा वन्द रखती हैं, मुझे कभी देखने नहीं देतीं—पर मुझे पता है वहां क्या पड़ा है···"

तरीज़ा कह रही थी, जिस वक्त मुझे अपना आप एक कमरे में खड़ा हुआ नहीं, एक खंडहर में भटकता हुआ सा लग रहा था—किसी खंडहर को देखकर किसी इमारत का इतिहास खोजता—नहीं इतिहास नहीं, अपना वजूद खोजता हुआ···

मैं जैसे आप खंडहर था, और अपना इतिहास ढूंढ़ रहा था। पूछा, "उस खाने में क्या पड़ा हुआ है ?"

"मेरा ख्याल है, ममी कभी-कभी एक डायरी लिखती हैं। वह डायरी वहां पड़ी हुई है, पर वह मुझे पढ़ने नहीं देतीं···"

तरीज़ा के साथ सिर्फ इतनी-सी वात हुई थी। पर इतनी-सी बात भी मेरे लिए सुरंग की तरह बन गई, जिसके अन्धेरे में मैं दिन-रात चलता रहता था—सुरंग की दीवारों को हाथ से टटोलता वह खाना ढूंढ़ रहा था, जिस खाने में अंधेरे का एक टुकड़ा पड़ा था···

छोटा था—घर में एक मेहमान आया था—मां ने प्रणाम करने के लिए कहा था—प्रणाम कर दिया था—पर उसने अपने थैले में से एक काली स्लेट निकालकर, उसके ऊपर चाक से कुछ खींचा था—कुछ लकीरें और कुछ हिन्दसे थे—और फिर मेरे सिर पर हाथ रखकर उसने मां को तसल्ली दी थी कि उसका यह बेटा बड़ा भाग्यशाली होगा—विचारशील।

यह मां के यकीन की बात है, मेरी नहीं—पर अब मेरे यकीन की बात मुझे यह लगने लगी कि अलमारी के खाने में पड़ा हुआ अन्धेरे का एक टुकड़ा उस काली स्लेट की तरह था जिसके ऊपर कुछ लकीरें और कुछ हिन्दसे लिखे हुए थे। और अगर मैं उस काली स्लेट को हाथ में पकड़कर उस पर लिखा हुआ कुछ पढ़ सकूं—मुझे मेरी तकदीर का पता लग जाएगा···

···बहुत दिन बीत गए एक रफ्तार से चलते और एक मंजिल की तरफ जाते पैरों की तरह नहीं, लड़खड़ाकर गिरते, उठते और चलते—

चलते दिनों के साथ मैं नहीं चल रहा था। मैं खड़ा था—सिर्फ दिन चल रहे थे। सोचता था—मैं काहे के साथ बंधा खड़ा था—शायद अपनी उम्र के वाईसवें साल के साथ वंधा था। यह साल मेरे वदन पर जवानी की तरह आया नहीं लगता था, एक जंजीर की तरह लिपटा हुआ लग रहा था—और मैं इस जंजीर

से छूटने के लिए सिर्फ हाथ-पैर मार रहा था···

छूटकर कहां पहुंचना चाहता था—पता नहीं। यह भी पता नहीं कि जहां पहुंचना था, वहां मेरे लिए कोई जगह थी कि नहीं ··

पते जैसा कुछ उस दिन लगा था—जिस दिन तरीज़ा ने कुछ फूल लाकर मेरी मेज पर रख दिए थे—और पूछा था कि मैं अपने जन्म-दिन की क्या सौगात उससे लेना चाहता था···

उसने जन्मदिन की याद दिलाई थी—पर वह नहीं जानती थी कि यह याद मुझे मेरे बाईसवें-तेईसवें साल के साथ जोड़कर, मेरे कानों में एक जंजीर की आवाज और ऊंची कर गई थी···

जानता था—बरस एक-एक करके बीतेगा—उसे रोज एक-एक रात की एक-एक गुफा से गुजरना होगा—और फिर भी मैं कहां पहुचूंगा···जहां भी पहुंचूंगा, सालों की गिनती मेरे साथ चलेगी·· मैं सालों की गिनती को पीछे छोड़कर जाना चाहता था···

"सौगात ?" मैं चौंक-सा गया था।

"मेरा जी चाहता है आप मुझसे कुछ जरूर लें !"

मैं चुप था।

"क्या सोच रहे हो ?"

मैं सोच नहीं रहा था—एक दीवार पर कुछ टटोल रहा था—नाखूनों से और बरौनियों से कुछ खुरच रहा था···

मन की हालत कई बार खतरनाक हद तक ईमानदार होती है—ईमानदारी की उसी हद पर खड़े होकर मैंने कहा—"तरीज़ा, अगर मैं वह सौगात मांगूं, जिसके लिए तुम्हें चोरी करनी पड़े ?"

"बोलो, कितने पैसे चुराकर लाऊं ?"

"पैसे नहीं···डायरी···"

"ममी की अलमारी में से ममी की डायरी ?"

"सिर्फ कुछ घंटों के लिए, ज्यादा से ज्यादा एक रात के लिए !"

मैं थककर कुर्सी पर बैठ गया था—थककर नहीं हारकर। उस चोर की तरह जो किसी बेगानी हद में पैर रखते हुए सर से पकड़ा गया हो,···

तरीज़ा बोली नहीं। बोलने की शायद कोई गुंजाइश भी नहीं थी। उसने सिर्फ मेरी ओर देखा था। और मेरा ख्याल है—मेरे चेहरे पर सिर्फ थकावट थी और कुछ नहीं। एक बेगानी धरती पर पैर रखते समय एक घबराहट थी—पर अब जब रख ही चुका था, देखा-पकड़ा भी जा चुका था, तो घबराहट नहीं थी। सिर्फ एक उदासीनता थी कि क्या इस तरह पैरों का पराई धरती पर चले जाना, और किसी की आंखों के सामने आ जाना जरूरी था?···मन की हालत, इस

खतरनाक हद तक ईमानदार न होती, तो क्या हर्ज था ?

पता नहीं तरीज़ा किस समय चुपचाप चली गई थी। मन की हालत, जब तक मेरी छाती की हद में थी, बड़ी मासूम लगती थी। कोई इल्ज़ाम उसे लगाए नहीं लगता था। पर अब—इस हद से बाहर निकलकर, और पराये कानों को छूकर, उसने अपना कौमार्य तोड़ लिया था। और अब उस पर छोटे या बड़े इल्ज़ाम जैसा कुछ भी लग सकता था···

पता नहीं कितना वक्त गुजर गया—सुराही में से पानी डालते हुए जब देखा कि गिलास मुश्किल से आधा भरा था, तब मुझे पता चला कि मैं बार-बार कुर्सी से उठकर पानी के गिलास पीता रहा था। थोड़ी देर पहले भरी हुई सुराही खाली हो गई थी···

एक प्यास दिखती थी, गिलासों से नापी जा सकती थी···पर एक प्यास जाने कैसी थी, सोच रहा था, दुनिया का कोई भी इल्जाम उसे नहीं नाप सकता था···

मेज पर खटका हुआ, कमरे में हल्का-सा अन्धेरा था, दरवाजे में से आती तरीज़ा को मैंने नहीं देखा था, सिर्फ खटका सुनकर देखा, और मेज पर उसने जो कुछ रखा था, अब देख सकता था···

ओह गाड···खुदा पता नहीं क्या चीज है, पर मुश्किल वक्त में से गुजरते हुए, होंठों पर आ जाता है—पता नहीं होंठों की हिम्मत बनकर, या सिर्फ रूमाल की उस कन्नी की तरह, जिसे कोई दांतों में दबाकर अपनी सारी आवाज को रोक लेता है···

अपने आपको नहीं,—पर तरीज़ा को मैंने जिस हालत में डाल दिया था, उसे सोच रहा था···

"आई एम सॉरी," किसी गहरे सांस में मिले ये लफ्ज शायद मेरे होंठों से निकले थे, और तरीज़ा ने सुन लिए थे, खिलखिलाकर हंस पड़ी, "अब सॉरी कहने से कुछ नहीं होगा—एन्ज्वाय योअर बर्थ डे गिफ्ट, सिर्फ खुदा से इतनी खैर मांगना कि कल तक ममी को अपनी अलमारी का दराज खोलने की जरूरत न पड़े, नहीं तो मैं मर गई···"

हमने एक-दूसरे की ओर देखा—दो चोरों की तरह—और हमारे होंठों पर एक शर्मिन्दा-सी हंसी आ गई···

शर्मिन्दगी की किस्म शायद अलग-अलग थी—तरीज़ा का चेहरा मुझे कुछ सुर्ख-सा होता लगा, और अपना पीला-सा···

"कल कालेज से लौटते हुए मैं यह ले जाऊंगी।" तरीज़ा ने कहा और जल्दी से चली गई।

अब कमरे में मैं था, और वह डायरी···

अपने जिस्म की नग्नता को इन्सान कई बार देखता है, पर मेरी जिन्दगी में यह पहली घड़ी थी, जब मैंने अपनी रूह की नग्नता देखी···

संस्कारों का लिबास चाहे नर्म लगे, चाहे खुरदरा, पर हर एक रूह यह लिबास पहनती है। पर उस दिन मेरी रूह ने अपने बदन पर कुछ नहीं पहना हुआ था—मेरा बदन सिर्फ एक बिस्तरे की तरह था, जो उसने सोने के लिए बिछाया-सा लगता था···

डायरी बन्द—भिंचे हुए होंठों की तरह थी, उसको छूने की घड़ी किसी के होंठों के छूने की घड़ी थी···

होंठों को, और फिर अंग-अंग को···अक्षर पढ़े नहीं, सिर्फ छुए—

मेरा सब कुछ धड़क गया था, कांप गया था, और लगा, 'कुछ' 'कुछ' में समा गया था···

इस कुछ का कोई नाम नहीं, इसको एक मर्द और एक औरत के मिलन से भी जोड़ सकता हूं—पर यह किसी मिलन की सुनी और जानी हुई हालत नहीं थी—-शायद इसलिए कि वह निराकार थी—-अशरीर-अबदन···

वैसे मेरे बदन पर भी इसके निशान थे पर बिस्तरे पर पड़ी हुई सलवटों की तरह—शायद इसलिए कि मेरी रूह ने मेरे बदन को एक बिस्तरे की तरह बिछाया हुआ था···

सारी रात 'मैं' था, 'वह' थी, और मेरे बदन का बिस्तरा था—मांस का बिस्तरा···

दूसरा पहर

उस दिन रात के गहरे अन्धेरे में दीवारों पर कुछ हिलता-सा लगा था—वह रात अजीब भेदों से भरी हुई थी—कभी जोर से एक पंख की तरह कुछ हिलता, कभी धीमे से उसांस की तरह···

आंखें खोलने और मूंदने से कोई फर्क नहीं पड़ रहा था—अन्धेरा बड़ा गहरा था। बिजली का बल्ब मेरी चारपाई से बहुत दूर था। हाथ हिलाने पर नहीं हिल रहा था—-बहुत जोर लगाकर सिर्फ सामने की दीवार तक पहुंचा था। वहां दीवार पर, मेरे कानों के पास भी कुछ हिला था—पूरे हाथ से नहीं सिर्फ एक उंगली से उसे छुआ—वह मांस के एक टुकड़े की तरह मुलायम और नर्म था—मांस जो एक टुकड़े की शक्ल में भी हो, और जीता भी···

गले में से एक चीख-सी निकलती लगी—गले में से नहीं, सिर्फ छाती में से—

क्योंकि गले तक वह सिर्फ पहुंची थी, फिर वहीं रुक गई थी···

आंखों की मदद से नहीं सिर्फ कानों की मदद से जान लिया—कुछ जीते-जागते सपने थे, जो दीवारों पर लगे हुए थे। उन्हें कील ठोंककर लगाया गया था, वे हिलते थे पर दीवार से उतर नहीं सकते थे···

पता नहीं कितनी देर तक मैंने यह देखा था, भोगा था। शायद पूरी तरह जागता नहीं था, पता नहीं, पर यह पता है कि पूरी तरह सोया हुआ नहीं था। सोचने पर शायद बहुत जोर पड़ गया होगा। याद आया—डायरी में लिखा हुआ था—"बहुत बार रात को ऐसा लगता है कि मेरे कमरे की चारों दीवारों पर कुछ हिलता है—फड़फड़ाता है। मैं कानों को बन्द कर लेती हूं—क्योंकि जानती हूं कि यह मेरे सपनों के टुकड़े हैं जो मैंने अपने हाथों कीलों से ठोंककर अपनी दीवारों पर लगाए हुए हैं···"

उस रात यह मैंने पढ़ा था, जिया भी था—शायद उसकी जगह जिया था। उसने पता नहीं कितनी ही ऐसी रातें सजा की तरह काटी होंगी—पर उस रात शायद उसकी जगह मैंने उसकी सजा काटी थी···और शायद मेरे अन्दर और बाहर कहीं वह आप थी, जो अपनी कई रातों की तरह, यह रात भी भुगत रही थी···

जिस्म के कपड़ों की तरह, जिस्म भी बदला जा सकता है, उस रात मुझे इस ख्याल ने बड़ा सहारा दिया था। मेरा विश्वास है कि उस रात वह अपने जिस्म में नहीं, मेरे जिस्म में, रात की भयानकता को काट रही थी···

फिर मेरे कमरे में सुबह का एहसास हो गया था—आंखों से देख सकता था पर लगा चारपाई पर से उठ नहीं सकता था—उठकर सुबह के उजाले तक नहीं जा सकता था। खिड़की से थोड़ा-सा पर्दा हिल गया था। सामने दीवार पर धूप की एक पतली-सी लकीर आ गई थी। मेरे सारे बदन में सिर्फ एक चीज थी—मेरी आंखें—जो हिलती भी लगती थीं और जीती भी। बाकी किसी भी अंग में हरकत नहीं थी। और लगा मैं बिल्कुल एक जगह पर बैठा अब सिर्फ बाहर के उजाले या बाहर के अंधेरे के रहम पर था···

'जान' जैसी चीज पता नहीं कहां थी। मैं एक बुत की तरह था, वह मुझमें पड़ती नहीं थी···माई गाड ! यह कैसी ट्रांसमाईग्रेशन [देहान्तरण] थी—मैं अपने जिस्म में से निकलकर मिट्टी के उस बुत में दाखिल हो गया था, जो कभी उसने गढ़ा था, और जिसे वह रोज देखती थी, सोचती थी कि इस मेरे तसव्वुर के बुत में हकीकत की जान क्यों नहीं पड़ती···यही लफ्ज उसने ज्यों के त्यों अपनी डायरी में लिखे हुए थे।

डायरी के अन्दर के, पर पहले सफे पर, सिर्फ दो लफ्ज लिखे हुए थे—ग्रेप्स आफ मैडनेस' [दीवानगी के अंगूर]—यह जैसे डायरी का नाम था। दीवानगी के

यह अंगूर—उसके माथे में—पता नहीं कब बीजे गए थे, जिन्दगी के कौन-से हादसे थे जिन्होंने ये बीज बोए थे, कुछ पता नहीं लग रहा था। मैंने सिर्फ उन्हें चखकर देखा था और लग रहा था कि उनमें से रिसता हुआ रस मेरे गले में से एक-एक बूंद करके मेरी छाती में उतर रहा था...

डायरी के सफे स्याही में भीगकर सूख चुके थे—पर ज्यों-ज्यों पढ़ रहा था, लग रहा था स्याही अक्षरों में से निकलकर अपनी पहली गीली शक्ल में मेरी आंखों के सामने फैल रही थी। अक्षर कभी दिखते थे, कभी नहीं। और डायरी में से निकलकर जो कुछ मेरे तक पहुंच रहा था—वह एक गंध थी, शायद इंसान की रूह को आते हुए पसीने की गंध थी—

"मेरा जिस्म एक लहू-मांस के गमले की तरह है—
ख्याल कभी फूलों की तरह खिलते लगते हैं कभी मुरझाते...

दुनिया की हर अच्छी किताब को मैं घबराकर पढ़ती हूं
मेरी आंखें हर एक वरके पर ऐसे जाती हैं,
जैसे एक बहुत जख्मी मरीज
एक एमरजैन्सी वार्ड की ओर जाता है।

लिबास एक अजीब चीज है—
जब जिस्म पर पड़ता है, सभ्यता बन जाता है,
जब रूह पर पड़ता है, तो महज बदनसीबी

सारे रंग मेरे अन्दर हैं, पर नर्म और पिघले हुए नहीं,
जो सहज ही एक-दूसरे में मिल जाएं,
ये ठोस पत्थरों की शक्ल में हैं
एक-दूसरे से टकराते हैं—
एक-दूसरे को जख्मी करते हैं और मैं—
इनके खून में भीगी रहती हूं...

अजीब बात है कि सूरज को सारे खून माफ हैं। यह हर रोज दुनिया के हर इंसान का एक दिन कत्ल करता है—रोज इंसान की उम्र एक दिन छोटी हो जाती है, उम्र का एक टुकड़ा रोज जिबह हो जाता है..."

मुझे याद है—डायरी मेरे हाथों से छूट गई थी, शायद डायरी नहीं, मेरा अपना आप मेरे हाथों से छूट गया था और मैंने कातिल को ढूंढ़ लिया था, इससे

पहले मैंने कभी सूरज को इस तरह नहीं सोचा था···

उस दिन जब सूरज ढला था, और उसके बाद हर दिन जब सूरज ढलता है, लगता है उसकी लाली में वह खून भी होता है जो 'उसके' उस दिन के कतल हुए जिस्म का होता है। वह भी शायद रोज ऐसा ही सोचती होगी···

सिर्फ उस दिन एक बात बड़ी अजीब लगी थी—(अब अजीब नहीं लगती, सहज हो गयी लगती है, शायद एक साल में उसकी आदत पड़ गई है) उस रात मुझे अपने बदन पर खून की कुछ छींटें पड़ी हुई लगती थीं—ऐसे जैसे सूरज के हाथों से गिरकर मेरे ऊपर पड़ गई हों···

खून के वे छींटे, रात को मेरे जिस्म में एक आग जला देते हैं—मैं एक थीसिस लिखना चाहता हूं : 'सूरज सैडिस्टिक है'—यह ठीक है कि वह चीजों को जन्म देता है, उसकी तपिश के बिना घास का एक तिनका भी नहीं पनपता, पर यह हर चीज को सिर्फ इसलिए पैदा होने में मदद देता है ताकि उस चीज को धीरे-धीरे गलता और सड़ता देख सके···

डायरी को मैंने बहुत बाद हाथ में पकड़ा था, बहुत बार हाथ से छोड़ा था—कुछ था जो पकड़कर भी नहीं पकड़ा जा रहा था। कुछ था, जो छोड़कर भी नहीं छोड़ा जा रहा था।

एक सफे पर लिखा था—

"ये लाइनें किसी कहानी की हैं, उसके किसी पात्र के बारे में, पर ये मेरे बारे में भी हैं—'वह दर्द को कंजूसी से झेलती है, शायद वह नहीं चाहती कि उसका यह निरन्तर दर्द कभी खत्म हो जाए···'"

साथ के सफे पर लिखा था—

"सब कुछ हकीकत के हवाले कर दिया है फिर भी एक टुकड़ा बाकी है जो किसी के हवाले नहीं होता, शायद यह भी मेरी कजूसी है—अगर फराखदिल होती, तो एक टुकड़ा भी पास न रखती···

पर 'मेरा' कहने के लिए मैंने एक टुकड़ा अपने पास रख लिया है, यह मेरा है, इसकी निरन्तर पीड़ा भी मेरी है···

और शायद यही 'मैं' हूं"···

दोपहर को कालेज से वापस जाने लगी तरीज़ा आई थी, डायरी ले गई थी। पर डायरी के साथ बीते हुए घंटे मेरे पास थे···

"डायरी में से मैंने कुछ सफे फाड़ लिए हैं," मैं तरीज़ा को डायरी देते वक्त हंस-सा पड़ा था···

तरीज़ा की आंखों में एक खोफ कांप गया था। पर फिर उसने आंखें झपका

ली थीं, और उसे यकीन हो गया था कि डायरी के सफे पूरे थे···

तरीज़ा चली गई थी। नहीं जानती कि मैंने डायरी में से कुछ सफे फाड़ लिए थे—जितने पल भी मैंने डायरी के साथ बिताए थे, वे डायरी के वरकों की तरह थे। पल मेरे पास थे, इसलिए वरके मेरे पास थे···

पल थोड़े-से थे, वरके भी थोड़े-से हैं। पर लगता है मेरा जो कुछ है सिर्फ यही है। यह मेरा अन्दर है। बाहर जो कुछ है, वह सिर्फ इन वरकों पर चढ़ी हुई गत्ते की जिल्द है···

उसके दूसरे दिन कालेज जाते हुए रास्ते में जावेद मिला था—शैले लखनवी। मेरे कन्धे पर हाथ रखकर, और मेरे साइकिल के साथ-साथ अपना साइकिल चलाते हुए, उसने एक शेर पढ़ा था—"जो बन्दे के साथ बीती है वह, खूब जानते हैं। पर 'कुन फिकुन' कहने के बाद खुदा जाने—खुदा के साथ क्या बीती"—मैंने उसे कुछ नहीं कहा था पर अगर कहना चाहता तो कह सकता था, कि खुदा के साथ जो बीती, वह मुझे पता है। खुदा को एक वह डायरी लिखनी पड़ी, जिसका नाम है 'ग्रेप्स आफ मैडनेस'—

'उसकी' बात कहते हुए मैं उसको खुदा की जात के साथ ही जोड़ सकता हूं···

उस दिन भी लगा था, जिस दिन डायरी पढ़ी थी, आज भी लगता है कि अभी किसी नींद से जागा हूं। तेईस साल सोता रहा और फिर अचानक जाग उठा—लगता है, इन तेईस सालों में जो कुछ देखा था, सब सपना था, पर अब जो कुछ देखता हूं, वह हकीकत है···

हकीकत जाहिरा नहीं—सिर्फ उसकी धुंधली और हिलती सूरत दिखती है—इस तरह जैसे मैं जागा होऊं, पर अभी भी आंखें मल रहा होऊं···

मुझे पता है, मैं कच्ची नींद से जागा हूं, सिर्फ तेईस साल सोया था, और फिर जाग पड़ा। मुझे शायद पैंतीस-चालीस साल सोना चाहिए था···और फिर मैं जब जागता, मेरी उम्र 'उसके, बराबर हो गई होती···

पर मेरे अन्दर कहीं कुछ उसके बराबर है। जो बराबर नहीं दिखता, वह शायद मेरे अंगों से झड़ा हुआ है। यह चौदह पन्द्रह बरस मुझे मेरा हिस्सा लगते हैं—बीते हुए—बरते हुए, भुगते हुए—सिर्फ किसी तरह अपने से झड़ गए दिखते हैं—जैसे किसी का एक हाथ मशीन में आ जाए और पांचों में से एक उंगली कट जाए···

मन की नहीं, उम्र की एक अपाहिज-सी हालत है···

लगता है एक जंग से जखमी होकर लौटा हूं, और हाथ या बांह की जगह मेरी

उम्र के पन्द्रह बरस मेरे से कट गए हैं···

सामने मेरी खिड़की के चौखटे में आसमान का एक टुकड़ा जड़ा हुआ है—एक लैंडस्केप की तरह—सारे कैनवैस पर सलेटी रंग की एक कूंची फिरी हुई है, सिर्फ एक कोने में एक दूधिया बादल गुच्छा होकर पड़ा हुआ है···

कैनवैस में, मेरे मन की हालत की तरह, एक हरकत है। गुच्छा हुआ बादल धीरे से सिर उठाकर कुछ देख रहा है—शायद जोर से एक गहरा सांस ले रहा है—और फिर अलसाया-सा औंधा होकर, जहां बैठा हुआ था वहीं ठिठक-सा गया है···

बिल्कुल ऐसा ही दिन था—मैं बादल के इस टुकड़े की तरह पड़ा था, वह लड़की मिस स्टेटमैन्ट—आई थी, कमरे में चारों तरफ देखकर जब लौटने लगी तो दूसरी बार कुर्सी की तरफ देखकर खड़ी हो गई और फिर हंसने लगी, "मैंने समझा था, कुर्सी पर कपड़ों की गठरी पड़ी है," और फिर मेरी कुर्सी के पास आती हुई कहने लगी :

"आज हमने तरीज़ा को इतना टीज किया रुला दिया···"

"तरीज़ा को ? क्यों ?"

"वह मेरे कमरे में अब भी रुआंसी बैठी हुई है···"

"पर···"

"पर-वर कुछ नहीं, यह इन्विटेशन, और जल्दी से तैयार हो जाओ। आज तरीज़ा के घर पार्टी है।"

"तरीज़ा के घर···" मैं धड़क गया था—कुर्सी पर पड़ी हुई कपड़ों की गठरी धड़क गई थी— 'तरीज़ा' के लफ्ज़ से नहीं 'घर' के लफ्ज़ से···

"इन्विटेशन पढ़ लो—" मिस स्टेटमैन्ट ने कहा।

कागज की तरफ देखा—टाइप किया हुआ था। "आई इन्वाइट यू टु सेलीब्रेट माई सीक्रेट लव ओवर ए कप आफ टी" नीचे तरीज़ा का नाम लिखा हुआ था—हाथ का लिखा नहीं, टाइप किया हुआ।

"नानसैन्स—" मैंने कहा, होंठों से भी, शायद आंखों से भी।

"हू इज़ दैट लकी पॉग ?"

"डौंट यू नो ?" वह खिलखिला के हंस पड़ी।

"मुझे नहीं पता।"

"आज पार्टी में पता लग जाएगा। उठो मिस्टर मलिक, जल्दी करो, देर हो गई है। असल में हमें छः बजे वहां पहुंच जाना था, पर यहीं छः बज गए हैं। यह इन्विटेशन आपको तीन बजे पहुंचना था, पर वहां तरीज़ा मेरे कमरे में आके दो बजे की मुसीबत डालकर बैठी हुई है।"

"वह इन्विटेशन खुद क्यों नहीं देने आई ?"

"मैंने एक काम तो उसका कर दिया था, कहा था कि इन्विटेशन मैं टाइप कर दूंगी। पर अब वह किसी को देने के लिए भी नहीं जाती, वह भी मुझे देने पड़े हैं..."

शरारत सामने थी—तरीज़ा की सहेलियों ने तरीज़ा से चोरी यह इन्विटेशन बना लिया था—और तरीज़ा गुस्से और शर्म में किसी के सामने नहीं पड़ती थी।

मुझे जाना था—न सहेलियों की शरारत से मतलब था, न तरीज़ा के गुस्से से, पर जाना था।

घर की हद में पहुंचते ही लगा कि आते हुए नलिन के कमरे में मैंने जो पानी का गिलास पिया था, वह सिर्फ पानी नहीं था। मेरे पैरों में एक कंपकंपी-सी उतर रही थी...

ड्राइंग रूम...हरी रोशनी आज भी वहां थी, पर सिर्फ एक कोने में, दूसरे कोने में नीली थी, तीसरे में लाल...उस दिन कमरे में सिर्फ एक ही बुत था...

भरे कमरे में मेरी आंखें भटकी हुई थीं...बुत की तरफ देख रहा था—नहीं, बुत के भीतर होकर, बुत में समा रहा था...

कमरे में बहुत-सी खड़खड़ाहट थी—पैरों की आवाजों की, प्यालों की, म्यूजिक की, पर एक हल्की-सी चेतना के सिवा मैं सिर्फ एक बुत था...

मेरे हाथ में किसीने चाय का प्याला पकड़ाया—शायद उस लड़की ने, जिसे सब मिस मिस्ट्री कहते थे, और फिर मिस स्टेटमैन्ट की आवाज आई, "कम आन लकी डॉग? लेट अस सेलीब्रेट यूअर सीक्रेट लव!"

मैं कमरे में सबकी तरफ देखने लगा था—देख रहा था यह किसके लिए कहा गया था...

सारे कमरे की हंसी मुझ पर टूट पड़ी थी—सारे, जैसे शीशे के कंकरों की एक-एक मुट्ठी मेरे ऊपर फेंक रहे थे...

"यू...ऑल डेविल्ज़..." तरीज़ा कह रही थी। उसकी आवाज खीझी हुई और थकी हुई थी। शायद यह बात वह दोपहर से कह रही थी। पर उसकी बात कोई नहीं सुन रहा था।

"हू इज द लकी डॉग?" मैंने शायद फिर पूछा था।

"हाऊ इन्नोसेंट यू आर, यू बोथ," [तुम, तुम दोनों कितने नादान हो!] यह उस लड़की ने कहा था, जिसे सारे मिस क्रिटिसिज्म कहते थे।

एक ठहाका था, बड़े गलों में से, बाढ़ के पानी की तरह कमरे में आ गया था—तरीज़ा की आवाज उस पानी में बह रही थी, मैं भी जो कहता, वह बह जाना था, इसलिए कुछ नहीं कहा।

"मलिक! हमारे सबके सामने तरीज़ा को एक अंगूठी दे दे, ताकि दुष्यन्त की तरह जब तू उसे भूल जाए तो यह शकुन्तला की तरह तुझे याद दिला सके..." यह

बात केवल कालीदास कह रहा था, और कह रहा था, "नहीं तो तुझे नया काव्य लिखना पड़ेगा।"

शैले लखनवी एक शेर पढ़ने लगा था, जिस वक्त किसी लड़की ने कहा, "भई, तरीज़ा की ममी को भी बुलाना चाहिए। तरीज़ा, तूने ममी को भी इन्विटेशन दिया है या नहीं? नहीं तो मैं अभी दे आती हूं, वह किस कमरे में होंगी?"

जिस दीवार से लगकर मैं खड़ा था, लगा वह दीवार हिल रही थी···तरीज़ा उस लड़की को 'शटअप' कह रही थी, और शायद कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर रही थी कि कहीं वह लड़की सचमुच ही बाहर जाकर कुछ कह न आए, कि नलिन सबमें से उठकर, दीवार की तरफ मेरे पास आ गया।

वह मेरे पास होकर धीरे-से मुझे कहने लगा, "आई द हेअर आफ हेनरी मिलर एडवाइज़ यू···" [मैं, हेनरी मिलर का वारिस, तुम्हें सलाह देता हूं···]

मेरी आंखें मेरे मुंह पर फैल गई थीं। वह मेरे कानों में कह रहा था, "स्लीप विद द गर्ल, ऐंड गेट रिड आफ दिस मूड।" [इसके साथ सोओ, और गम गलत करो!]

कमरे में रिकार्ड प्लेयर बज रहा था। दो जने डांस कर रहे थे। तरीज़ा ने बिल्कुल नहीं सुना था कि नलिन ने मुझे क्या कहा था, पर मेरे मुंह पर आई हुई खीझ शायद उसने देख ली थी। नलिन जब उधर चला गया तो वह मेरे पास आकर कहने लगी, "आई एम सॉरी मिस्टर मलिक, आज सबको एक भूत सवार हो गया है। अगर आप तंग आ गए हैं तो आइए आपको साथ के कमरे में छोड़ आऊं। वह हमारी लाइब्रेरी है, ममी की लाइब्रेरी···"

फिर तरीज़ा मुझे लाइब्रेरी छोड़कर चली गई थी···सब दीवारों में आलमारियां थीं···किताबें, किताबें···मेरी उंगलियां कांप रही थीं—सारी किताबों के सारे वरके स्याह काले बालों की तरह लगे···मेरे पोर उन बालों को छू रहे थे···कांप रहे थे, छू रहे थे···

वट···ए···सैन्सुअल···मोमैन्ट···वट···ए थ्रिल···प्योर एक्सटेसी···नैकिड प्योरिटी··· [कितने सुख, आनन्द और उल्लास का क्षण है···हर्षोन्माद···अनावृत निर्मलता···]

मूसा ने किसी पर्वत पर पता नहीं क्या देखा था, शायद वही देखा था, जो मैंने उस कमरे में देखा···

लगा मेरी कल्पना ने हकीकत का वेश पहन लिया था···आंखें झपकीं, फिर झपकीं। देखा एक हकीकत थी। सिर्फ उसने कल्पना का वेश उतार दिया था···

कल्पना की मुझे आदत थी, हकीकत की आदत नहीं थी, इसलिए सबसे पहली चीज जो मेरे बदन को महसूस हुई, वह एक गहरा कम्पन था···

'वह' कमरे को खाली समझकर कमरे में आई थी—उसने एक तरफ नहीं

देखा था, जहां मैं खड़ा था—परली तरफ पानी का भरा हुआ एक शीशे का जग पड़ा था, उसने गिलास में पानी डाला, कुछ पिया, और गिलास रख दिया···

जब वह कमरे में आई थी मैं देख रहा था। जब वह मेरी तरफ पीठ किए गिलास में पानी उंडेल रही थी, तब भी मैं देख रहा था। पर जब वह मुड़ी, मेरी तरफ देखा, मुझे लगा मैं उसे महसूस कर सकता था, पर देख नहीं सकता था—देख रहा था, पर दिख नहीं रहा था···मेरी आंखों में शायद पानी की एक तह-सी आ गई थी।

एक शिद्दत थी, जो पिघलकर आंखों में आ गई थी···

"सॉरी, मैंने समझा था इस कमरे में कोई नहीं···" मैंने अपने कानों से उसकी आवाज सुनी। जवाब में कुछ कहा था, पर शायद कहा नहीं गया था—होंठ सिर्फ हिलकर रह गए थे।

कहने के लिए सिर्फ एक बात थी, "कमरे में अब भी और कोई नहीं, सिर्फ साथ के कमरे में पड़ा हुआ बुत हिलकर किसी तरह इस कमरे में आ गया है···" पर यही एक बात थी जो मैं कह नहीं सकता था।

"कुछ किताबें पसन्द आईं?" उसने फिर कहा, यह शायद मुझे संकोच से बचाने के लिए कहा था।

मैंने एक आलमारी की तरफ देखा, दूसरी की तरफ, तीसरी की तरफ, चौथी की तरफ, ऐसे, जैसे यह इतनी हैं कि किस-किस का नाम लूं···

"मैं यूं ही इस कमरे में आ गई थी, खाली थी, नहीं तो अक्सर देर से आती हूं। तुम इत्मिनान से किताबें देखो,'' उसने कहा और कमरे में से जाने लगी···

याद आया—किसी किताब में पढ़ा था—एक राजा ने अपनी बेटी के इश्क में दीवाने हुए एक नौजवान को बुलाकर कहा था कि तू मेरी बेटी को हासिल कर सकता है, पर उसकी एक शर्त होगी। पूरे एक घंटे के लिए वह तेरे हवाले की जाएगी, पर उसके बाद तुझे सूली पर चढ़ा दिया जाएगा, एक घंटा वस्ल की कीमत मौत से कम नहीं हो सकती···और मेरे अन्दर कुछ बिलख-सा गया—खुदाया! क्या तू आज मेरे ऊपर यह शर्त नहीं लगा सकता?

"पानी का गिलास लोगे?" वह दरवाजे के पास थी, जिस वक्त उसने पूछा।

"मेहरबा···" याद नहीं, यह लफ्ज़ मेरे होंठों से पूरा निकला था कि नहीं।

"मैं एक गिलास ले आऊं," उसने दूसरी तरफ शीशे के जग की तरफ देखा और चली गई।

गिलास लाकर जग में से पानी उंडेला, मुझे दिया, और फिर चली गई।

पानी का गिलास मुझे उसके हाथों से मिला था—बूंद-बूंद मेरी रगों में उतर रहा था—शायद मेरी प्यास नाप रहा था···

खाली हुआ गिलास, लगा हंस रहा था···शायद बिजली की रोशनी से उसका

एक हिस्सा कुछ दमक-सा रहा था···

हाथ अनायास ही एक दूसरे गिलास की तरफ चले गए—जो उसका था, उसमें अभी भी आधा गिलास पानी था···

पहले गिलास को पकड़ते वक्त मेरे हाथ कांपे थे, इस दूसरे गिलास को छूते समय मेरे होंठ कांप गए···

इट वाज़ नॉट ए ग्लास ऑफ वाटर—इट वाज़ ए ड्रिंक ऑफ मैंडनैस···नहीं—इट वाज़ ए सिप ऑफ एटरनिटी···[वह एक गिलास पानी नहीं था—वह दीवानगी का प्याला था····नहीं—वह शाश्वतता का, चिरन्तनता का घूंट था···]

तीसरा पहर

इस समय पता नहीं क्या वक्त है ? वक्त···वक्त···वक्त···लगता है वक्त के पास कपड़ों के सिर्फ तीन जोड़े हैं, भूत, वर्तमान, भविष्य। यह हमेशा वही है, सिर्फ किसी-किसी समय यह अपने कपड़े बदलता है···

यह कपड़े मुझे उसके वजूद और शख्सियत का हिस्सा नहीं लगते। यह पहनकर वह एक स्वांग-सा लगने लगता है—पर वह पहनता है—शायद इसलिए कि लोगों को स्वांग देखने अच्छे लगते हैं···

मुझे भी उसने हंसाने की कोशिश की थी—हंसाने की भी और रुलाने की भी। पर कुछ नहीं हुआ, हारकर उसने सब कपड़े उतार दिए हैं—शायद धुलने दे दिए हैं···

वक्त मेरे साथ क्या कर रहा है ? या क्या करेगा ? या उसने जो कुछ किया था क्यों किया था ? लोग जब ऐसी सोचों में पड़ जाते हैं, वह मुस्कराता है। शायद यही उसकी जीत होती है कि वह इस तरह किसी को हैरान और परेशान कर सकता है—इट इज़ ए सिली गेम, वैरी चाइल्डिश···[यह एक अहमकाना खेल है, बिल्कुल बचकाना···]

पर होता क्या है—कुछ भी नहीं, कुछ लोग बहक जाते हैं, कुछ ढीठ हो जाते हैं। जो बहक जाते हैं वह घबरा के पूजा-पाठ करने लगते हैं, जंतर-मंतर पढ़ने लगते हैं, कोई माला, तसबीह फेरने लगते हैं या ज्योतिषी को हाथ दिखाने लगते हैं···जो ढीठ हो जाते हैं, वे बड़े आराम से व्हिस्की का गिलास पकड़ते हैं और रेडियो ऑन करके जंग की खबरें ऐसे सुनते हैं, जैसे फुटबाल के या क्रिकेट के मैच की कमेण्ट्री सुन रहे हों—कितने हवाई जहाज गिरे ? कितने रन्ज ? फौजें कहां तक पहुंच गईं ? किस जरनैल ने गोल किया ?···

जावेद बहुत बोलता है—उसे इस बात का भी बहुत दुख रहता है कि कोई उसे समझता नहीं। एक दिन वह मिलिटरी के किसी दोस्त से व्हिस्की लाया था—और उसकी शिकायत व्हिस्की के मंच पर चढ़कर और ऊंची हो गई थी—वह शायद एक लड़की को नहीं, लड़कियों की सारी जात को उलाहना दे रहा था :

मैं एक बैरंग चिट्ठी हूं ।
ज़रा ख्यालों का वजन ज्यादा था
और खुदा ने टिकट कुछ कम लगाई थी
सो इस दुनिया में मुझे किसी ने डाकखाने से छुड़ाया नहीं !

पर डाकखाने से छुड़ाई गई चिट्ठी का क्या बनता है ? हर चिट्ठी अन्त में रद्दी की टोकरी में चली जाती है या ज्यादा से ज्यादा किसी मेज के खाने में···

नामों का क्या है—वह पंडित की पत्नी में भी खो जाते हैं, अखबारों में भी, इतिहासों के सफों में भी···

कामयाबी क्या चीज है ? यह सिर्फ एक बाजीगरी है। जितना भी कोई अच्छा बाजीगर है, वह उतना ही कामयाब है···

व्यवहार,···कैरियर···एक दूसरे की जेब में से पैसे निकालने का दूसरा नाम है। जो कोई किसी की जेब में से बहुत पैसे निकाल सकता है वह उतना ही सफल समझा जाता है···

नलिन बहुत कम बोलता है, पर जब बोलता है, कई बार काम का बोलता है। कई बार डिस्गसटिंग [अरुचिकर] भी होता है, पर कई बार अच्छा लगता है। लिखता कुछ नहीं, सोचता है—'सिर्फ तब लिखूंगा जब मेरा लिखा हुआ बैन [जब्त] होने के काबिल हो सकेगा'···कभी-कभी सचमुच वह हेनरी मिलर का वारिस लगता है···

एक दिन उसने कमाल किया था—कालेज का प्रोफेसर नैश्नलिज्म पर लेक्चर दे रहा था—वह बोला नहीं, सिर्फ फैली-फैली आंखों से देखता रहा, प्रोफेसर की तरफ भी और सुननेवालों की तरफ भी।

प्रोफेसर चला गया, वह फिर भी बैठा रहा। जब किसीने बहुत पूछा, तो वह उठकर, प्रोफेसर की जगह पर खड़ा हो गया और कहने लगा—"मैं तुम्हें नैशनलिज्म के सही अर्थ बताता हूं।" उसने सिर्फ चार लाइनें कही थीं, पर सब कांपकर रह गए थे। वह सिर्फ मुस्करा रहा था, और कह रहा था :

वेल्कम, सेज़ द मदर
माई हार्ट इज़ ऐन ओवन

बेकिंग स्पिरिचुअल ब्रेड
कम ऐंड ईट ऑफ यूअर फैलो चिल्डरन···

[स्वागत, मां कहती है—मेरा दिल एक चूल्हा है, जिसमें आध्यात्मिक रोटियां पकती हैं। आओ, और अपने साथी बच्चों का आहार करो !]

पंक्तियां पता नहीं किसकी थीं, पर वह छाती में से निकालकर पढ़ रहा था और उन पंक्तियों ने नैशनलिज्म के जिस्म पर पड़ा हुआ रेशमी चोगा फाड़ दिया था—चोगा भी नहीं—नर्म मांस की चढ़ाई हुई उसकी 'स्किन' उतार दी थी—और वह अपनी पूरी भयानकता के साथ सामने खड़ा था···

लगता है—वक्त की तरह, दुनिया की सफलता, शोहरत, कौम-परस्ती और देश-परस्ती के पास भी रंग-बिरंगे कपड़ों के कुछ जोड़े होते हैं···

सब बनी-बनाई कीमतें, उतारे और पहने जा सकनेवाले कपड़े होते हैं। कपड़े एक बाहरी दिखावा है, बाहरी और बनावटी भी। इसलिए यह एक ट्रैप [जाल] है। नरेन्द्र ट्रैप में फंस गया था, उसे मरने की जल्दी पड़ गई थी—नहीं तो जल्दी करने की क्या जरूरत थी, जबकि हर एक की उम्र का एक दिन रोज मर रहा है। उम्र के सारे दिनों को इकट्ठा करके एक दिन में मार देना हिटलर का कान्सेन्ट्रेशन कैंप है !···

नरेन्द्र ने शायद हिटलप बनकर देखना चाहा था, हिटलर भी और गैस चैम्बर में पड़ने वाला मनुष्य भी···इस तरह के दोहरे तजरबे से ही शायद वह अपने ट्रैप से बदला ले सकता था···

सैक्स शायद बहुत बड़ा ट्रैप है, क्योंकि इन्सान उसे अपने वजूद का सबूत समझकर बरतता है। नरेन्द्र के मन की हालत पता नहीं क्या थी, बाहर से वह बड़ा चुपचाप और शान्त दिखता था। कालेज में उसने डिस्टिंक्शन ली थी, पर छुट्टियों में घर जाकर स्यूइसाइड [आत्महत्या] कर लिया। बात का कोई सिरा आपस में जुड़ता नहीं। सो सिरा शायद यही था, जो सब कहते हैं कि उसे यह ख्याल हो गया था कि वह जिस्मानी तौर पर···

जावेद ने, नरेन्द्र की मौत पर, नरेन्द्र की तरफ से एक नज्म लिखी है :

गंदले पानी में कुछ कुलबुले उठते हैं
मैंने डिक्शनरी देखी है—इनका नाम आशाएं हैं
मैं खूब हंसा हूं—और अभी मैंने इस डिक्शनरी को फाड़ दिया है।

सुनकर माथे की नसों में दर्द होता है। पर सोचता हूं—अस्तित्व इसके बगैर भी तो हो सकता था—कम्पलीट और इण्डिपेण्डेण्ट [पूर्ण और स्वतन्त्र] हालांकि 'कम्पलीट' नाम की कोई चीज नहीं। पर जो बाकी के अधूरेपन को पूर्णता कहा जा सकता है, तो इसको भी कहा जा सकता है। और वह स्वतन्त्र हर तरह से ज्यादा था—इतना कि औरत के अस्तित्व से भी स्वतन्त्र था···

पता नहीं किसी-न-किसी तरह की मोहताजी इन्सान के लिए क्यों जरूरी होती है—औरत और इश्क को भी सबने इसी सूरत में स्वीकारा है···

मुझे कभी किसी से इश्क नहीं हुआ, न हो सकता है। इश्क जिन अर्थों को अपने साथ लपेटकर चलता है, अगर वह इश्क के जिस्म से झड़ जाएं तो फिर उसका नाम-पता नहीं क्या होना चाहिए। मैंने सिर्फ वह अनाम चीज देखी है। उसका मेरे साथ घटित होना, अपने आप में स्वतन्त्र है—इतना कि जिसके द्वारा घटित हुआ है, उसे बताने की जरूरत भी खत्म हो गई है···

कोई गुलामी स्वतन्त्रता को जन्म नहीं दे सकती, सिर्फ स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता को जन्म देती है। इसी हालत ने शायद इस हालत को जन्म दिया है कि वक्त अब चाहे अपने तीन जोड़ों में कोई जोड़ा पहन ले, मुझे फर्क नहीं पड़ता···

अपने आप की खुदाई में से मुझे जो कुछ मिला है, देख सकता हूं—उसकी जड़ वहां तक गहरी है, जहां तक 'मैं' हूं···तो मैं न भूत के कफन में लपेटा जा सकता हूं, न भविष्य के छलावे में।

तरीज़ा ने एक तरह से इस खुदाई में मेरी मदद की थी—चेतन तौर पर नहीं, पर अचेतन तौर से उससे हो गई थी। वैसे एक दिन आई तो वह मुझसे मदद लेने के लिए थी—बड़ी घबराई हुई, अपने कपड़ों में ही सिकुड़ रही थी। खिड़की में से आती हवा से उसके कपड़े हिलते थे, और कपड़ों के जोर से वह हिलती लगती थी।

"मिस्टर मलिक···" वह माचिस की तीली की तरह एकबारगी भड़ककर बोली थी, फिर अडोल-सी जलती खड़ी रही थी।

उस वक्त समझ में नहीं आया था, पर अब समझ में आ रहा है, वह मुझसे कुछ भी पूछने से पहले एक जलती तीली की तरह सोच रही थी कि अगर वह आगे होकर मेरे अन्दर की किसी बत्ती को छू गई तो बत्ती जला लेगी, पर जो वह किसी गलत जगह पर छू गई तो कुछ-न-कुछ फूंक देगी···

शायद फिर वह जलाने और फूंकने के फर्क को समझने के लिए और सब्र नहीं कर सकती थी, या उसके डर से आतुर हो गई थी, उसने एकबारगी जो कहना था कह दिया। कहने लगी :

"होमो क्या चीज होती है ?"

"वा'''अ'''ट ?" मैंने उसे कुछ बताने की जगह पूछ लिया।

"यही लफ्ज़ था, जो मैंने सुना था। मुझे कुछ पता नहीं लगा, पर जिस लहजे में कहा गया था, वह बहुत खराब था। ममी को पूछना चाहती थी, पर पूछा नहीं। वे आगे ही बहुत परेशान थीं।"

"किसने कहा था, किसको कहा था," मैं इतना पूछ नहीं रहा था, जितना सोच रहा था।

तरीज़ा की आंखों में आंसू आ गए थे—उसने न छिपाए थे न पोंछे थे। मेंह में भीगी बिल्ली की तरह वह मेरे पास गुच्छा हुई जा रही थी।

चुप खड़े रहना, और उसे ऐसे देखे जाना कुछ गैर-इन्सानी लग रहा था, मैंने हथेली से उसका मुंह पोंछा—उसकी आंखें भी—जैसे भीगे बालों को निचोड़ा जाता है।

"आप मुझसे नाराज तो नहीं ?" उसने एकदम पूछा। मुझे पता नहीं लग रहा था कि उसे यह पूछने की जरूरत क्यों पड़ी थी। पर यह पता लग रहा था कि उसे कुछ दिलासे की जरूरत थी।

"वा'''इ'''ई ?" समझ नहीं आ रहा था कि मैं उसे कोई दिलासा कैसे दे सकता था।

"उस दिन सारी शरारत उनकी थी, मेरा कोई कसूर नहीं था," जब उसने यह कहा तो मुझे हंसी आ गई। मुझे पता था उस दिन तरीज़ा की तरफ से चाय का जो इन्विटेशन दिया गया था, वह उसके लिए भी शॉकिंग था। पर इस वक्त पर उस दिन की बात छेड़ती हुई वह एक छोटी-सी बच्ची लग रही थी। मैंने उसका हाथ पकड़कर उसे कुर्सी पर बिठाया।

"बिल्ली-सी, यह तूने कैसे सोच लिया कि मैं तुझसे नाराज़ हूं ?"

"बाद में मैंने ममी को भी बता दिया था। वह इन्विटेशन भी दिखाया था। ममी ने हंस भर दिया था।"

मेरा सांस मुझे कुछ अटकता-सा लगा, पर एक पल। दूसरे पल मैंने उसे अपनी नहीं तरीज़ा की परेशानी से जोड़ दिया।

पूछा—"पर अभी तू रोई क्यों थी ?"

"मेरे एक अंकल हैं, पापाजी से छोटे। आपको पता है न, मेरे पापा की डेथ हो गई है ?"

"पता है।"

"बिजनेस मेरे पापा का था, पर उसमें अंकल का भी शेअर था। अंकल ने अपने शेअर से ज्यादा बहुत कुछ ले लिया है। बिजिनेस भी सब संभाल लिया है, फिर भी वे मेरी ममी को तंग करते हैं। कल वे फिर आए थे'''कल मेरी ममी बड़ी

खीझी हुई थीं…"

"अगर वे चाहें तो किसी अच्छे वकील को…"

"वकील की जरूरत नहीं, ममी कहती हैं अंकल कानूनी तौर पर कुछ नहीं कर सकते।"

"फिर ?"

फिर बाकी बात शायद बड़ी नाजुक थी, और उसी नाजुक जगह को मेरा सवाल छू गया था। तरीज़ा का मुंह एकबारगी लाल हो गया।

एक झिझक भी, पर झिझक से भी बढ़कर तरीज़ा के मुंह के रंग में एक गुस्सा था। इसी गुस्से से खौलकर उसने कहा, "जब ममी नहीं चाहतीं, तो अंकल का क्या हक है उन्हें तंग करने का! ममी ने कई बार उन्हें घर आने से मना किया है, पर वे फिर आ जाते हैं।"

"पर वे चाहते क्या हैं ?"

"ममी कहती हैं कि वे हमारी जायदाद छीनना चाहते हैं।"

"यह वे किस तरह कर सकते हैं ?"

तरीज़ा बहुत देर बोली नहीं। फिर बोली तो लगा—वह नहीं बोल रही थी, सिर्फ उसके होंठ कुछ टेढ़ा होकर एक वल-सा खा रहे थे—"ही वांटस टु मैरी माई ममी एण्ड ओन एवरी थिंग।" [वे मेरी मां से विवाह करके सब कुछ हथियाना चाहते हैं।]

मेरा सिर झुक गया—सिर मेरा नहीं था, मर्द की जात से सम्बन्धित था, इसलिए एक मर्द का सिर था।

"कल वे जिस वक्त बोल रहे थे, मैं अपने कमरे में थी, पर आवाज इतनी ऊंची थी, मेरे कमरे में आ रही थी। पर इस बात का कुछ नहीं। मुझे पता है वे सारी उम्र भी लगे रहें तो भी ममी को नहीं मना सकते। पर कल वे पापा के बारे में कुछ कह रहे थे…"

"पापा के बारे में ?"

"वे मनी को कह रहे थे कि ममी सारी उम्र जिन्दगी से डिप्राइव्ड [वंचित] रही थी, क्योंकि पापा होमो थे। यह होमो क्या होता है ?"

देर हो गई उसकी डायरी पढ़ी थी—उसमें सब कुछ उदास था, पर सब कुछ चुप था। इसको मैंने उस तरह ही ले लिया था, जिस तरह यह था। इससे ज्यादा कुछ मैंने जानना नहीं चाहा था। पर अब यह जाना गया था…

यह जानकर—मेरी आंखों में जमी हुई जानने की एक अचेत-सी तह—शायद हिल गई थी।

'उसका मुंह' और प्रत्यक्ष-सा हो गया। अब डायरी के भरे सफों में भी उसे देख सकता था और खाली सफों में भी। पर यह नहीं कह सकता था कि उसे ऐसे देखकर और उदास नहीं हो गया था। लगा आंखों में जो कुछ प्रत्यक्ष हो गया था, वह बड़ा अप्रत्यक्ष बनकर मेरे भीतर उतर गया था···

तरीज़ा को उसकी बात का जवाब देना था। इसीलिए दिया। लफ्ज़ों को जहां तक 'माइल्ड' कर सकता था, किया। यह नहीं चाहता था कि उसके मन में उसके पापा का व्यक्तित्व हल्का पड़ जाए, इसलिए यह भी कहा, "आदत अच्छी नहीं, पर उन्हें किसी वक्त किसी कमजोर घड़ी में पड़ गई होगी। पर एक किसी बुरी आदत का मतलब यह नहीं होता कि उस आदमी का सब कुछ बुरा हो जाता है।"

"माई गॉड···आई नेवर इमेजिंड···"

तरीज़ा ने इससे ज्यादा कुछ नहीं कहा। सिर्फ जाते हुए मेरी तरफ नजर भर के जरूर देखा। उसकी आंखों में एक खामोश-सी इल्तिजा थी कि आज उसने मेरे कमरे में आकर जो भी बात मेरे साथ की थी, उसे यहीं रहना चाहिए था।

पगली···

तरीज़ा के जाने के बाद पता नहीं किस वक्त दिन ढल गया था, कमरे की बत्ती जलाने का ख्याल उस वक्त आया था, जिस वक्त बाहर बरामदे में से आते रावल की आवाज आई थी, "ओ मिस्टर आउट ऑफ डेट !" वह हमेशा यही कहकर आवाज देता है। मैं हमेशा ही हंस देता हूं। मुझे उसकी 'हस्की' [भर्राई हुई] आवाज अच्छी लगती है।

जावेद भी उसके साथ था—कहीं जैम सैशन पर जा रहे थे। कोई और दिन होता शायद चला जाता, पर उस दिन बिल्कुल नहीं जा सकता था।

"यू आर लॉस्ट आर्टिकल इन द पोस्ट आफिस," [तुम डाकखाने में खोई गुमनाम चीज हो।] आखिर जावेद ने कहा और मुझे ले जाने का पीछा छोड़ दिया।

फिर पता नहीं किस वक्त मैं सो गया था, रात की रोटी नहीं खाई थी। एक अजीब तसव्वुर था, जो सपने की शकल में सारी रात मुझे दिखता रहा था—सूरज से किरणें झर रही थीं···नीचे धरती पर गिर रही थीं···जिस तरफ भी कोई किरण गिर रही थी, मैं उस तरफ ही दौड़ रहा था···और किरणों को मैं जलती-बुझती तीलियों की तरह उठा-उठाकर दोनों हाथ में पकड़े जा रहा था···

आई थिंक इट इज़ द सैनिटी ऑफ मैडनैस !···[मेरे ख्याल में यह दीवानगी की अकलमन्दी है !]

लगा—रात एक लम्बी सड़क की तरह थी। पर सारी सड़क टूटी हुई। थोड़ी-थोड़ी देर बाद टूटी हुई जगह पर से एक छलांग-सी लगानी पड़ती थी। सड़क का कुछ हिस्सा फिर बड़ा समतल आ जाता था, पैर लगातार चलते जाते

थे, पर फिर सड़क पर पड़े हुए एक बड़े सारे गढ़े की तरह कुछ आ जाता था···

यह शायद जनवरी की बात थी। फिर फरवरी हो गई। मैं रात की लम्बी सड़क पर चलता रहा। रात एक थी, पर हर रात के टुकड़ों में टूटी हुई। बीच में रोज एक दिन आ जाता था, जिसे एक छलांग-सी मारकर लांघना पड़ता था···

सूरज और सूरज में भी फर्क होता है, यह मैंने तब देखा था। हर रोज जो सूरज हम सब देखते हैं, वह आसमान पर बहुत फैला हुआ होता है। जिस तरफ देखो वहां ही वह दिखता है। इतना कि हर जगह पर वह दखलअन्दाजी करता है, दूसरों को हीन-सा करता भी। पर जो सूरज मैं तब रातों को देखता था, वह सारे आसमान पर एक कोने में अकेला बैठा होता था। उसका निजी अस्तित्व था—छोटा-सा। और वह किसी के भी निजी अस्तित्व को लघुआता नहीं था। चारों तरफ रात का अन्धेरा होता था। वह अन्धेरे में भी कोई दखल नहीं देता था, सिर्फ अपने बैठने वाली जगह को अपनी रोशनी से धो लेता था···

मैं धरती पर घूमता सिर्फ उसकी किरणें चुनता था। कई बार कोई किरण किसी बड़ी मुश्किल-सी जगह पर जा गिरती थी—किसी फिसलते ढलान पर··· या एक बड़े गहरे गढ़े में···या पानी के एक गहरे जोहड़ में···या बड़े कीचड़ में···

पर मुझे किरण जरूर पकड़नी होती थी, कई बार मेरे घुटने छिल जाते थे, या कोहनियों में से खून रिसने लगता था, या पैर उलटा जा पड़ता था, या सारी लात कीचड़ में घुस जाती थी ··

वहां कभी कोई जीव-जन्तु मैंने नहीं देखा था। रोज अकेले दौड़ने की और किरणों को चुनने की मुझे आदत-सी पड़ गई थी; और फिर एक बार मैंने देखा, मैं अकेला नहीं था। एक साये जैसा, वहां कोई और भी था। मेरे पास नहीं, पर दूर एक झांवले की तरह दिखता। किरणें गिर रही थीं, मैंने सोचा कि मेरी तरह शायद वह साया भी किरणें चुनेगा। पर किरणें गिरती रहीं, उसने एक भी किरण नहीं चुनी। एक बिल्कुल उसके पैरों के पास जा गिरी थी, पर मैं देखता रहा, उसने पैरों के पास गिरी हुई किरण भी नहीं पकड़ी थी···

पर मुझे वह पकड़नी थी, इसलिए जल्दी से चलता हुआ उस तरफ गया। साया उस वक्त भी अपनी जगह पर था, किरण उस वक्त भी उसके पैरों के पास गिर पड़ी थी। जब मैं बहुत नजदीक पहुंचा, ठिठक गया, किरण के हल्के-से उजाले में उस साये को पहचान सकता था···

देखता रह गया···

वह मुस्करा दी। बोलने की पहल भी उसने की :

"मिस्टर मलिक ! रोज ये किरणें किसलिए चुनते हो ?"

"रोज ? आपको किस तरह पता है ?"

"मैं रोज देखती हूं।"

"आप यहां रोज…"

"मैं रोज रात को यहां ही कहीं होती हूं…"

मीलों तक रात थी, वीरानी थी। वह बिल्कुल मेरे सामने थी—मेरे और उसके बीच थोड़ा-सा फासला था, और उस फासले में एक किरण गिरी हुई थी…

"क्या करोगे किरणें चुनकर?" उसने फिर पूछा।

"पता नहीं।" मैंने सिर झुका लिया।

मैंने झूठ नहीं कहा था, मुझे सचमुच पता नहीं था कि मैं यह किरणें चुनकर क्या करूंगा…

कुछ सोचकर नहीं चुनता था। बस गिरती देखता था, इसलिए चुन लेता था। पर उस वक्त जब उसने सवाल पूछा, मुझे लगा कि मैं इन्हें सचमुच किसी काम के लिए चुन रहा था, और इकट्ठा कर रहा था। मुझे लगा कि बहुत-सी किरणें इकट्ठी करके मुझे उस बुत में डालनी थीं, जो बुत उसने बरसों से बनाकर रखा हुआ था, पर उसमें जान नहीं पड़ी थी…

मुझे एक तसल्ली-सी हुई कि मुझे जवाब पता चल गया था। पर मैं यह जवाब उसे नहीं बता सकता था, इसलिए चुप था।

"तुम्हें एक बात बताऊं?" उसकी आवाज आई। जवाब में मैं सिर उठाकर उसकी ओर देखने लगा।

"हर इन्सान एक सूरज होता है।" उसने कहा, फिर चारों ओर रात के अन्धेरे को देखती, और फिर आसमान के एक कोने में बैठे हुए सूरज को देखती हुई कहने लगी, "इन्सान धरती और आसमान को रोशन नहीं कर सकता, सिर्फ अपनी चप्पा-सी जगह पर ही उसका हक होता है…"

"इस सूरज की तरह?"

"हां, इस सूरज की तरह।"

"पर इसकी किरणें रोज झरती हैं।"

"इन्सान की भी सारी सोचें, सारे ख्याल, सारे सपने उससे रोज झरते हैं।"

"पर वह…"

"नहीं, टूटी हुई किरणों को चुनने से कुछ नहीं बनता। यह तिनकों की तरह हो जाती हैं। चमकती हैं, गर्म भी होती हैं, फिर भी तिनकों की तरह होती हैं।"

मैंने उसके और अपने पैरों के बीच गिरी हुई किरण को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया था, पर फिर उसे पकड़ा नहीं।

"मैंने सोचा था…" कहता-कहता चुप हो गया।

"तुमने क्या सोचा था?" उसने धीरे से मुस्करा के पूछा।

"बता दूं?"

"बता दो, पर मैं जानती हूं…"

"आप जानती हैं ?"

एक पल हैरानी-सी हुई, कुछ घबराहट भी, पर दूसरे पल मैंने अपने-आपको यकीन दिलाया कि उसका अन्दाजा कभी भी ठीक नहीं हो सकता।

"तुम सोचते हो कि ये किरणें जोड़कर तुम मेरे मिट्टी के बुत में डाल दोगे, तो बुत में जान पड़ जाएगी ?"

मुझे नहीं पता, उसने यह सब कुछ कैसे जान लिया था। पर जान लिया था। और कह भी दिया था।

"अच्छा, जो मैं यही सोचता होऊं ?" अब मैं कह सकता था।

"सोचने से कुछ नहीं बनता, मैं यह करके देख चुकी हूं।" वह हंस-सी पड़ी।

"आप…"

"मैं भी तुम्हारी तरह, बरसों हुए, इसी तरह रोज रात को यह किरणें चुनती रही थी।"

"मेरी तरह ?"

"एक उम्र होती है, जब ये किरणें चुनने को जी करता है। सिर्फ जी ही नहीं करता, विश्वास भी होता है कि यह मिट्टी के बुत को भी छुआएंगे तो उसमें जान पड़ जाएगी—पर किसी बुत में जान नहीं पड़ती।"

मैंने सिर झुका लिया। हाथ में पकड़ी हुई किरणें भी नीचे फेंक दीं। उसके और मेरे बीच में किरणों का एक ढेर-सा लग गया…

कहीं-कहीं कोई किरण अब भी सूरज से झड़ रही थी। और फिर एक किरण गिरी, बिल्कुल उसके कान के पास, और उसके बालों में अटक गई…

देख रहा था—एक आग की कली-सी उसके बालों में टंकी लग रही थी…

यह मेरा सपने में उसके साथ हुआ पहला मिलन था। इसने बहुत कुछ दिया था पर एक शाप-सा भी। क्योंकि उसके बाद मुझे किरणें चुनने का सपना फिर नहीं आया।

मैं पहुंचा कहीं नहीं, पर रात की सड़क खत्म हो गई लगती है, या किसी जगह से इतनी टूट गई है कि शायद उसके आगे आ गए दिन की किसी खाई में गिर पड़ा हूं…

यह सफेद दिन जैसी चेतनता है—कांशसनेस…

बड़ी होशमन्दी से मैंने एम० एस-सी० का इम्तिहान दिया है। यह भी शक नहीं कि मैंने कहीं कसर रखी है, पर इस सब कुछ को लेकर मुझे कहीं पहुंचना है, यह बात खत्म हो गई है। एक चेतनता है पर गहरी खाई की तरह…

कभी कुछ पल ऐसे होते हैं, जब मैं इस खाई में से निकलकर फिर अपनी पुरानी सड़क पर चल सकता हूं। क्योंकि जागृति और सपना एक चीज का सीधा और उल्टा तरफ होता है। तब मैं रात को जो कुछ अपने ऊपर ओढ़ता था, उसका सीधा तरफ, सपनोंवाला तरफ, बाहर को होता था, और जागृति वाला अन्दर को। पर अब किसी पल उसे उल्टा करके ओढ़ लेता हूं—सपनों वाला तरफ अंदर को और जागृति वाला बाहर को···

तो फिर वह पल देख सकता हूं···उसके कान के पास उसके बालों में, आग की एक कली टंकी हुई है···

कई बार जिद-सी होती है कि मैं उसके बालों में से आग की कली उतारकर, फूल की कली क्यों नहीं टांक सकता?

पर फिर मेरी जिद मेरे सामने हार-सी जाती है—

मेरे सामने नहीं, उस चीज के सामने, जिसको देखकर और भुगतकर उसने कहा था कि टूटी हुई किरणों को चुनने से कुछ नहीं बनता···

उसकी आवाज का एक टुकड़ा, उसके होंठों पर आई मुस्कराहट का एक टुकड़ा, और उसकी आंखों से निकलकर सीधा मेरे मुंह पर पड़ी उसकी नजर का एक टुकड़ा, मेरे मन में पड़े हुए हैं···

कभी सोचता हूं—यह तिकोन पत्थरों की तरह क्यों नहीं? यह कहीं मुझे चुभते या कहीं से मुझे छीलते क्यों नहीं? इनकी दी हुई पीड़ा से कराहकर देखना चाहता हूं···

नहीं, किसी अंग में कोई पीड़ा नहीं, सब अंगों में एक अलसाहट है। पर यह पतली धुंध जैसी अलसाहट पता नहीं कहां से आई है! शायद अचेतनता की सड़क पर चलते, चेतनता की जिस खाई में गिर पड़ा हूं, यह उसी खाई में से उठती धुंध है···या जिस दर्द को मैं टीस की सूरत में नहीं देख सकता यह उस दर्द की खुशबू है···

नींद और जागृति को मैं काले और सफेद रंग की तरह दो अलग-अलग शीशियों में नहीं डाल सकता। जागता हूं तो नींद का एक टुकड़ा मेरी जागृति में भी शामिल रहता है, सोता हूं तो जागृति का एक टुकड़ा मेरी नींद में खड़ा रहता है···

होशमन्दी का यह टुकड़ा पता नहीं इतना 'अलर्ट' [चौकन्ना] क्यों है···

आई सपोज इट इज एफरेड ऑफ़ मी···[मेरा ख्याल है वह मुझसे डरता है] नहीं मुझसे डरने वाली कौन-सी बात है। मेरा ख्याल है यह नींद से डरता है। यह सोचता है कि नींद इसको ओवर पावर कर जाएगी···

शायद यह नींद को उस घड़ी की तरह सोचता है, जिसे रोज एक चाबी लगानी चाहिए। और सोचता है अगर वह उसे चाबी लगाना भूल गया तो वह

रुक जाएगी···

वह शायद वक्त से नहीं डरता, वक्त की लाश से डरता है···

पर पता नहीं वह क्यों डरता है ! लाश सिर्फ इन्सान की भयानक होती है, वक्त की नहीं होती। लोग इन्सान की लाश को देखकर नाक पर रूमाल रख लेते हैं, पर वक्त की लाश को वे बड़े शौक से सूंघते हैं !···

इतिहास में इस लाश की बड़ी तेज बू होती है, पर लोग सिर्फ सूंघते नहीं, दूसरों को भी सुंघाते हैं, वह हर जगह पर, और हर मौके पर, इतिहास की कोटेशन्ज़ [उद्धरण] देते हैं···

लोगों को पास्ट में भी इसकी गन्ध होती है, और इस गन्ध को वे अपनी यादें बना लेते हैं···

सिर्फ यादें नहीं, वे लाश से मांस का एक टुकड़ा उतारकर उसका 'सावेनियर' भी बनाते हैं···मरे हुओं की चीजें संभाल-संभालकर रखते हैं।

नहीं, वक्त की लाश भयानक नहीं होती। इसलिए हो सकता है कि मेरी होशमन्दी का यह टुकड़ा वक्त की लाश से नहीं डरता, वह अपनी लाश से डरता है···

आल राइट—जो वह इस तरह डरता है, तो मैं उसकी कुछ मदद कर सकता हूं। ऐसे मैं उसकी रोज मदद करता हूं—वह मुझे कालेज जाने के लिए कहता है, मैं चला जाता हूं, वह मुझे रोटी खाने के लिए कहता है, मैं खा लेता हूं, और जो भी कहेगा कर दूंगा···

पर मेरा ख्याल है, वह इतना मासूम नहीं, जितना मैं सोचता हूं। मुझे सोच-समझकर उसका कहा मानना चाहिए। अभी तक उसकी गेम बड़ी इन्नोसेंट लगती है, पर बात का क्या यकीन कि वह हमेशा इस तरह ही रहेगी ? वह कई बार अपने आपको 'सीक्रेट ऑफ एग्जिसटेंस' [अस्तित्व का रहस्य] कहकर बड़ी जोर से हंसता है। ही इज ए लिटिल डेवल—नहीं, ही इज बिग डेवल। कई मिसालें मेरे सामने हैं। सारी दुनिया इन मिसालों से भरी हुई है। ही प्लेज ए वेरी डर्टी गेम विद पीपल···उसे सिर्फ अपने जीने से मतलब है, और किसी चीज से कोई मतलब नहीं। धीरे-धीरे वह लोगों की मिन्नत, मोहताजी छोड़ देता है, और लोगों के सिर पर सवार हो जाता है—और फिर वह लोगों के सिरों से उतर जाता है। दुनिया को अमीरों और गरीबों की श्रेणी में सिर्फ उसी ने बांटा है। हाकिमों और गुलामों की श्रेणी में उसी ने बांटा है। वह कभी लोगों को धर्म का वास्ता देता है और उन्हें ललकारकर अपने आगे लगा लेता है। कभी किसी 'इज़्म' की अफ़ीम उन्हें खिलाता है और लोग उसी नशे में उसका कहा माने जाते हैं। वह कभी

'पावर' की शराब उन्हें पिलाता है, तो लोग उसके कहने पर जंग के हथियार हाथों में पकड़ लेते हैं।

वट ए क्रूअल गेम···[कैसा क्रूर खेल है!] लोग मरते भी हैं—मारते भी हैं, पर समझते हैं कि उनके अस्तित्व के लिए यह सब जरूरी है--जीते हों तो ताकत की शक्ल में, मर जाएं तो शहीदों की शक्ल में।

खैर--जब तक वह मेरे साथ सीधी-सादी गेम खेलता है, ठीक है, पर जब उसने कोई भी चालाकी की—आई विल सिम्पली लॉफ ऐंड आस्क हिम गो टू हेल्···[मैं हंसूंगा और उसे जहन्नुम में जाने को कहूंगा।]

इसी 'सीक्रेट ऑफ एग्जिसटेंस' की भयानक खेल को सोच रहा था, कि तरीज़ा आई थी। इसी सोच की जैसे गवाही देने आई थी।

बहुत चुप थी, पर होंठ इस तरह कसे हुए थे, जैसे उसके होंठों को इस चुप पर गुस्सा आ रहा था।

"तुम्हें पता है, शकुन्त एक महीने की छुट्टियां लेकर घर चली गई है?" उसने आखिर अपनी खामोशी तोड़ी थी, पर उसका माथा इस तरह कसा हुआ था, जैसे वह इस चुप को तोड़ने पर उससे नाराज था।

"शकुन्त कौन?" मुझे न शकुन्त के बारे में समझ आई थी, न तरीज़ा के गुस्से की।

"वह लड़की, जिसे ड्राइवैल पार्टी वाले दिन सारे मिस शार्ट स्टोरी कह रहे थे।"

"अच्छा, नहीं मुझे नहीं पता।"

"वह कुछ दिनों से बीमार थी, इसलिए उसकी मां आकर उसे होस्टल से ले गई है।"

"पर इसमें हैरानी वाली या गुस्से वाली क्या बात है?"

"उसकी मां उसे पहले यहां किसी डाक्टर के पास ले गई थी, फिर उसने एक महीने की छुट्टी के लिए अरजी दे दी कि डाक्टर ने उसका आपरेशन बताया है।"

"फिर?"

"कुछ नहीं···इट इज ऑल डिस्गस्टिंग।"

"यह सच नहीं?"

"सच है, पर पीकिंग स्टाइल सच।"

तरीज़ा गुस्से में भी थी, खीझी हुई भी थी, पर मुझे उसके फिकरे पर खिल-खिलाकर हंसी आ गई। स्टूडेंट्स चाहे पॉलिटिक्स से कितना भी दूर रहें, पर चारों तरफ घटने वाली घटनाएं हवा में जर्म्ज [कीटाणुओं] की तरह मिल जाती हैं।

"यह हंसने वाली बात है?"

"मैं बात पर नहीं, तेरे कहने के अन्दाज पर हंस रहा हूं। मेरा ख्याल है कि तू बहुत अच्छी जरनलिस्ट बन सकती है। बात नहीं, बात को कहने का अन्दाज जरनलिस्ट होता है···"

"अगला चाहे मरता रहे, पर जरनलिस्ट बात का अन्दाज ढूंढ़ता रहे।"

"तूने आज की अखबार देखी थी?"

"नहीं, कोई खास बात थी?"

"बड़ा बढ़िया हैडिंग था, 'चाइना कल्चर पर इण्डियन कल्चर की विकट्री'···"

"और क्या लिखा हुआ था?"

"इंगलैंड में कुछ दिनों से लड़के माओ जैकेट पहन रहे थे, और खबर थी कि अब उन्होंने उसकी जगह नेहरू जैकेट पहननी शुरू कर दी है।"

तरीज़ा मुस्करा दी, उसका रौ कुछ स्वाभाविक-सा हो गया। इसलिए मैंने कहा—"दिस इज जरनलिज्म, यू मस्ट एप्रिशिएट।" [यही पत्रकारिता है, तुम्हें इसकी तारीफ करनी चाहिए।]

"हां, पर मैं इस वक्त जरनलिस्ट बनकर बात नहीं कर रही। वह मेरे साथ पढ़ती थी, मुझे सचमुच एक दुःख है, उसपर गुस्सा भी आ रहा है, पर गुस्सा सिर्फ उसके ऊपर नहीं, उस लड़के पर भी आ रहा है—"

"किस लड़के पर?"

"जिसकी वजह से यह सब कुछ हुआ है। आप ओम को शायद नहीं जानते, वह आर्ट कर रहा है। होस्टल का लड़का नहीं।"

"उसे इस बात का पता है?" मैंने पूछा। अब मुझे तरीज़ा की खीझ का पता लग गया था।

"बिल्कुल पता है, पिछले दिनों में वह शकुन्त के साथ शादी का इकरार भी करता रहा था; पर जब बात सामने आई, तो वह साफ मुकर गया। शकुन्त की मां ने उसे बुलाकर बात की, वह उल्टा बोलने लगा कि शकुन्त अच्छी लड़की नहीं थी, वह एक अमीर आदमी का लड़का था, इसलिए उसे वह जबर्दस्ती 'हुक' कर रही थी।"

"इट इज़ रीअली सैड।" [यह सचमुच अफसोस की बात है।]

"सैड? इट इज़ हॉरिबल।" [अफसोस की बात? यह तो वास्तव में भयानक है।]

तरीज़ा कुछ देर चुप रही, फिर बौखला-सी पड़ी। "उसकी शक्ल ऐसी हो गई थी, जैसे वह एक लड़की नहीं रह गई थी, लड़की का प्रेत बन गई थी। आपको पता नहीं वह कितनी शार्प थी। बात कितनी लम्बी हो, वह एक फिकरे में कह सकती थी। इसीलिए उसका नाम जावेद ने मिस शार्ट स्टोरी रखा था।

पर उसका सब कुछ ओम के एक ही फिकरे के साथ खत्म हो गया···

और तरीज़ा ने, हांफ-सी गई ने, कहा—"एग्ज़िसटेंस सिर्फ अपनी जरूरी होती है ? दूसरे की नहीं ? एक की एग्ज़िसटेंस दूसरे की लाश पर से गुजरकर ही कायम रह सकती है ?"

जवाब में क्या कह सकता था ? लाश-इन्सान की हो या कीमतों की—दुनिया में कितने एक पैर हैं जो लाशों पर से नहीं गुजर रहे···

'एग्ज़ाइल्ड' [जलावतन] अचानक यह लफ्ज़ मेरी जबान पर आया है और फिर वहीं खड़ा हो गया है। एक सॉलिड टुकड़े की तरह। शायद च्यूइंगम की तरह, क्योंकि मेरी जबान इसे धीरे-धीरे चूस रही है और इसकी फ्लेवर मेरे भीतर उतर रही है···

अब मैं समझ सकता हूं कि ऐग्ज़िसटेंस का भयानक सीक्रेट मेरे साथ क्यों कुछ नहीं कर सकता—मैं उसकी हद से परे हूं, मैं जलावतन हूं···

मैंने अभी अपने ट्रंक में से पुरानी एलबम निकाली थी, बहुत-सी मेरी ही तस्वीरें थीं, देखता रहा। शक्ल कुछ पहचानी-सी लगती थी, पर इस तरह, जैसे जिसकी भी थी, वह मेरा बहुत परिचित नहीं था। एलबम में मां की तस्वीर भी थी, बाप की भी। मैंने कोशिश की कि वह तस्वीर में से निकलकर कुछ मेरी तरफ बढ़ आएं, और मैं उनके अस्तित्व को महसूस कर सकूं। पर कुछ नहीं हुआ। वह चुपचाप तस्वीरों में बैठे रहे···

यह दिन का तीसरा पहर है शायद। लगता है यह जिन्दगी का भी शायद तीसरा पहर है। और सारे चार पहर ही तो होते हैं···

चौथा पहर भी किसी न किसी तरह बीत जाएगा···

चौथा पहर

एक दिन नलिन ने सबकी एक—'अरजेन्ट मीटिंग' बुलाई थी। कमरा मेरा चुना था। दफ्तरी कार्यवाही की तरह टाइप किया हुआ कागज था जिसके नीचे 'एजेंडा' लिखा हुआ था 'टु कन्सोल मिस मिस्ट्री'।

उस लड़की का नाम शायद मोनिका है, वैसे मोनी कहके बुलाते हैं। पता लगा कि मोनी के घर से मां-बाप का खत आया था कि उन्होंने उसके ब्याह का सब पक्का कर लिया था। ब्याह इम्तिहान के बाद होगा, पर सगाई की रस्म के लिए उन्होंने मोनी को एक दिन के लिए इलाहाबाद बुलाया था।

नलिन मुस्करा रहा था, मोनी चिढ़ी हुई उसकी तरफ देख रही थी। किसी-किसी वक्त बौखलाकर कह देती थी—"यू डैविल—"

"हां, मैं डैविल हूं, सो यू मस्ट मैरी एन एंजल।" [हां, मैं शैतान हूं, इसलिए तुम्हें किसी फरिश्ते से शादी करनी चाहिए।]

"यू शट अप।"

लफ्ज खोल रहे थे। बात का सिर-पैर पता नहीं लग रहा था। शीला बाकी की लड़कियों में से मोनी के ज्यादा करीब है। आखिर मैंने उससे पूछा कि बात क्या थी।

"हां, मिस स्टेटमैन्ट सारी बात बताएगी," जावेद ने हामी भरी।

शीला बोलने लगी तो केवल ने धीरे से कह दिया, "प्लीज़! जरा ख्याल रखना, स्टेटमैन्ट लम्बी न हो। बी ब्रीफ।" शीला चिढ़ गई। बोली नहीं।

"बात यह है," आखिर नलिन कहने लगा, "कि मोनी के माता-पिता, हर तीसरे महीने एक लड़का ढूंढ़ लेते हैं।"

"डिस्कवरी ऑफ ब्राइडग्रूम्ज़," जावेद बोला।

मोनी का गुस्सा और तेज हो गया। हंसी छिड़ गई तो शीला का गुस्सा इतनी देर में उतर गया था, उसने बात बताई कि मोनी के माता-पिता जो भी लड़का ढूंढ़ते हैं, मोनी को पसन्द नहीं आता। पिछली बार उन्होंने एक बड़े अमीर मिल मालिक का लड़का ढूंढ़ा था। मोनी ने कह दिया था, 'आई कान्ट बी ए पीस ऑफ फर्नीचर इन हिज़ ड्राइंग रूम! [मैं उसके ड्राइंग रूम का फर्नीचर नहीं बनना चाहती।]

"और इस बार?" याद नहीं किसने पूछा था

"इस बार मिलिटरी का एक अफसर है।" शीला ने जवाब दिया और बताया—"इस बार मोनी कहती है—'आई कान्ट बी ए पार्टी डॉल।'" [मैं दावतों में जाने वाली गुड़िया नहीं बनना चाहती।]

"कहीं इश्क का जखम तो नहीं खा लिया?" केवल मोनी की तरफ भी देख रहा था और नलिन की तरफ भी।

"जो ऐसी बात है तो ब्याह की पुल्टिस बहुत जल्दी बांध देनी चाहिए। आखिर मैं रोड स्कालर हूं। मैं हर मर्ज का इलाज बता सकता हूं," राहुल दीवार के पास बैठा हुआ था, पर यह बात कहता हुआ वह आगे होकर बैठ गया, और हाथ आगे करके मोनी को कहने लगा—"बीबी, जरा अपनी नब्ज दिखाओ।"

जावेद की हंसी सबसे ऊंची थी। राहुल बिल्कुल नहीं हंस रहा था, और कह रहा था, "यह आजमाई हुई बात है। एक राजा की बेटी इसी मोनी की तरह थी। राजा उसके लिए जो भी राजकुमार ढूंढ़ता, वह रोना शुरू कर देती। आखिर मेरे जैसे एक हकीम ने एक इलाज ढूंढ़ा। मोनी की तरह वह भी नहीं बताती थी कि

आखिर वह चाहती क्या थी। उसने राजकुमारी की नब्ज पर उंगली रखी और कहने लगा कि इस देश के सब खूबसूरत नौजवानों के नाम गिनो। आखिर उसने जान लिया कि एक खास नाम को लेते ही नब्ज तेज हो जाती थी। सो मैं मोनी की नब्ज देखता हूं और शीलाजी, तुम धीरे-धीरे सबके नाम बोलो। मिस्टर मलिक···जावेद···केवल···नलिन···और मेरा नाम भी ले देना, हालांकि मुझे उम्मीद नहीं···"

मोनी ने गुस्से में आकर राहुल का आगे किया हुआ हाथ मरोड़ा, और उठकर कोने में जा बैठी।

"यह इश्क—इश्क है—इश्क—इश्क," केवल ने कव्वाली गाने के अन्दाज में कहा, और फिर कहने लगा—"भई स्वयंवर क्यों न रचा लिया जाय; हम सब तैयार होकर बैठ जाते हैं, मोनी जिनके गले में जयमाला डालनी चाहे, डाल दे।"

तरीज़ा अभी तक चुप थी। एकदम खिलखिलाकर हंस पड़ी और गाने लगी : "आई सी द ब्राइडग्रूम बिहाइंड ए कुशन···" [मैं दूल्हे को कुशन के पीछे देख रही हूं।]

नलिन ने एक कुशन अपने घुटनों पर रखा हुआ था, सबकी नजर जब उसकी तरफ हुई तो, वह खिलखिलाकर हंस पड़ा।

"तुम्हें पता है यह हिप्पी स्टाइल ब्याह का गीत है," तरीज़ा कह रही थी और बता रही थी—" 'असली गीत है, आई सी द ब्राइडग्रूम बिहाइंड द ट्री,' अमरीका में इस तरह के ब्याह कई जगह होते हैं। एक बाग में सब चले जाते हैं, लड़का एक पेड़ के पीछे खड़ा हो जाता है। लड़की यूं ही इधर-उधर घूमती रहती है। फिर अचानक उसकी सहेलियां पेड़ की तरफ देखती हैं और गाना शुरू कर देती हैं। फिर एक जनी पेड़ के पीछे खड़े लड़के की बांह खींचकर उसे सामने ले आती है, और बस ब्याह हो जाता है···"

"यू—ए कनिंग फाक्स," नलिन तरीज़ा को कह रहा था और हंस रहा था।

"फिर यह सारी मुसीबत किस बात की है? मोनी अपनी माताजी को खत लिख दे और बस···" राहुल कह रहा था।

"मेरे खत लिखने से क्या होता है···" मोना दीवार के पास बैठी हुई गुस्से में खोल पड़ी थी।

"हॉट रेड मामा, पेल मून मामा···" नलिन कुशन के पैरों के नीचे रखकर खड़ा हो गया, और गाने लगा।

"मां से डर लगता है?" जावेद ने मोना की बांह खींचकर उसको दीवार से इधर कर लिया, और कहने लगा—"तू डरती क्यों है, हम सारे नलिन के पीछे बराती बनके चल पड़ते हैं। मेरा मतलब है, यह सारे बराती बन जाएंगे, पर मैं सहबाला बनूंगा···"

मोना ने जावेद को कुछ कहने की जगह, घूरकर नलिन की ओर देखा।

नलिन ने—'हॉट रेड मामा···' वाला गीत बीच में छोड़ दिया, और गम्भीर होकर खड़ा हो गया और कहने लगा :

"घोड़ी-बारात···डोलक-ढमाका···बैंड-बाजे···यह सब ब्याह जैसी चीज की वल्ग्राइजेशन हैं। आई कांट बी देट वल्गर।"

"और घोड़ी बारात न सही—उसके बगैर भी तो···" शीला कह रही थी।

नलिन कुछ देर चुप रहा। वह अपनी खामोशी में हमेशा असली होता है। क्योंकि इस खामोशी के बाद वह जो कुछ कहता है, अपने-आपको लफ्ज़ों में ढालकर कहता है।

"पीपल मैरी इन ए हरी, मेक चिल्डरन एटरेंडम, मीट पीपल इन कैफेज़, एट वेडिंग्ज़, एट फीउनरल्ज···" [लोग जल्दबाजी में शादी करते हैं, अनाप-शनाप बच्चे पैदा करते हैं, चायखानों में, शादियों में, शवयात्राओं में लोगों से मिलते-जुलते हैं···नलिन कह रहा था।

जावेद ने बात काटकर कहा, "ऐंड दैट मेक्स ए सोसायटी।" और यही समाज है।

"तो फिर इस सोसायटी के मेम्बर जब चालीस सालों के होने लगते हैं तो असूल गढ़ते हैं, मुहावरे गढ़ते हैं, और अपनी बेकार गई उम्र पर उनकी मोहर लगाकर दिखाते हैं कि उन्होंने महान आदर्श जिन्दगी बिताई है···"

नलिन कह रहा था, सबकी तरफ देखकर, पर ज्यादा मोना की तरफ देखकर—

नलिन के ख्यालों का मुझे पता था। वैसे वह लफ्ज़ नलिन ने जहां से पढ़े थे, और दोहराए थे, मुझे भी पता था। मैंने कुछ नहीं कहा। बात से सहमत होओ तो पराये लफ्ज़ भी अपने हो जाते हैं।

"आई लव मोना, आई वांट हर एज़ ए फ्रैंड, मे बी लाइफ लौंग फ्रैंड'प्लस···" [मैं मोना से प्रेम करता हूं, मैं उसे एक मित्र की तरह चाहता हूं आजीवन मित्र और साथ ही]···

नलिन ने इतना-सा फिर कहा और चुप हो गया।

"मैं यह समझ सकती हूं, पर मेरी मां नहीं समझ सकती···" मोना की आवाज उस कमरे में भी थी, कमरे से दूर भी थी···

"केवल कालीदास जी ! मां के नाम कोई सन्देश रचो।" राहुल ने कहा और कमरे की भारी हो गई फिजां को कुछ हिलाया···

"देख मोना ! सीधी-सी बात है, तुझे नलिन चाहिए, तो इसे इसी तरह लेना पड़ेगा जिस तरह यह है—" शीला कह रही थी।

"मोना, यू कांट मेक ए आर्डनरी ब्राइडग्रूम आउट आफ हिम।" [मोना तुम,

इससे एक मामूली दूल्हे जैसे व्यवहार की उम्मीद तो कर नहीं सकतीं।] जावेद ने फैसले की तरह कह दिया था।

"आई डौंट नो वाट टु डू!" मोना ने सिर्फ इतना कहा और चुप कर गई।

"मेरा ख्याल है तू ब्याह कर ले जहां कहती है। फिर कभी-कभी नलिन को टेलीफोन कर लिया करना, क्योंकि मिलटरी वालों को टेलीफोन मुफ्त मिलते हैं..." तरीज़ा अचानक बोल पड़ी थी। इतना कोई नहीं चौंका था जितना मैं। तरीज़ा से, इतनी ज़हर में बुझी हुई बात की, मुझे आशा नहीं थी।

"मजबूरी का नाम महात्मा गांधी है।" राहुल कह रहा था, शायद तरीज़ा की बात का जहर हल्का करने के लिए...

सब चले गए। जो कुछ किसी के मन में था, या जो कुछ किसी को समझ में आया था, वह कहते-सुनते रहे थे। मैंने कहा भी कुछ नहीं था, शायद सुना भी कुछ नहीं था—क्योंकि न नलिन की फिलासफी मेरे कानों तक पहुंची थी, न मोना का... कानफलिक्ट...उदास हूं, सोच रहा हूं 'मैं' भी तो मेरे कानों तक नहीं पहुंच रहा। नहीं तो मैं उसको सुन लेता, और फिर कुछ बोल लेता...

...मैं शायद डायरी में लिखी हुई इबारत नहीं हूं, सिर्फ डायरी का खाली वरका हूं...उस दिन पता नहीं कैसी हंसी थी, जो मुझे अपने आप पर आई। ख्याल आया—जो मैं अपनी कोई डायरी लिखूं...क्या लिखूं? कोई इबारत, कोई फिकरा, कोई लफ्ज सामने नहीं था, और मुझे लगा— जा मैं एक डायरी खरीद-कर, उसके सारे सफे बिल्कुल खाली रहने दूं, तो मेरी बिल्कुल सही जिन्दगी होगी...मेरी आटोबायग्राफी...और जब कोई चाहे मेरी आटोग्राफी के वरके गिन सकता है—मेरा मतलब है गिन सकेगा—बॉर्न इन 1944—डाइड इन...यह खाली जगह अभी भरनी है। सो बड़ा सीधा-सा हिसाब है, खाली जगह जब भर जाएगी, सारे वरके गिने जा सकेंगे। हर तवारीख में यह हिसाब देखा जा सकता है...

हिसाब के बारे में तवारीख से मेरा मतभेद है—सब इसे बरसों के हिसाब से गिनते हैं—फलाने की उम्र चालीस बरस, फ़लाने की उम्र पचास बरस, साठ बरस...इसका मतलब है—उसकी जीवनी के चालीस वरके, पचास वरके, साठ वरके...बायोग्राफी खाली होती है, पर छोटी नहीं होती। इसे बरसों, महीनों, और दिनों के हिसाब से नहीं गिनना चाहिए। इसे पलों के हिसाब से गिनना चाहिए—नहीं सांसों के हिसाब से। एक सांस के बाद दूसरा सांस लेना, एक वरके को पलटकर दूसरे वरके पर जाने के बराबर है...

वैसे मैं यह नहीं सोचता कि कोई मेरी इस जीवनी को हाथ में पकड़े, और

उसके वरके गिने। कोई किसलिए गिने···लाखों-करोड़ों लोग होते हैं जिनकी जीवनियां, वरकों को गिनने के बिना ही दफना दी जाती हैं···

हां, कुछ लोगों की जीवनियां वरकों को गिनकर दफनाई जाती हैं। और वरकों का हिसाब अखबारों में भी छपता है—

···फलाने की जिन्दगी के पचपन सफे हैं। छप्पनवां सफा दमे से फट गया। दमे की जगह हवाई दुर्घटना भी हो सकती है, कुछ भी हो सकती है···और खाली वरकों पर कारनामों के नाम पर भी कुछ-न-कुछ भर दिया जाता है। जैसे···

तीन बेटे दो बेटियां···

एक बीवी, जो अब बेवा है···

एक मिल, जहां अब हड़ताल है···

मिल की जगह एक कुर्सी भी हो सकती है, और जिसके बारे में अक्सर यह भी कहा जाता है कि अब उस खाली कुर्सी को भरना बड़ा मुश्किल होगा। हालांकि उसके खाली होने से पहले ही उसकी तरफ कई लोगों की नजरें लगी होती हैं। और बहुत मुमकिन यह भी होना था कि जो वह अभी कुछ दिन खाली न होती तो किसी न किसी ने वह जबरदस्ती खाली करवा लेनी थी···

माई गाड ! मैं यह सब कुछ किसलिए सोच रहा हूं, आई एम ऐफरेड, आई एम बीकमिंग ए सिनिक···[मुझे डर है, मैं सनकी होता जा रहा हूं···]

मेरा ख्याल है कि मुझे अपने हाथों के नाखून काटने चाहिए। नाखून बहुत बड़े हो गए हैं। यह खामखाह चीजों में गड़ रहे हैं···

अभी मैंने लोगों की बायोग्राफियों के जिस्म पर चुभाकर देखे थे, और उनमें से खून निकल आया था···

खून शायद इन्सान की जिन्दगी की एकमात्र सच्चाई है। किसी भी इन्सान ने जो अपनी सही जीवनी लिखनी हो तो, उसको चाहिए—खाली कागजों पर खून छिड़क दे—

खून से भीगे वरकों में यह साफ पढ़ा जा सकता है कि यह खून रोटी की फिकर में किस तरह सूखता रहा था। यह खून पसीने की शक्ल में किस तरह बहता रहा था, यह खून हजार फिकरों में किस तरह सहमता रहा था, और यह खून जंग के मैदान में किस तरह बहता रहा था···और या नसों में बेकार घूमता रहा था···

इस खून का थोड़ी-सी नसों में ऐसे ही घूमते रहना भी इतना ही व्यर्थ है, जितना इसका रोज सूखना, सहमना और हर लड़ाई में बहना···

पर यह किसी एक की नहीं, सबकी जीवनी है। यह एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है।

ऋग्वेद को दुनिया की पहली किताब कहते हैं, यह गलत है। दुनिया की पहली किताब इन्सान की यह जीवनी है। पहली किताब भी यही थी, आखिरी किताब भी यही होगी···इसके वरके बराबर बढ़ते जा रहे हैं···

पर लोगों की वैनिटी अजीब चीज है। वे इस महान पुस्तक के सामने, बहुत छोटी और खिलौनों जैसी चीजों को रखते हैं। और इसकी सच्चाई को झुठलाते हैं···

सच्चाई को झुठलाने में ही शायद लोगों का भला है···

मुझे अपने हाथों के बढ़े नाखून काटने चाहिए···

पता नहीं लगता, आज जो कुछ हुआ है उसे क्या कहूं। सिर्फ एक हादसा कह दूं, या कुछ और कहूं? "मिस्टर मलिक वाट आर यूअर कन्डीशन्स?" अभी तरीज़ा आई थी। सवालिया फिकरा उसके लफ्जों के आगे लगा हुआ था, पर मुझे लगा था कि कोई जवाब देने की जगह, मैं एक बहुत बड़ा सवालिया फिकरा बनकर खड़ा हो गया था।

आज की तरीज़ा मैंने पहले नहीं देखी थी—पिछले कुछ दिनों में पता नहीं क्या हुआ था, लगता था, तरीज़ा की उम्र को रोज एक दिन नहीं, एक बरस चढ़ जाता था···

"आई वांट टु मैरी यू, आई हैव टु मैरी यू, इट इज़ माई इनर कम्पलशन···" [मैं आपसे शादी करना चाहती हूं, मुझे आपसे शादी करनी ही होगी, यह मेरी आन्तरिक विवशता है···] उसने एक ही सांस में कह दिया।

लग रहा था, अपनी और मेरी तकदीर को वह मुट्ठी में पकड़कर आई थी···

"तरीज़ा!" मुश्किल से यही कह सका।

वह कमरे में खड़ी नहीं थी, धूप की तरह चढ़ी हुई थी—निर्मल भी और निस्संकोच भी।

धूप से बचने के लिए मेरे पास मेरे बदन के ओढ़न के सिवा कुछ नहीं था—मैं उसी में लिपटा जा रहा था···

नहीं, अपने-आपको नहीं, जो कुछ मेरे बिल्कुल भीतर था मैं उसे धूप से बचा रहा था···

तरीज़ा ने बताया कि उसके अंकल ने आजकल कोई अपनी मरजी का लड़का ढूंढ़ा हुआ था, और उसके साथ तरीज़ा के ब्याह के लिए जोर दे रहे थे। पर तरीज़ा को और उसकी ममी को उसके अंकल की दी हुई हर सलाह से डर लगता था।

"मुझे पता है—यह, या इसी तरह की और सलाह आए दिन चलती रहेगी, जब तक कि सलाह देने का मौका ही न खत्म हो जाए।" तरीज़ा के यह हरफ बड़े

परेशान थे।

परेशानी मुझे भी हुई, पर उसका हल तरीज़ा ने यह क्यों सोचा था ? और भी हो सकता था···

"पर मिस्टर मलिक, आप यह न सोचना कि मैं सिर्फ इस परेशानी से बचने के लिए···" यह पहला फिकरा था जिसके साथ तरीज़ा की आवाज सकुचा गई और वह चुप हो गई···

सोच रहा था, पूछूं कि जो यह नहीं तो क्या सोचूं ? पर पूछा नहीं।

उसका पहला फिकरा याद आ रहा था, "मिस्टर मलिक वाट आर यूअर कंडीशन्ज ?" और सोच रहा था कि कुछ दिन पहले नलिन और मोनी में जो बहस हुई थी, यह शायद उसी से आया हुआ ख्याल था।

"कंडीशन्ज की बात नहीं, पर···" यही सूझा था, कह दिया।

वह चुप रही।

"कुछ और भी सोचा जा सकता है।"

"नहीं, मैं और कुछ नहीं सोच सकती। कभी भी नहीं सोच सकूंगी। तब जब लड़कियों ने पार्टी का मजाक किया था, यह बात मेरे सपने में भी नहीं थी, पर अब···"

"पर अब क्यों तरीज़ा, अब क्यों ?" कुछ देर ठहरकर मैंने कहा, पर लगा मेरी आवाज सहसा थक गई थी।

"बिकाज़···बिकाज़ वी बोथ बिलोंग टु ममी।" [क्योंकि···क्योंकि हम दोनों ममी से सम्बद्ध हैं।] अब उसकी आवाज में एक कोमलता जरूर थी पर झिझक नहीं थी।

"वाट···?"

"आई लव ममी, यू लव माई ममी, सो वी बोथ···"

वह जब से आई थी, खड़ी थी, मैं भी खड़ा था, पर अब इसके बाद मुझसे खड़ा न रहा गया।

मैं नहीं कहता कि उसकी बात हिसाब के सवाल जैसी नहीं थी, पर यह भी नहीं कह सकता कि वह सिर्फ एक ठंडा और नपा-तुला हिसाब था···

वह कुर्सी की जिस बांही पर हाथ रखकर खड़ी हुई थी, उसने वहां से हाथ उठाया और उधर खिड़की में खड़ी हो गई। अब वह मेरी तरफ नहीं देख रही थी—खिड़की के बाहर सामने आसमान की तरफ देख रही थी—शायद आसमान में अटके हुए एक बादल के टुकड़े को देख रही थी···

अपना आप कुछ सुर्खरू-सा लगा। शायद इसलिए कि उसकी नजर का बोझ उस वक्त मेरे ऊपर नहीं पड़ रहा था। इसलिए अपने आपको यह दलील दी कि जो कुछ मैंने सुना था, उसके कहने से ज्यादा सुन लिया था···कुछ अक्षर थे जो मैंने आप ही गाढ़े कर लिए थे···

उसने जो कुछ कहा था, कह दिया था, पर मैं उसको उसके अर्थों से बचाना चाहता था, इसलिए कुछ हंस-सा पड़ा···

"माई स्वीट चाइल्ड," अभी मैंने इतना ही कहा था, उसने बात काट दी, "आई एम नाट ए चाइल्ड।"

"तू नहीं समझी···" मैंने फिर कहा।

वह खिड़की से इधर आ गई। बिल्कुल मेरी कुर्सी के पास खड़ी हो गई। उसकी आवाज में एक नम्रता-सी आ गई, कहने लगी—"पर आप मुझसे यह छुपाकर क्या करोगे?"

जो कुछ छुपाना था, मुझे नहीं पता मैंने उसका क्या करना था, पर वह मेरा था, निरा मेरा था, इसलिए छुपाना था···

"तूने जो कुछ कहा है, तुझे उसका मतलब पता है?" मुझे लगा मेरी आवाज कस गई थी। शायद बहुत खतरे के समय इन्सान बहुत तन जाता है।

"हां," उसने होंठों से नहीं सिर हिलाकर कहा।

पता नहीं लग रहा था, अब क्या कहूं।

"मुझे बाद में पूछना, पहले आप बताओ कि मैंने जो कुछ कहा है, आपको उसका मतलब पता नहीं?" सवाल मेरे हाथ से पकड़कर उसने अपने हाथ में ले लिया था।

"नहीं," कह दिया, पर लग रहा था किसी कचहरी में खड़ा था, और एक झूठी गवाही दे रहा था···झूठे गवाह गंगाजल को हाथ में लेते हैं, मैंने गंगाजल छाती में डाला हुआ था···

वह हंस पड़ी।

लगा—वह मेरे कन्धों के पास कुछ झुकी हुई भी थी। एक खौफ-सा लगा कि शायद वह मेरे झूठ को सूंघ रही थी···

चीज को कोई ढांप लपेट सकता है पर उसकी गन्ध को कोई क्या करे!

मैंने एक बेबसी से उसकी तरफ देखा। "यह सब कुछ तुझे किस तरह पता है," कहा नहीं, पर शायद यह सब कुछ मेरी आंखों में लिखा हुआ था, क्योंकि उसने जो जवाब दिया, वह इसी बात का जवाब था।

कहने लगी—"मुझे पता है, बहुत दिनों से पता है। जब कोई खुद किसी को दिन-रात सोचकर देखता है, तब उसे यह भी पता लग जाता है।"

"तू···" एक अक्षर था, पर शायद मैंने यह भी नहीं कहा, सिर्फ उसकी तरफ देखता रहा था।

"वाट ए स्ट्रेंज ट्रायंगेल···" कहती हुई वह हंस पड़ी।

सिर झुका लिया। सामने जो कुछ था, उसको मैं भूल नहीं सकता था।

"फिर अगर पता है, तो—" कहा, पर मैंने उससे आंखें चुराई हुई थीं—जैसे

यह मैं उसके सामने नहीं, पीठ के पीछे कह रहा होऊं।

"पता है, पर जो कोई उस जगह पर पहुंच जाए। जहां उससे मुमकिन और नामुमकिन के बीच में कोई लकीर न खींची जाए···" मैंने चौंककर उसकी तरफ देखा। पता नहीं लग रहा था कि उसकी कमसिन-सी दिखती उम्र, कुछ दिनों में ही, इन लफ्जों तक किस तरह पहुंच गई थी···

"मुझसे बढ़कर यह आपको पता होगा। क्योंकि नामुमकिन-से भी आगे जो कोई जगह होती है, आपने वह जगह देखी है।" उसकी आवाज एक फिलास्फर जैसी हो गई थी।

वक्त ने सचमुच अपने गले से भूत, भविष्य और वर्तमान के तीनों जोड़े उतारे हुए थे···

सभ्यता ने आज तक कपड़ों को ही झेलकर देखा है, नग्नता को झेलकर नहीं देखा···

नेकिड टाइम, नेकिड ट्रुथ, नेकिड माइंड···[नग्न काल, नग्न सत्य, नग्न मन···]

सोच रहा था 'वह' इसके बीच भी है—अपनी बच्ची में, पर तस्वीर की तरह मांस के कागज पर उतरी हुई। और वह भी शायद कभी नेगेटिव की शक्ल में, कभी पाजेटिव की शक्ल में···

"नहीं तरीज़ा यह बात कहीं नहीं पहुंचेगी···" लगा यही कह सकता था···

"आई नो, पर हम इसे चलने से नहीं रोक सकते···"

"और अन्त में ?"···

"इट विल बी कन्टीन्यूड टु नैक्स्ट जैनरेशन।" [यह अगली पीढ़ी तक चलती रहेगी।]

"इट विल बी कन्टीन्यूड टु नैक्स्ट जैनरेशन।" यह कहके, और बात का एक सांस-सा निकालकर, वह गुमसुम हो गई लगती थी। क्योंकि उसके बाद उसने मेरे कमरे में पड़ा हुआ स्टोव जलाया, मेज के खाने में से काफी का डिब्बा निकाला, और चुपचाप काफी बनाने लगी।

सब कुछ उसने बड़े आहिस्ता से अपने हाथ में ले लिया था—कॉफी के डिब्बे से लेकर मुझ तक—

सब कुछ सरकता-सा देख रहा था—पर यह सब कुछ पिघला हुआ था, इसको पकड़ नहीं सकता था। सिर्फ इसकी नमी हवा में मिली हुई थी, और यह हवा मेरी सांसों में समा रही थी···

कॉफी का एक प्याला उसने मेरे हाथ में दे दिया। प्याले में से उठते हुए धुएं

की तरह मेरे भीतर से कुछ उठा। एक भाप की तरह आंखों में भी कुछ भर आया था, इसलिए उसका मुंह कुछ धुंधला-सा दिख रहा था, एक अन्दाजे से मैं उसके सिर के पास झुका, और अपने होंठों से उसके माथे को छुआ···

आंखों में भाप और भर आई थी···

·

तरीज़ा के जाने के बाद एकदम जो कुछ लगा—यह था कि कमरे में कोई चीज कम थी। पता नहीं क्या। मैंने घबराकर सामने की अलमारी में से कोई किताब निकाली, और इससे पहले कि मैं उस चीज के बारे में सोचता, मैं किताब पढ़ने लगा। वाट ए स्ट्रेंज कोइन्सीडेन्ट [कैसा विचित्र संयोग है!]--किताब को मैंने यूं ही खोल लिया था, जो सफा सामने आया था, पढ़ने लग गया था--जिस पैरे पर नजर पड़ी, उसकी पहली पंक्ति थी—'ही नीडिड मी इन आर्डर टु बी, ऐंड आई नीडिड हिम इन आर्डर नाट टु फील माई बीइंग' [उसे अपने अस्तित्व के लिए मेरी जरूरत थी, और मुझे अपने अस्तित्व के एहसास के लिए उसकी जरूरत थी।]

किताब बन्द कर दी, फिर अलमारी में रख दी। कमरे की हवा में एक साजिश-सी हुई लगती थी—जो यह साजिश नहीं थी तो फिर इस किताब को मेरी और तरीज़ा की बात करने की क्या जरूरत थी···यह बिल्कुल इस तरह था कि जैसे मैं तरीज़ा के बारे में कह रहा होऊं, या आज से बीस बरस पीछे कहूं कि शी नीडिड मी इन आर्डर टु बी, ऐंड आई नीडिड हर इन आर्डर नाट टु फील माई बीइंग···

·

कहानी आगे चलेगी···सिर्फ यह पता नहीं कि यह ट्रू स्टोरी है कि फिक्शन···पर मेरा ख्याल है इस तर्क की जरूरत नहीं। ट्रू स्टोरी हाथों और पैरों के साथ घटित होती है, फिक्शन माथे के साथ। और फिर जो कुछ हाथ-पैरों के साथ बीतता है वह माथे में पहुंच जाता है। और जो कुछ पहले माथे के साथ गुजरता है, वह फिर हाथों और पैरों में उतर आता है···कहानी कहानी है, और यह सवाल ही निर्मूल है कि यह पहले किस अंग के साथ बीती थी···

·

माई गाड! अभी मुझे लगा था कि कमरे में कोई चीज कम थी। पता नहीं लग रहा था कि क्या कम था, और मैं ऐसे ही हर चीज को देखता हुआ कमरे में चलता रहा···एक बार मेरा पैर कुर्सी के साथ अटक गया, एक बार मेरी बांह मेज के कोने से लग गई थी। फिर मैंने कुर्सी को उठाकर मेज के नीचे रख दिया था और जगह

खुली कर दी थी। पर शायद अभी भी जगह खुली नहीं हुई—अभी पलंग का कोना मेरे घुटने में लग गया है···अब मैं देख सकता हूं कि कमरे में अचानक कुछ चीजें बढ़ गई हैं। नहीं, कोई चीज कम नहीं। बल्कि कमरा बहुत-सी चीजों से भर गया है···

पलंग पहले भी था, मेज़ भी थी, मेज वाली और खिड़की वाली कुर्सी थी, फिर पता नहीं कमरे में कौन-सी चीज बढ़ गई है···

आज तरीज़ा क्यों आई थी? अजीब हादसा है! पर क्या यह सिर्फ एक हादसा है? या जिन्दगी का हमेशा से चला आना, और हमेशा तक चलनेवाला एक 'पैंटर्न' है?

एक अजीब ख्याल आता है—यह हादसा भी नहीं, पैंटर्न भी नहीं, इट इज़ ए कांस्पीरैंसी आफ़ ब्लॅड···[यह रक्त का षड्यन्त्र है।]

आसमान में अटका हुआ रोशनी का आखिरी टुकड़ा भी खोया जा रहा है···अंधेरा भी हल्का है, अभी गाढ़ा हो जाएगा···और सूरज ने आज जो कहानी शुरू की थी वह अधूरी रह जाएगी···

कहानी खत्म नहीं होती सिर्फ बीच में रह जाती है···आज के सूरज की छोड़ी हुई कहानी को कल का सूरज सुनाएगा···कान्टीन्यूड टु नैक्स्ट सन···बिल्कुल इस तरह जिस तरह तरीज़ा ने कहा था—कान्टीन्यूड टु नैक्स्ट जैनरेशन···

इन्सान की छाती भी शायद रात की तरह होती है—सूरज की कहानी ने रात को चीरकर गुजरना होता है···इन्सान की कहानी ने इन्सान की छाती को चीरकर गुजरना होता है···

"कल सुबह जरूर आ जाना, मैं रात को ममी को बता दूंगी। कुछ बताकर भी आई थी, बाकी रात को बता दूंगी। सुबह एक बार ममी के सामने आप 'हां' कह देना। उन्हें तसल्ली हो जाएगी।" तरीज़ा ने जाते हुए कहा था।

तरीज़ा सोचती है मैं 'उस' के सामने कुछ कह सकूंगा। कुछ कहने लायक जबान होती, अब तक कह न लेता···

जबान ही तो नहीं है···

मैं क्या कह सकता हूं···तरीज़ा के पास जबान है, वह कह सकती है। जो कह देगी वही ठीक है···

कहानी जहां थी, अडोल खड़ी थी—अब उसने मेरी छाती में चलना शुरू कर दिया है···

मैं उसके पैरों की आवाज सुन सकता हूं—धक···धक···धक···धक···उसके पैरों के भार से मेरी छाती हिल रही है—लकड़ी का फर्श भी इसी तरह हिलता है।

नहीं, उसके पैरों के निशान 'वह' नहीं देख सकेगी। मैं सामने होऊंगा, वह फिर भी नहीं देख सकेगी। तरीज़ा रोज फर्श को पोंछ दिया करेगी···

उसने चलना है, इसलिए चलेगी, और शायद जिस वक्त 'वह' सामने होगी, यह कुछ जल्दी से चलेगी···

एंड इट विल बी कान्टीन्यूड टु नैक्स्ट जैनरेशन···

यह चौथा पहर जाने कितना लम्बा है···

1

कुत्ता बैठता नहीं था ! लगता था मुझे चाय का प्याला बीच में ही छोड़कर मेज पर से उठना पड़ेगा···

कुत्ता बैठता नहीं था। लगता था हाथ में पकड़ी किताब और नहीं पढ़ सकूंगा। इस किताब को इसी तरह कुर्सी पर रखकर, मुझे कमरे से बाहर जाना पड़ेगा···

कुत्ता बैठता नहीं था। पता था अभी सुबह नहीं हुई, पर फिर से नींद नहीं आ सकती थी। इसलिए लगा, बिस्तर से उठना पड़ेगा···

कुत्ता बैठता नहीं था। मुझे मालूम था, होस्टल में सीट नहीं मिल रही, बाहर कमरा लेकर रहना बहुत महंगा होगा, पर लगा, फौजी चाचा जी के घर रहने से कुछ भी अच्छा था···

सिट डाउन···सिट डाउन···सिट डाउन···मेरे फौजी चाचा जी अपने कुत्ते को एक दिन में एक हजार बार यह कहते थे, पर कुत्ता बैठता नहीं था।

'सिट डाउन' यह एक लफ्ज नहीं था, बर्फ वाले पानी की एक बूंद थी, जो छः महीने से टप-टप मेरे सिर पर गिर रही थी, और मेरा सिर सुन्न होता जा रहा था···

उस दिन कालेज में छुट्टी थी, पर मेरा कमरे में बैठना, सचमुच कुत्ते के बैठने से सम्बन्धित था। चाचा जी सुबह से अपना पाठ पढ़ रहे थे, पर कुत्ते की जात··· वह चाचा जी के पाठ का कोई शब्द नहीं सुन रहा था।

"यह कहीं बहरा न हो, चाचा जी, इसे किसी हस्पताल में दिखाइए"—मैं कहने लगा था, पर कहा नहीं।

चुपचाप घर से बाहर निकल पड़ा। सिर्फ सोच रहा था, अगर कहीं चाचा जी की बदली इस शहर में न हुई होती ! अच्छा-भला तीन साल से होस्टल में रह रहा था। चाचा जी की बदली हो गई, उन्हें मुफ्त सरकारी कोठी मिल गई, और उन्हें भतीजे पर प्यार आ गया कि लड़का होस्टल की सड़ी-सुखी रोटियां क्यों खाए बेशक घर में कोई चाची परांठे पकाने वाली नहीं थी, पर चाचा जी को मुफ्त के

मिले हुए अर्दली का भी तो पूरा लाभ उठाना था। उसका क्या फायदा अगर मैं होस्टल में पैसे देकर रोटी खाता रहा। सो उन्होंने मेरे बाप को खत लिखा और मुझे होस्टल में से निकलवाकर यहां ले आए···

मेरे कानों के पास जोर से हार्न बजा, एक गाड़ी रुकी और रूबी ने गाड़ी का शीशा खोलकर मेरे कन्धे की ओर बांह फैलाई।

"चलो बैठो गाड़ी में, कालेज जा रहे हो?"

"नहीं कालेज में छुट्टी है।"

"काहे की छुट्टी?"

"तैंतीस करोड़ देवता हैं, उनमें से किसी का जन्म-दिन होगा···"

रूबी ने मेरी खीझ पहचान ली, और मेरी बांह पकड़ मुझे गाड़ी में बिठा लिया। वह पिछले साल तक मेरे साथ पढ़ता था, पर उसके बाप को कालेज के पांच साल, पचास हजार रुपये खोने की तरह लगे थे। वह काफी रईस था, उसने दलील दी थी कि देश में पहले ही पच्चीस हजार इंजीनियर बेकार फिरते हैं, बेकारों की और गिनती बढ़ाने से क्या फायदा। इसलिए रूबी ने कालेज छोड़ दिया था और अपने ठेकेदारी के काम में लग गया था।

"यू आर लकी···" रूबी ने गाड़ी चलाते हुए कहा तो मुझे लगा जैसे उसने मुझे गाली दी हो। मैंने घूरकर उसकी तरफ देखा।

"यह कालेज वाली जिन्दगी फिर सारी उमर नहीं आ सकती···आई मिस माई होस्टल लाइफ···"

"आई आल्सो मिस···" मेरे मुंह से निकला।

"तुम होस्टल में नहीं रहते?" रूबी ने पूछा।

मैंने उसे चाचा जी की बदली वाली बात बताई, कुत्ते वाली बात छुपा ली, सिर्फ कहा, "अगर कहीं होस्टल में मुझे फिर सीट मिल जाए!"

"मिड टर्म में नहीं मिल सकती, पर नए टर्म के वक्त मिल जाएगी···"

"नए टर्म में अभी कई महीने पड़े हैं···"

रूबी की यही बात मुझे सबसे अच्छी लगती है—वह जितनी बात उसे समझ में आए समझ लेता है, बाकी की पूछना नहीं···

"बाहर कोई कमरा किराए पर क्यों नहीं लेते, नए टर्म तक?" उसने कहा। उसने इतना समझ लिया था कि मैं चाचा जी के पास नहीं रहना चाहता था और यही काफी था।

"अगर कोई कमरा मिल जाए, बहुत महंगा न हो···"

रूबी चुप रहा। पता नहीं क्या सोचता रहा। फिर अचानक कहने लगा,

"तुम्हें भूतों से डर तो नहीं लगता ?"

मुझे नहीं मालूम, उसने यह क्यों पूछा था, पर मुझे हंसी आ गई। कहा, "अगर वे चुप रहें तो डर नहीं लगता। सिर्फ उन्हें यह न कहना पड़े कि सिट डाउन···"

रूबी हंसने लगा, और कहने लगा, "वे इतने चुप रहेंगे कि तुम्हें उनकी चुप से खौफ आएगा।"

"बिल्कुल नहीं," मैं कह रहा था, रूबी ने बात काट दी, "अच्छा फिर देखते हैं···"

रूबी ने गाड़ी घुमाई, और कुछ दूर जाकर एक बड़ी सुनसान हवेली के आगे खड़ी कर दी। हवेली का गेट खुला था। खुला नहीं कहना चाहिए, गेट ही नहीं था, मालूम नहीं कब्र का टूटा हुआ था। एक तरफ बड़े-बड़े पेड़ थे, बाकी कोई हजार गज जगह में पता नहीं क्या झाड़-झंखाड़ उगा हुआ था। ईंटों की एक पगडंडी गोल-सी बल खाकर आगे की तरफ जाती हुई दिखाई देती थी, पगडंडी पर कोई सौ फुट चलने के बाद हवेली का बरामदा था। बरामदे के आगे बड़ा हाल, और इर्द-गिर्द छः-सात कमरे। कमरों में दरवाजे लगे हुए थे, पर कुण्डियां सिर्फ एक-दो दरवाजों की बची थीं। दो-एक कमरों के दरवाजे भी एक ही पट के रह गए थे, जो हवा से खुद ही भिड़ जाते थे, खुद ही चीखकर खुल जाते थे। वैसे हाल का फर्श इटैलियन टाइलों का था, तीन इंची टाइलों का।

"दूसरी मंजिल पर इतने ही कमरे हैं, और उससे ऊपर मैंगलोर टाइलों की छत। बोलो, यहां रहकर डरोगे तो नहीं ?" रूबी हंसने लगा।

"पर माबदौलत। यह शहंशाही है किसकी ?" मुझे भी हंसी आ गई।

"अगर तुम यहां आकर रहो तो सारी तुम्हारी !"

"मेरी ?"

"सिर्फ हजूर के दरबार में दरबारी कोई नहीं होगा। कुछ सांप-संपोलिए बेशक हों···"

यह शहंशाही मुझे मंजूर थी। पता लगा कि यह सवा सौ साल पुरानी हवेली रूबी के बाप की थी। और छः महीने में इसे डिमालिश करना था, पर अभी छः महीने यह थी।

"मुझे छः महीने का शहंशाह बनना मंजूर है···" मैं हंसने लगा।

देखा, रूबी कुछ सोच रहा था। मेरा ख्याल था वह अपने बाप से इसकी इजाजत लेने के बारे में सोच रहा होगा, पर उसने बाहर आकर फिर गाड़ी स्टार्ट की और हमारे होस्टल की तरफ मुड़ते हुए कहने लगा, "तुम विनोद और अशोक को जानते हो ?"

"आर्ट्स वाले दोनों ?"

"हां, वे बड़ी देर से होस्टल के बाहर रहने की सोच रहे हैं, मुझे पहले यह ख्याल ही नहीं आया। वे भी दोनों अगर यहां तुम्हारे साथ आकर रहें···"

रूबी का सोचना ठीक था। यह मुझे इतना दिन के वक्त पता नहीं लगा जितना रात के वक्त। इस हवेली में बिजली नहीं थी, और रात को मोमबत्तियों की हिलती हुई परछाइयां न सोने देतीं, न जागने।

बाजार से खरीदने वाली चीज सिर्फ एक ही थी—झाड़ू (मोमबत्तियों का ध्यान हमें बाद में आया था)। उस वक्त अशोक और विनोद को साथ लेकर जब हम लौटकर हवेली में आए, अशोक झाड़ू पकड़कर ख़ुशी से नाच रहा था और रूबी को बार-बार कह रहा था—ह्वटरा ब्रिलियंट आइडिया···

चाचा जी का घर जरा दूर था; पर होस्टल नजदीक था, सबसे पहले अशोक और विनोद का सामान लाया गया। उन्होंने अपनी पूरी-अधूरी पेंटिंग्ज हाल में इस तरह से सजाईं कि हाल एक आर्ट गैलरी की तरह लगने लगा।

मैं जब अपना बिस्तर और किताबें लाने के लिए चाचा जी के घर गया, मेरे तीनों दोस्त मेरे साथ थे। चाचा जी का कुत्ता अजनबी शक्लों को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करता था, वह मेरे दोस्तों पर लपक-लपक कर भौंक रहा था, और मैं चाचा जी से कह रहा था, "वहां अपने क्लासफैलोज के साथ रहकर मेरी पढ़ाई अच्छी होगी, इसलिए चाचा जी···"

चाचा जी शायद इस सोच में डूबे हुए थे कि उनका भाई क्या कहेगा···शहर में चाचा का घर हो और लड़का बाहर रहे···और मैं उनको तसल्ली दे रहा था कि यह मेरी पढ़ाई के लिए जरूरी था···

कुछ शायद इसलिए कि मैं क्लासफैलोज वाली बात झूठी कर रहा था, क्योंकि मैं इंजीनियर का स्टुडेंट था और वे दोनों आर्ट्स के, और इसलिए मेरी आवाज में पूरा जोर नहीं था, या इसलिए कि कुत्ता लगातार भौंक रहा था, और चाचा जी बीच-बीच में उसे डांटकर कह रहे थे—शट-अप और उन्हें मेरी बात पूरी तरह समझ में नहीं आ रही थी···

"अच्छा जैसा तुम ठीक समझो···" आखिर चाचा जी ने कहा।

मैंने बिस्तर लपेटा। किताबें संभालीं। अपनी गिटार उठाई। मेरे दोस्त मेरी चीजों को रूबी की गाड़ी में रख रहे थे। कुत्ता अभी भी भौंक रहा था, और चाचा जी उसे शट-अप···शट-अप···कहते थक गए लगते थे, क्योंकि फिर उनकी बड़ी थकी हारी-सी आवाज आई, वे कुत्ते से कह रहे थे, "प्लीज ! शट-अप !"

एक बार मुझे ऐसे लगा, जैसे वे कुत्ते को नहीं, मुझे मेरे झूठ बोलने पर कह रहे हों—प्लीज ! शट-अप···

2

विनोद और अशोक दोनों ने अपने बिस्तर हाल में लगाए थे—एक ने एक कोने में दूसरे ने दूसरे कोने में। मैंने साथ वाले छोटे कमरे को अपना बना लिया।

बहुत रात तक मोमबत्ती जलती रही, पर उसे जलता हुआ छोड़कर सोया नहीं जा सकता था। आखिर बुझा दी।

मालूम था पेड़ों की ओर झाड़-झंखाड़ की सरसराहट आएगी पर उससे भी अलग कुछ अजीब आवाजें आ रही थीं। शायद नींद-सी आ गई थी, लगा, अभी कोई बाहर वाले बरामदे में से गुजरा है। पांवों की आवाज नहीं आती थी, सिर्फ दरवाजे खुलने और भिड़ने की आवाज थी।

पता था, दरवाजों की कुंडियां नहीं थीं, इसलिए हवा से वे खुद ही खुल रहे थे और खुद ही बन्द हो रहे थे। दो-तीन बार बुझी हुई मोमबत्ती को मैंने जलाया। कुछ देर जलाए रखता, फिर बुझा देता। एक बार लगा—माचिस की तीलियां खत्म हो गई थीं, सिर्फ एक ही बाकी रह गई थी। इसलिए फिर मोमबत्ती नहीं जलाई। बची हुई तीली को 'एमरजैंसी' के लिए संभाल रखा।

कल जरूर एक बैटरी लूंगा, मैंने सोचा और सोने की कोशिश करते हुए मुझे ख्याल आया, कल जब रूबी आकर हाल पूछेगा तो उससे कहूंगा, "रात को इस तरह आवाजें आती रहीं जैसे पिछले जन्म में से आ रही हों···"

अपने फिकरे पर मुझे खुद ही हंसी आ गई, फिर पता नहीं किस वक्त नींद आ गई।

मेरी नींद एक चीख सुनकर खुल गई। पहले तो आवाज पहचानी नहीं गई, फिर ख्याल-सा आया, वह अशोक की आवाज़ थी। चीख दूसरी बार नहीं आई। यह भी ख्याल आया, शायद मैंने कोई सपना देखा था। बिस्तर में से निकलकर मैं अशोक और विनोद को देखने हाल के दरवाजे में चला गया।

अशोक हंस रहा था। उसके हाथ में झाड़ू था। पर वह झाड़ू से फर्श नहीं साफ कर रहा था, सिर्फ उसे पकड़कर खड़ा था, और हंस रहा था।

"आई एम फ्लर्टिंग विद माई फियर।" अशोक ने मेरी तरफ देखकर कहा।

चीख सचमुच अशोक की थी, विनोद ने बताया। वे दोनों रात मुझसे पहले सो गए थे, इसलिए जल्दी जाग गए थे। अशोक पर 'आर्ट-गैलरी' वाली बात इस तरह छाई हुई थी कि सुबह होते ही वह झाड़ू लेकर दीवारें पोंछने लगा था। कोनों में रह गए जालों की तरफ देखते हुए जब उसने एक दीवार की खुली खिड़की की तरफ देखा था—सामने एक भयानक शक्ल थी, और अशोक की चीख निकल गई थी···

पता लगा—पुरानी उजड़ी हुई हवेली में, रात की मोमबत्तियों की रोशनी ने, कोठी के आबाद होने की खबर दे दी थी और एक बूढ़ी मरियल-सी औरत सफाई का काम पूछने के लिए सुबह-सुबह आ गई थी, और खिड़की में से अन्दर झांकती किसी से बात करने की सोच रही थी···

यह फ्लर्टेशन खत्म नहीं हुई, 'फियर' एक हालत की तरह हमारा और उस हवेली का हिस्सा बन गया था। बैठे-बैठे हममें से किसी न किसी के मुंह से अचानक निकल जाता था—कौन है? लगता था अभी कोई इस अन्दर वाले दरवाजे के पीछे था, अभी-अभी अलमारी की ओट में हो गया है···

हवेली में बिजली के तारों की फिटिंग नहीं थी, इसलिए बिजली का कोई सवाल नहीं पैदा होता था। अशोक ने एक चुस्ती की थी, पर तीन रातों से ज्यादा वह काम नहीं आई। वह बाहर वाली सड़क के बिजली के खम्भे से तार जोड़कर हवेली में सीधे बिजली खींच लाया था, पर चौथे दिन ही कार्पोरेशन वालों ने वह तार देख लिया था और काट दिया था क्योंकि वह गैर-कानूनी था।

सो रोशनी गैर-कानूनी थी। हम कानूनी अन्धेरे में फिर फियर से फ्लर्ट करने लगे थे···

सिर्फ खौफ से नहीं, भूख से भी। चाय का ढावा भी हवेली के ज्यादा नजदीक नहीं था। वक्त-बेवक्त जब भूख लगती ढाबे पर जाने से, वहीं कमरे में बैठना आसान लगता, और एक को ऐसे बैठा देखकर दूसरे के मुंह से जरूर निकल जाता—सो यू आर फ्लर्टिंग विद हंगर···

हवेली का गुसलखाना बहुत बड़ा था, पर था एक ही और उसमें एक खास नुक्स यह था कि पानी की टूंटी बिल्कुल दीवार से लगी हुई थी, और वह भी जमीन से ज्यादा ऊंची नहीं। उसके नीचे बैठकर नहाया नहीं जा सकता था और मग में पानी भर-भर कर नहाते देर लगती थी। पानी वैसे भी सारा दिन नहीं रहता था। सोचा—अगर एक टब हो तो पानी भरकर जमा कर लिया करें। पर टब खरीदने लायक पैसे किसी के पास नहीं थे···

इस बार विनी को एक ब्रिलियंट आइडिया सूझा (विनोद को अब हम विनी कहने लगे थे), कि आर्ट फैकल्टीज के एक स्टोर में एक टब पड़ा हुआ था, जिसे कभी कोई इस्तेमाल नहीं करता था। स्टोर असल में एक कबाड़खाना-सा था, जिस पर कोई ताला नहीं लगा हुआ था। वैसे रात के वक्त बाहर एक पहरेदार जरूर हुआ करता था, पर विनी का ख्याल था कि अगर हम पहरेदार की आंख बचाकर, तीनों रात के वक्त वहां जाएं, तो टब उठाकर ला सकते थे।

"लेट अस फ्लर्ट एलिटल विद थैंपट···" विनी ने कहा था, और हम तीनों एक रात इसके लिए तैयार हो गए थे।

अन्धेरे···पहरेदार···खौफ···और टब का वजन···हम तीनों पसीना-पसीना

हो गए थे, पर टब हमारे गुसलखाने में आ गया था।

"वाटर···स्वीट वाटर···" अशोक का गीत अभी गले में ही था कि हमें पता चल गया—टब ने हमसे वेवफाई की थी···

कम्बख्त टब में कितने ही सुराख थे···

दूसरे दिन हमने लुक लाकर टब को खूब मली, उसका मुंह सिर काला हो गया, पर उसके सुराख बन्द नहीं हुए। हमारा सारा प्लान बेकार हो गया था। फिर वही छोटा-सा मग, और वही आधा सूखा और आधा गीला गुसल। एक कोई गुसलखाने में होता, दूसरा वाहर से आवाज देता—सो यू आर फ्लर्टिंग विद वाटर···

कालेज पहुंचने से पहले ढाबे पर भी जाना होता था। कई बार भागकर पहुंचना पड़ता था, कालेज वाली सड़क पर कई और मिल जाते, हमें बेतहाशा भागते देखकर हंस पड़ते, पर हमने अपना एक टर्म बना लिया था, हाजर जवाव—वी आर फ्लर्टिंग विद टाइम···

बातचीत का यह टर्म हमें वड़ा रास आया था। अशोक असल में एक मशहूर पेंटर का लड़का था, उसके लिए इस लाइन में कुछ भविष्य था। बाप की शोहरत से उसे कुछ बनी बनाई 'जमीन' मिल जानी थी, उसका 'वन मैन शो' भी आसानी से अरेंज हो जाता था, पर विनी को किसी तरफ से कोई सहारा नहीं था, उसे डिप्रैशन के फिट से पड़ते थे। पर बातचीत का यह टर्म उसे भी अच्छे मूड में ले आता था। वह रंग घोलता, कैनवस सामने रखता, कैनवस अच्छी पेन्ट न होती, तो भी वह कह सकता—आई एम फ्लर्टिंग विद द फ्यूचर···

असल में यह सिर्फ विनी की नहीं, हम सबकी हालत थी। हम सब अपने भविष्य से फ्लर्ट कर रहे थे···

देश में पच्चीस हजार बेकार इंजीनियर—यह हकीकत मेरे और मेरे भविष्य के बीच काली दीवार की तरह खड़ी थी और मैं जैसे इस दीवार के ऊपर से, दूसरी तरफ अपने भविष्य की ओर झांक रहा था। ऐसी दीवार तोड़ी नहीं जा सकती···दीवार के ऊपर से छलांग नहीं लगाई जा सकती···फिर दूर-दूर से भविष्य की तरफ देखना फ्लर्टेशन नहीं तो और क्या था···

पिछली बार मुझे अपने एक पेपर के बारे में कुछ शक था। इतना भर पता था कि अगर एक पेपर अच्छा न हुआ तो मैं अक्तूबर में फिर इस एक पेपर का एक्जाम दे सकूंगा···और अगर अक्तूबर में भी मैं उसे क्लियर न कर सका तो अगले मार्च में करूंगा। पूरी तसल्ली के लिए मैंने एक दिन नलिन सूरी से पूछा था। पता लगा था कि वह पिछले तीन साल से दो पेपरों के लिए इसी तरह की जद्दोजहद कर रहा था। मेरे पूछने पर उसने बताया—बेटा फिकर न कर, एक चांस इस अक्तूबर में, फिर अगला चांस अगले मार्च में फिर अगला चांस अगले

अक्तूबर में, फिर अगला चांस···" और फिर वह जोर से हंसते हुए कहने लगा, "इससे ज्यादा सलाह लेनी हो तो मेरे सीनियर स्टाफ मैंबर्ज से कन्सल्ट कर— सुरेन्द्र, तापन, अजय···" पता लगा इन सबको आठ-आठ नौ-नौ साल हो गए थे इन्जीनियरिंग का कोर्स खत्म करते। इनमें से एक का इसी हालत में विवाह भी हो गया था, और बच्चा भी।

ये जवानी के बर्बाद होते हुए साल···मां-बाप का पैसा···और फिर यह खबर कि मुल्क में पच्चीस हजार इंजीनियर वेकार···सचमुच हम सब अपने भविष्य से फ्लर्ट कर रहे थे, सिर्फ कोई कम डेस्पॅरेटली और कोई ज्यादा डेस्पॅरेटली।

3

अचानक एक अजीब घटना घट गई—एम० ए० फाइनल की एक लड़की सविता का अपने क्लास-फैलो रवि से विवाह हो गया।

विवाह किया नहीं, करना पड़ गया।

सविता की रवि से दोस्ती थी, साधारण दोस्ती। इस दोस्ती की पतली-सी पगडंडी पर एक दिन अचानक विवाह की गुफा आ जाएगी और उन्हें उस गुफा में पनाह लेने के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाएगा, यह उन्हें मालूम न था।

इस घटना में विवाह को एक मंजिल की जगह, गुफा ही कहा जा सकता है···

गुफा के बाहर एक तरफ एक गहरी खाई थी—कालिज से दोनों के एक्सपैल हो जाने की खाई, और दूसरी तरफ हाथों में लाठियां लिए खड़े हुए—सैडिस्टिक गार्जियंस आफ अवर कल्चर···

अगर दोनों एक्सपैल हो जाते, दोनों का कैरियर खत्म हो जाता। इत्फाक यह था कि दोनों इंग्लिश लिटरेचर के ब्रिलियंट स्टुडेंट थे। सो खाई में छलांग नहीं मारी जा सकती थी···

दूसरा तरीका यह था—कि यूनिवर्सिटी के जो भी अधिकारी थे, उन्हें सच्चाई और मिन्नत से मनाया जाता। पर इस हादसे में न सच्चाई किसी काम आई थी, न कोई मिन्नत और न मुआफी। इसीलिए उन अधिकारियों को हम अपने बन्द होंठों में यह तो कह सकते थे—सैडिस्टिक गार्जियंस आफ अवर कल्चर, पर मुंह खोलकर कुछ नहीं कह सकते थे···

सो तीसरी और आखिरी राह एक ही रह गई थी—कि सविता और रवि,

जल्दी से भाग कर विवाह शब्द की गुफा में घुस जाएं···

एक शाम हम कुछ लड़के और लड़कियां एक नहर के किनारे गए थे। सब के पास मिल-मिलाकर चार मोटर साइकिल थे, पर हम गिनती में दस थे। एक-एक मोटर साइकिल पर हिसाब से सिर्फ दो-दो बैठ सकते थे, पर बाकी दो को भी किसी तरह साथ ले जाने के लिए, दो मोटर साइकिलों पर तीन-तीन बैठे। जाती दफा बड़ी ठीक तरह से पहुंच गए थे, पर आती दफा अंधेरा था। एक मोटर साइकिल, जिस पर तीन बैठे हुए थे और जिनमें रवि भी था, उलट गया। लैग-गार्ड ने काफी बचाव कर दिया था, पर रवि के सिर में कुछ ज्यादा चोट आ गई थी। बाकी दोनों के हाथों पर मामूली खराशें आई थीं। रवि होस्टल में नहीं रहता था, बाहर कमरा लेकर रहता था, इसलिए हम सब रवि को छोड़ने गए। रवि के सिर को पट्टी की जरूरत नहीं थी पर उसके सिर में दर्द बहुत था—शायद अन्दरूनी चोट थी। सविता उसकी क्लासफैलो भी थी और हम सबसे ज्यादा उसकी दोस्त भी, वह उस रात अपने होस्टल में वापस जाने की जगह, रवि की देख-भाल के लिए उसके कमरे में रह गई।

ईमान की बात थी—हममें से किसी को किसी खतरे का ख्याल तक नहीं आया था। यहां तक कि सुबह जब सविता अपने होस्टल में गई तो वार्डन को अपनी रात की गैरहाजिरी का कारण बताते हुए भी उसे कोई झूठ बोलने का ख्याल तक नहीं आया था।

वार्डन ने उसकी रिपोर्ट कर दी, और रिपोर्ट के जवाब में सुनवाई थी···

"वह बिल्कुल गैर लड़का था···वह सविता का भाई या कजिन होता तो बात और थी, या वह सविता का मंगेतर होता तब भी और बात थी, पर वह बिल्कुल गैर लड़का था···इस सवाल का क्या जवाब हो सकता था···

वह भाई नहीं हो सकता था, उसे अगर कुछ बनाया जा सकता था तो सिर्फ मंगेतर बनाया जा सकता था। सो जिस वक्त दोनों के एक्सपैल हो जाने की नौबत आई, तो दोनों को कहना पड़ा कि वे दोनों मंगनी कर चुके थे और शादी करने वाले थे।

पर अगर विवाह वाली बात को सिर्फ विवाह के इकरार तक ही रखा जा सकता···

नौबत यहां तक आ गई थी कि दोनों के माता-पिता को खत लिखकर अधिकारियों की तरफ से इस बात की तसदीक की जा रही थी, और यह तो पता ही था कि जब तसदीक हुई तो यह खबर गलत निकलेगी···

दोनों बालिग थे, इसलिए सिर्फ यह रास्ता रह गया कि दोनों जल्द-से-जल्द शादी कर लें, और जब तक मां-बाप इस खबर को गलत कहें, उससे पहले यह खबर ठीक हो चुकी हो···

इसके बिना, हममें से किसी को, कुछ नहीं सूझ रहा था। फिर भी घबराहट इतनी थी कि जल्दी से यह भी नहीं हो रहा था···

अधिकारियों की ओर से, दोनों के माता-पिता को खत जा चुके थे···

और फिर अचानक उससे भी अजीब हालत आ गई। सविता की एक सहेली ने देखा कि सविता के माता-पिता बड़े घबराए हुए, अपने शहर से चलकर हमारे शहर, हमारी यूनिवर्सिटी में, सविता से मिलने आ गए थे। वे बाहर वेटिंग-रूम में थे कि सविता की सहेली ने भागकर अन्दर सविता को खबर दी।

सविता को पता था कि वह अपने मां-बाप को किसी बात के लिए भी राजी नहीं कर सकेगी। शायद वे गुस्से में, उसी वक्त, उसे वापस घर ले जाएं। वह कम्बख्त क्लास में इतनी ब्रिलियंट थी कि यूनिवर्सिटी में टॉप करने की सोच रही थी। वह पढ़ाई छोड़ने के ख्याल से तड़प उठी। उसने अपनी सहेली को, सामने लड़कों के होस्टल में एक लड़के के पास भेजा कि वह बहुत जल्दी किसी तरह रवि को बुला लाए। रवि, और हम सब उसके दोस्त, किसी वक्त भी अचानक कोई खतरा आ पड़ने के ख्याल से सचेत थे। हम सब सामने होस्टल में ही बैठे हुए थे। जब इस हालत का पता चला तो हममें से एक भाग कर टैक्सी ले आया। सविता होस्टल की पीछे वाली सीढ़ियों से उतरकर बाहर आई और हम सब उसे टैक्सी में बिठाकर, किसी मन्दिर में किसी पंडित को ढूंढ़ने निकल पड़े।

पंडित ढूंढ़ लिया, पर उसने हमारी हालत को अनुमान लिया था। दोनों बालिग दिखाई देते थे, पर पंडित ने हमसे विवाह करवाने के लिए डेढ़ सौ रुपए मांगे।

अजीब सिचुएशन थी। न रवि के पास इतने पैसे थे, न सविता के पास। हम सबने अपनी-अपनी जेबें टटोलीं, और जो कुछ जिसकी जेब में था निकाल कर इकट्ठा कर लिया। डेढ़ सौ रुपए तो बन गए, पर अब हम पंडित के आगे इसी-लिए हाथ जोड़ रहे थे कि वह जल्दी करे!

पंडित को शायद पहले भी इस तरह की बातों से वास्ता पड़ चुका था, वह इतमीनान से मुस्करा रहा था, और हवन की आग जला रहा था···

"पंडित जी महाराज! हाथ जोड़ते हैं, जल्दी कीजिए!" हमने ऐसे हाथ अपने प्रोफेसरों के आगे भी जोड़े थे, पर किसी काम नहीं आए थे। खैर, अब पंडित के आगे जोड़े हाथ कुछ काम आ रहे थे···

पंडित को हम जैसों से जो वास्ता पड़ता रहा था, उसने उसको अजीब-सी अंग्रेजी सिखा दी थी। इस घबराहट में भी हम सब खिलखिलाकर हंसे बिना न रह सके, सविता सबसे ज्यादा, जिस वक्त पंडित ने कहा "डोन्ट वरी, आई एम ए शर्टकट पंडित···

संस्कार भी अजीब होते हैं। हम सब जहां इतना कुछ अनरवायती करने के

लिए तैयार थे, वहां जब एक के मुंह से निकला, "सविता ने सफेद साड़ी पहन रखी है, लाल रंग की चाहिए थी, तो हम सब सफेद साड़ी का वह्म करने लगे, बिल्कुल लाल रंग की तो नहीं पर सविता की एक सहेली ने लाल किनारे वाली पहन रखी थी, हमने सविता से कहा कि वह अपनी सहेली से साड़ी बदल ले। सहेली ने साड़ी भी बदल ली और पर्स में से लिपस्टिक निकाल उसके रंग से सविता के माथे पर बिन्दी भी लगा दी। हममें से एक, सविता का धर्म-भाई बना, और उसने पंडित के कागजों पर बतौर गवाह दस्तखत किए—इसी तरह एक ने रवि की ओर से गवाही भरी, और शुक्र मनाया जिस वक्त पंडित ने पन्द्रह-बीस मिनट कुछ मंत्र पढ़ने के बाद, उन दोनों कागजों पर अपने दस्तखत किए, और एक कागज हमें पकड़ा दिया।

विवाह पूर्ण हो गया, अब सविता के मां-बाप से निबटना था। रवि की मां जिंदा नहीं थी, और बाप ने न यूनिवर्सिटी के खत का जवाब दिया था, न अभी तक खुद आया था, इसलिए अभी उसकी फिक्र नहीं थी पर सविता के मां-बाप शहर में पहुंच चुके थे, और हम सोच रहे थे कि इस वक्त वे सविता को होस्टल में न पाकर, ढूंढ़ रहे होंगे···

सविता को साथ लेकर हम सब रवि के कमरे में आ गए। विवाह का शगुन करना भी हम भूले नहीं थे। हममें से एक बाजार जाकर कुछ मिठाई ले आया, और हम रवि के कमरे में बैठकर रवि के स्टोव पर चाय बनाने लगे···

हम हर आहट पर चौंक उठते थे कि सविता के मां-बाप, ढूंढ़ते-ढूंढ़ते, अभी यहां आए कि आए···

एक लड़का खबर लाया कि सविता की मां होस्टल में बैठी हुई थी और रोये जा रही थी और सविता का बाप बहुत गुस्से में था, उसने पूछ-ताछ कर रवि का नाम और उसके बाप का नाम पता कर लिया था, और वह रवि को ढूंढ़ने से पहले उसके बाप को ट्रंककाल कर रहा था···

हम सविता और रवि के मुंह में मिठाई दे रहे थे। विवाह के शगुन भी कर रहे थे और घबरा कर बार-बार खिड़की में से बाहर की ओर भी देख रहे थे कि यहां कोई पहुंचा कि नहीं···

या रह-रह कर शादी का सर्टीफिकेट देख रहे थे कि वह सबूत हमारे पास है या नहीं।

एक लड़के ने बहुत चुस्ती की थी। पंडित जिस वक्त हवन की आग जला रहा था, वह भागकर अपना कैमरा ले आया था, और उसने रवि और सविता की, पंडित और हवन की आग के समेत, कुछ तस्वीरें ले ली थीं। पता नहीं तस्वीरें बहुत अच्छी आई थीं कि नहीं पर यह भरोसा था कि कुछ फीकी गहरी आई ही होंगी···

एक लड़का यूनिवर्सिटी के दफ्तर में जाकर फिर खबर लाया कि सविता के बाप ने रवि के बाप को ट्रंककाल करके बड़े गुस्से में यह धमकी दी थी कि अगर उसके लड़के को उसके हाथों आज कुछ हो गया तो वह जिम्मेदार नहीं होगा।

"माई गॉड !" सविता यह सुन रोने-रोने को हो आई···

रवि भी घबराया, पूछने लगा, "मेरे बाप ने क्या कहा ?"

लड़का बताने लगा, "मुझे टेलीफोन से मिला जवाब सुनाई नहीं दे सकता था, पर सविता के पिता ने जब गुस्से में टेलीफोन का रिसीवर पटककर रखा, तो वह टेलीफोन में से मिले जवाब को बड़े गुस्से दुहरा रहा था, इसलिए मैंने सुना कि जवाब यह मिला, 'डोंट बॉदर मी, आई डोंट केअर इफ समथिंग हैपिन्स टु माई सन।"

"माई गॉड," यही दो शब्द रह गए थे, जिन्हें कभी सविता दुहरा लेती थी, कभी रवि और कभी हममें से कोई।

ख्याल आया—आखिर सविता का बाप रवि के कमरे को अभी या जरा ठहर कर ढूंढ़ लेगा। पर अगर हममें से दो लड़के उसके पास जाकर, उसे खुद ही सब कुछ बता दें और यहां ले आएं तो शायद उसका गुस्सा कुछ कम हो जाए और हालत कुछ संभल जाए···

पर जाए कौन ? रवि के जाने का सवाल ही नहीं पैदा होता था। और भी किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी।

और ऊपर से सविता कह रही थी, "मेरा बाप कुछ भी कर सकता है। उसके पास पिस्तौल का लाइसेंस है। हो सकता है कि वह जेब में पिस्तौल लाया हो···"

कुछ समझ में नहीं आ रहा था। पर आखिर सामने तो होना ही था—चाहे हम खुद उसके पास जाते, और चाहे वही हमें ढूंढ़कर यहां आ जाता। पर यह जरूरी लग रहा था कि अगर हम खुद उसके पास जाएं तो शायद कुछ फर्क पड़ जाए···

सबकी नजर मेरी तरफ थी। सबकी राय थी कि जिस तरह इत्मीनान/और दलील से मैं बात कर सकता था, उस तरह किसी और से नहीं होगी। इन्कार करने का वक्त नहीं था, मैं मान गया। हममें से दो जो बहुत लम्बे, ऊंचे कद के लड़के थे, वे मेरी हिफाजत के लिए चुने गए। उन्हें मेरे साथ जाना था, बहुत कुछ कहना नहीं था, सिर्फ मैं जो कुछ कहूं, उसकी तस्दीक करनी थी। और यह ख्याल रखना था कि अगर वह किसी तरह गुस्से में आकर मुझ पर हाथ उठाने लगे, तो वे मुझे बचा लें···

सविता के बाप को लेकर जब वापस आएंगे, उस मौके के लिए भी सोचा, कि जिस कुर्सी पर उसे बिठाएंगे, वे दोनों लड़के उस कुर्सी के पीछे खड़े हो जाएंगे—

और तैयार रहेंगे कि सविता का बाप अगर गुस्से में आकर जेब में से पिस्तौल निकालने लगे, तो वे पीछे से एकदम उसकी बांहें पकड़ लेंगे…

पता नहीं क्या हादसा होने वाला था और क्या नहीं, पर हम यह सब कुछ बचाव के लिए सोच रहे थे…

ऐसे खौफनाक मौके पर भी हमारी सैंस आफ ह्यूमर शायद खोई नहीं थी। एक कहने लगा, "अगर सविता के बाप ने ऐसे ही रूमाल निकालने के लिए जेब में हाथ डाला, और ऊपर से तुम दोनों झपट पड़े और उसकी बांहें पकड़ लीं तो फिर…"

हम सब रोने-रोने को भी हो रहे थे और हंस भी रहे थे…

फिर तीनों, एक मैं और मेरे दोनों रक्षक, सविता के बाप से मिलने गए। जाकर हाथ जोड़े, नमस्ते की और बड़ी नम्रता से कहा, "हम सविता और रवि के दोस्त हैं, आपको लेने आए हैं !"

वह कुछ बोला नहीं, बड़ी देर तक हमारे चेहरों को घूरता रहा। फिर कहने लगा—"सो यू आर दि मेंबर्स ऑव दि गैंग…"

मालूम था, जितनी कम बात करूंगा, उतना ही अच्छा रहेगा। जवाब में सिर्फ वही शब्द दुहराए—"हम उनके दोस्त हैं।"

'उन' से उसे अभी वास्ता नहीं था, सिर्फ सविता से सरोकार था। पूछने लगा—"ह्वेयर इज शी ?"

"वह होस्टल में नहीं, अपने घर है," बड़ी सादगी से जवाब दिया इससे रवि के कमरे को सविता का घर कह कर, विवाह की खबर के लिए भी उसे इशारा दे दिया था, और स्वाभाविकता के लिए भी, जो ऐसी हफड़ा-तफड़ी में हुए विवाह की ही नहीं बल्कि स्वाभाविक विवाह का अंग होती है।

वह कुछ देर उसी तरह चुप बैठा रहा, और हमारी तरफ देखता रहा। हमारे चेहरों पर किसी तरह की शोखी का या किसी तरह की शरारत का भाव नहीं था। अचानक उसने मुझसे पूछा कि मैं काहे का स्टुडैंट था, किस साल में था ?

"चौथे साल में, इंजीनियरिंग स्टुडैंट," जवाब दिया। और बाकी दोनों लड़कों के बारे में भी उसके सवाल का जवाब दिया, "दोनों आर्कीटैक्चर के स्टुडैंट हैं, फाइनल इयर।"

"सो यू आर बिल्डर्ज़ आव अवर कंट्री ?" उसने बड़े व्यंग्य से कहा—और फिर उठ कर हमारे साथ चल पड़ा।

मां के बारे में भी कुछ कहना था, इसलिए बड़ी नम्रता से पूछा, "सविता की माता जी भी आई होंगी ?"

"हां, माता जी, पिता जी, दोनों आए हुए हैं।" उसने फिर बड़े व्यंग्य से

कहा, पर हमारे साथ अकेला बाहर सड़क पर आ गया। (बाद में सविता से पता लगा था कि वह सविता की मां को उस वक्त जानबूझकर साथ नहीं लाया था कि वह वहां जाकर सिर्फ रोना शुरू कर देगी और कोई बात नहीं सुनने देगी।)

हम वापस रवि के कमरे में पहुंचे, तो रवि ने जल्दी से उठकर उसके पांव छुए। उसने बड़े गौर से रवि को देखा, फिर पांव पीछे कर लिए। सिर्फ कहा— "सो यू आर दि जैंटलमैंन !"

रवि जवाब में सिर्फ हाथ जोड़े हुए था। और हम सब दोस्त, समेत सविता के, उसके जुड़े हुए हाथों की तरह, चुपचाप खड़े थे।

मेरा ख्याल है—वह बड़ी देर तक और किसी की तरफ नहीं, सविता की तरफ भी नहीं, सिर्फ सविता के माथे पर लगी हुई बिन्दी की तरफ देख रहा था···

"आई वांट टु टॉक टु यू एलोन," उसने काफी देर की चुप के बाद सविता से कहा।

हम सब दोस्त, समेत रवि के, कमरे से बाहर चले गए। मन में डर भी था, दूर नहीं गए थे, सिर्फ कमरे के बाहर बरामदे में। और कमरे की दीवार से इस तरह कान लगाकर खड़े हो गए थे—कि अगर कोई खतरे की बात कानों में पड़े, तो अन्दर जाकर सविता को बचा सकें।

सुन सकते थे—उसका पहला सवाल था कि हम लोग कौन थे? शरीफ लड़के थे कि नहीं? और आखिरी सवाल था कि यह विवाह सविता की मर्जी से हुआ था कि उसके साथ कोई जबर्दस्ती की गई थी?

यह एक बाप की आवाज थी, बड़े जायज सवाल थे, सिर्फ हमने ही नहीं, सविता ने भी बाप से ऐसी आशा नहीं की थी, शायद इसलिए कि सविता भी हमारी तरह, पिछले दिनों सभ्यता के रक्षकों की तरफ से हमारे साथ जो सलूक किया जा रहा था, उससे इतना डर गई थी कि उसका अपने बाप में भी विश्वास नहीं रह गया था···

कोई हादसा नहीं हुआ। हमने घबरा कर सविता और रवि के विवाह वाला जो हल ढूंढ़ा था, उसके बाप ने उसे कबूल कर लिया था—हमारे खौफ को समझ लिया था।

हमें पश्चाताप-सा हुआ कि हमने एक अच्छे आदमी को ख्वाहमख्वाह परेशान किया, यह सब कुछ हम उससे पूछकर और उसकी मर्जी से कर सकते थे, पर शायद इसमें हमारा ज्यादा कसूर भी नहीं था···

सैडिस्टिक गार्जियंस ऑफ़ अवर कल्चर···हम उनके लिए दांत पीसकर सिर्फ यही शब्द दुहरा सकते थे, जिन्होंने हमारे विश्वास को इस तरह तोड़ा था, कि सविता जैसी लड़की अपने बाप में भी विश्वास करने से घबरा गई थी···

4

मालूम नहीं, कहां क्या गलत है···

स्टूडैंट हिन्दू हो, उसे मालूम रहता है कि उसे मुसलमान प्रोफेसर के पेपर में कम नम्बर मिलेंगे···

स्टुडैंड मुसलमान हो, उसे पता होता है कि उसे हिन्दू प्रोफेसर के पेपर में कम नम्बर मिलेंगे···

गुजराती प्रोफेसर को पंजाबी स्टुडैंट पसन्द नहीं···

बंगाली प्रोफेसर को गुजराती स्टुडैंट पसन्द नहीं···

साउथ इंडियन प्रोफेसर को···

हर मजहब भी शायद एक गढ़ा है, हर प्रांत भी एक गढ़ा है, और हर भाषा भी शायद एक गढ़ा है···पांव कभी किसी गढ़े में जा पड़ता है, कभी किसी गढ़े में।···

पर चोट सदा माथे पर लगती है, मेरा मतलब ख्यालों को लगती है···

तनवीर को पता है, उसे इस साल भी पास नहीं होने दिया जाएगा। यह सिर्फ तनवीर को नहीं, सबको पता है, पर कोई कुछ नहीं कर सकता···

हम सब दोस्त तनवीर को पिछले साल समझाते थे, पर इस साल समझाने वाली बात नहीं रही, समझने वाली बन गई है···सिर्फ यह पता नहीं चलता कि हमारे समझने वाली, या किसी और के समझने वाली···

मिस्टर जोसेफ, उसका प्रोफेसर, मालूम नहीं किस जन्म से दुखी है, कि इस जन्म में वह हंसने की कोशिश भी करता है तो रोने-रोने को हो जाता है। पिछले साल उसने एक दिन क्लास में यही कोशिश की थी···

कोई बड़ा पूअर जोक उसने क्लास में सुनाया था, लड़के उसे खुश करने के लिए हंस पड़े, जैसे उसके मजाक की दाद दे रहे हों, पर तनवीर नहीं हंसा था। तनवीर की शोहरत थी कि वह अपनी उमर के लड़कों से ज्यादा समझदार था, और मिस्टर जोसेफ के ख्याल में उस समझदार लड़के से दाद न मिलना, उसकी तौहीन थी···

तनवीर के ख्याल से अगर वह घटिया मजाक की दाद देता है तो मिस्टर जोसेफ की तौहीन करता है, पर दाद न देना तौहीन बिल्कुल नहीं था, और उसके ख्याल में अब मिस्टर जोसेफ का इस तरह बदला लेना, दुनिया का सबसे घटिया मजाक था···

"मिस्टर जोसेफ खुदा का सबसे घटिया मजाक है,' यह सोचने के सिवा हम क्या कर सकते थे? कहीं सुनवाई नहीं थी। सिर्फ उसके पास से गुजरते हुए या

उससे बात करते हुए, कई लड़के उसे मिस्टर जो···कह लेते थे। लगता था यह मिस्टर जो···जैसे मिस्टर जोसेफ के लिए हों, पर यह मिस्टर जोक के लिए होती थी, सिर्फ 'क' शब्द को किसी के कानों तक पहुंचने से पहले ही, इधर हवा में गिरा देना होता था···

हवा में मालूम नहीं क्या-क्या गिराना पड़ता है, और क्या-क्या गिराना पड़ेगा···

हमारे पास सिर्फ कुछ शब्द थे हवा में गिराने के लिए, कुछ शब्द, कुछ हसरतें, कुछ शिकवे, कुछ गुस्सा, बस···पर मिस्टर जोसेफ तनवीर की उमर के साल हवा में गिरा रहा था। पिछला साल गिर चुका था, यह साल भी गिरता दिखाई देता था···

उस दिन जब तनवीर आया था, बेकसी का एहसास ले आया था। हम सब—विनी, अशोक और मैं—एक फिल्म देखने जा रहे थे, तनवीर को भी ले गये। वहां पहुंच कर टिकट खरीदने के बाद एक अजीब बात सूझी—"लैटअस फ्लर्ट बिद वल्गेरिटी," ख्याल अशोक का था, पर सबको मंजूर था।

हम सबने अपनी-अपनी टिकट अजीब-अजीब जगह रख ली। गेट के पास पहुंचे, गेट-कीपर ने हाथ बढ़ाया। सबसे आगे तनवीर था, उसने गेट-कीपर की तरफ ऐसे देखा जैसे उसे बात समझ में न आई हो। गेट-कीपर ने कुछ गुस्से में उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—मिस्टर! टिकट···

तनवीर के चेहरे पर गुस्सा बिल्कुल नहीं था, पर वह एक मिनट एकटक गेट-कीपर के मुंह की तरफ देखता रहा, और फिर झुककर पांव के एक बूट का तस्मा खोलने लगा।

गेट-कीपर ने घबरा कर उसके कंधे पर से हाथ हटा लिया, और उछल कर ऐसे पीछे हुआ जैसे तनवीर अभी पांव में से बूट उतार कर उसे मार देगा।

गेट-कीपर के मुंह का रंग देखने वाला था। तनवीर बिल्कुल शांत था, संजीदा, जैसे हर हरकत स्वाभाविक हो। उसने आराम से एक बूट उतारा, फिर जुराब उतारी, और उसमें से टिकट निकालकर, बड़े आराम से गेट-कीपर के हाथ में पकड़ा दिया।

उसके बाद मैं था। मैंने हाथों में दस्ताने पहन रखे थे। पहले मैंने भी एक मिनट गेट-कीपर के मुंह की तरफ ऐसे देखा, जैसे टिकट दिखाने वाली बात मुझे याद ही न हो। फिर आराम से एक हाथ का दास्ताना उतारा, और अन्दर से टिकट निकाल कर उसे दे दिया।

हम चारों के चेहरों पर हंसी-मजाक का कोई निशान नहीं था। इस बार गेट-कीपर ने ही जरा मुस्कराने की कोशिश की, पर पहले खोफ से अभी वह इतना नहीं संभल सका था कि मुस्करा सकता। अभी तक वह यही शुक्र मना रहा था कि

किसी मनचले ने कोई नाजायज हरकत नहीं की थी।

मेरे पीछे अशोक और विनी थे। उनकी बारी आई तो वे दोनों अपनी-अपनी पेंट के बटन खोलने लगे। इस बार गेट-कीपर का हाल देखने वाला था, वह उछल कर पीछे हटा तो उसका सर दरवाजे से जा टकराया। इतने में अशोक और विनी ने पेंट के बटन खोल लिए थे, और अपना एक-एक हाथ पेंट के अन्दर डाल एक-एक टिकट निकाल लिया था···

बस इस तरह के बेमाने मजाक से हमने मिस्टर जोसेफ के बेमाने मजाक का गुस्सा निकाला, पर यह गुस्सा नहीं था, गुस्सा-सा था···

गुस्सा निकालने की कोई राह नहीं, तनवीर के खोए हुए साल को ढूंढ़ने की भी कोई राह नहीं···

फिल्म देखने के बाद, वापसी पर रूबी ने अपने घर बुलाया था। वहां आए हुए लड़कों में से कई हमारे कालेज के थे, कई बाहर के भी थे, शायद रूबी की कजिन, पता नहीं। लड़कियां भी थीं। मेरे लिए 'ब्लूज' का यह पहला तजुरबा था। यह शब्द सुनने का भी पहला तजुरबा···

"वी विल हैव ब्लूज," रूबी ने कहा था, और मुझे एक सिगरेट ऑफर किया था। मैंने सिगरेट को आम सिगरेट समझ पकड़ लिया था, इससे ज्यादा मुझे कुछ पता नहीं चला था पर आधे के लगभग सिगरेट पी लेने के बाद जब मेरे सिर को चक्कर सा आया, मुझे सिगरेट में पड़ी हुई चरस का पता चला।

तनवीर ने शायद दो सिगरेट पिए थे। कमरे में मंकी म्यूजिक बज रहा था, वह डांस करने लगा। उसकी फरमाइश पर रूबी ने 'सिलिएस्ट' गीत का टेप लगा दिया था: इट इज टू इजी हमिंग सांग्स टु ए गर्ल यैलो-ड्रैस···

यह एक अजीब इत्तफाक था कि कमरे में बैठी लड़कियों में से एक ने सचमुच पीली जीन्स और पीला ब्लाउज पहना हुआ था, जाहिर था कि चरस वाला सिगरेट उसने भी पी रखा था। वह उठकर तनवीर के साथ डांस करने लगी। 'गर्ल इन यैलो-ड्रैस' शायद उसे अपनी बात लगी थी। आगे गीत बेसिर-पैर का था, पर आवाजें बहुत गहरी और भरी-भरी थीं···

इट हैज बीन ए लांग टाईम सिंस दि
पार्टी एंड दि रूम इज इन मैस
ह्वाई डांट यू कट योर हेयर···

तनवीर इस वक्त मूड में था। था नहीं, लगता था। गीत खत्म हो गया, वह फिर भी पीली जीन्स वाली लड़की के साथ डांस करता रहा। इस वक्त वह खुद गा रहा था:

यू वाक-आऊट ऑन मी
ह्वेन वी बोथ डिसएग्री

बिकॉज ट्र रीजन इज नाट-ह्वाट यू केयर फार···

पीली जीन्स वाली लड़की चरस के नशे में थी, उसने गीत के अर्थों की ओर ध्यान नहीं दिया, पर तनवीर के गीत से जाहिर था कि उसके मन की दुखती जगह अभी दुख रही थी···

वापसी पर, मुझे याद है, तनवीर सड़क पर चलता गुनगुना रहा था, 'एंड लाईफ इज इन ए मैस'—रूम शब्द की जगह लाईफ शब्द उसने सोच कर नहीं लगाया, अपने आप लग गया था···

5

शीरीन से मेरी दोस्ती एक खत से शुरू हुई।

यह मेरा खत, शीरीन के लिए लिखा हुआ नहीं था, अपनी मां के लिए था। मां को बड़े दिनों से खत नहीं लिखा था, इसलिए उसे खुश करने के लिए एक आइडिया सोचा। और किसी के लिए चाहे मैं कुछ भी न होऊं, पर मां के लिए 'इम्पार्टेण्ट' था, यह पता था। इसलिए फुलस्केप साइज का एक कागज लेकर अखबार के पहले सफे की शक्ल दी। अखबार का नाम रखा—'दि टाइम्स ऑफ कपिल'।

मां हर बात जानना चाहती थी—मेरी सेहत, पढ़ाई, दोस्ती, छुट्टियों में घर आने की तारीख, और पैसों की जरूरत। सो बड़ा बना-संवार कर अखबार का नाम लिखा, उसके नीचे उस दिन की तारीख डाली, ऊपर उस अखबार के ईस्टेब्लिश होने की तारीख, अपने जन्म की तारीख डाली—उस दिन से इक्कीस साल पहले की। और इस अखबार की सबसे अधिक सेल जहां होती है, वहां मां का एड्रेस लिख दिया।

अखबार के छः कालम थे। दो कालम में मोटा-सा हैडिंग लिखा, 'मेजर फाइनेन्शल क्राइसिस', नीचे खबर लिख दी कि माइक्रोस्कोप से देखने पर पता लगा है कि जेब में पैसे खत्म हो गये हैं···

मां को मेरी स्टडी की फिक्र थी, इसलिए अखबार में एक अपना स्केच बनाया—मेज पर खूब किताबें पड़ी हुई हैं, और लड़का बड़े ध्यान से सिर नीचा किए पढ़ रहा है। सामने एक लड़की का स्केच भी बना दिया, जिससे जाहिर था, कि सामने लड़की भी खड़ी हो तो भी लड़का उधर ध्यान नहीं देता, अपने में मग्न पढ़ता रहता है।

नीचे खबर लिखी—मदर मे ऑर्डर वन मंथ स्टडी पाज़···

मां को फिक्र रहती थी कि मैं रोज सिर्फ चाय पीता हूं कि दूध भी, इसलिए खबर लिखी—नो इनक्रीज इन दि मिल्क प्राइस, मास्टर टेक्स ए ग्लास ऑफ मिल्क एवरी डे···

पिछली छुट्टियों में मां ने चैस खेलने से मना किया था, इसलिए एक कालम में यह भी खबर लिखी—मास्टर रिजाइंस फ्रॉम चैस···

मां को अच्छी किताबें पढ़ना बहुत अच्छा लगता है, इसलिए इस अखबार की 'न्यूज सर्विस' की तरफ से खबर भेजी कि घर की अलमारियों के खाने खाली किए जाएं क्योंकि मास्टर ने प्लेटो से लेकर कामू और हैनरी मिलर तक की बहुत सारी किताबें खरीद ली हैं, और घर का एक पूरा कमरा लाइब्रेरी बनने वाला है।

'वेदर रिपोर्ट' भी लिखी—आप्टिमिज्म एबव नार्मल इन दि मेजर पार्ट्स ऑव दि माइंड, विद ए फ्यु स्कैटर्ड शावर्ज ऑफ डिप्रेशन। [दिमाग के ज्यादातर हिस्सों में आशावाद सामान्य से ज्यादा, निराशा के दो चार छींटों के साथ।]

मौसम के बारे में पेशीनगोई भी की—ए स्टेडी इनडल्जैंस इन दि प्रिपेरेशन ऑफ दि एग्जाम्ज।

अखबारों में इश्तिहार भी रहते हैं—इसलिए एक कोने में इश्तिहार दिया—'वाण्टेड', और साथ में लिखा—प्रोमोशन फ्रॉम दि फोर्थ इयर इंजीनियरिंग···

'लेट न्यूज' भी जरूर देनी थी, मां को मेरे रोज अच्छी तरह नहाने और कपड़े बदलने की फिक्र रहती थी। इसलिए खबर दी—मास्टर चेन्जिग हिज अण्डर-क्लाथिंग्ज आफ्टर ए गुड बाथ···

यह सब लिखकर कागज मेज पर रखा था, पोस्ट करने वाला था कि शीरीन आ गई···

हमारी हवेली अब तक एक क्लब-सा बन गई थी। होस्टल के लड़के-लड़कियां अक्सर शाम को यहां आ जाते थे। लड़कियों ने साढ़े आठ तक होस्टल लौटना होता था। (सैटर्डे-संडे साढ़े दस बजे तक) इसलिए हमारी हवेली की शाम बड़ी बारौनक होती थी। शीरीन पहले भी आया करती थी, मेरी वाकिफ थी, पर वाकिफ से ज्यादा नहीं थी। उसने उस दिन मेरे कमरे में आकर वह अखबार पढ़ा। मेरा मतलब है मेरा वह खत पढ़ा। पहले 'ब्रिलियंट जर्नलिस्ट' का खिताब-सा दिया, फिर मेरा हाथ पकड़कर डांस करने लगी···

रूदी ने अपना रिकार्ड-प्लेयर लाकर इस हवेली में रख दिया था। अक्सर हर शाम को वह भी जरूर आता था। उसके खोये हुए होस्टल के दिन उसे शायद फिर मिल गए लगते थे। अपनी-अपनी मर्जी का एक-एक रिकार्ड हम सबने भी खरीदा था पर ज्यादा रिकार्ड रूबी के थे : शीरीन ने हाल में जाकर एक रिकार्ड लगाया—आई एम सो हैप्पी आई कुड फ्लाई···और फिर मेरा हाथ पकड़कर, डांस करती हुई मुझे हाल में ले गई···

हाल में और भी कई थे, पर शीरीन मेरे साथ डांस करती रही, बड़ा क्लोज। यह पहला दिन था, जब मैंने एक लड़की को इतना करीब से देखा था।

शीरीन पारसी लड़की है। एक पारसी लड़का उसका बड़ा दोस्त था, मुझे पता था, पर उसका अपना पारसी होना शीरीन को मालूम नहीं क्यों इस तरह याद आया (उसका पारसी होना, या मेरा पारसी न होना) कि उसने डांस करते-करते जोर से एक घूंसा मेरी छाती पर दे मारा, और कहने लगी—"तुम पारसी क्यों नहीं ?"

"इट इज नाट माई फाल्ट—" मैंने उसके कानों के पास झुककर कहा।

"इट इज योर फाल्ट—" शीरीन ने अपने होंठ मेरे कानों से लगा कर कहा।

होंठों से कान को छूकर—कान को भी और उससे जरा नीचे गले को भी।

"ओ माई गॉड···" शीरीन मेरी बांह में कांप-सी उठी थी।

मेरी बांह शायद कांप उठी थी, या उसकी पीठ की कंप-कंपी मेरी बांह तक आ गई थी···पर फिर भी मैंने उसे बांह का सहारा दिया। वह निढाल-सी मेरी बांह के सहारे खड़ी रही थी।

मोमबत्ती की रोशनी इतनी-सी तो होती है। कमरे में और भी लड़कियां थीं, लड़के भी, उनमें से भी कई डांस कर रहे थे सब अपने में मस्त थे। शीरीन ने आंखें मींच-सी ली थीं जैसे बाहर का अंधेरा काफी न हो···

मैंने शीरीन के होंठ चूमे, लगा—आंखें मीची हुई थीं, पर होंठ नहीं भींचे हुए थे···

यह सिर्फ बाद में, मां को खत पोस्ट करते वक्त ख्याल आया कि उनमें जो स्केच था—एक लड़का बड़े ध्यान से मेज पर पड़ी हुई किताबें पढ़ रहा है, और सामने एक लड़की को देखकर भी अपनी किताबों में मग्न है—वह स्केच झूठा हो गया था··

खत लिखते समय तक वह सच्चा था, पर पोस्ट करते समय तक वह झूठा हो गया था···

शीरीन का दोस्त लड़का उससे नाराज हो गया···

मैंने शीरीन से कहा था, वह शाम को हवेली में न आया करे, या उसे भी अपने साथ लाया करे। पर शीरीन ने मेरी बात नहीं सुनी।

एक शाम जब अपने कमरे में आया तो शीरीन बैठी हुई थी, अकेली। सोचा—आज शीरीन से गुस्से से कहूंगा कि वह आगे से ऐसा न करे। पता चला था, शीरीन की उस पारसी लड़के के साथ सगाई होने वाली थी···

देखा—शीरीन ने मेरे सूटकेस में से मेरी मां की तस्वीर निकाल कर मेरी मेज पर टिकाई हुई थी। न जाने कब देख गई थी, उसके साइज का फ्रेम खरीद लाई थी। मैंने पहले शीरीन की तरफ देखा, फिर मां की तस्वीर की तरफ। शीरीन

से कुछ नहीं कहा गया ।

सिर्फ हाल में डांस करते वक्त इतना भर पूछा—"तुम्हारे दोस्त का क्या हाल है ?"

"वह नाराज भी हो जाता है, फिर खुद ही ठीक हो जाता है—" शीरीन ने स्वाभाविक-सा जवाब दिया ।

"तुम्हें तकलीफ नहीं होती ?" मुझे पूछना पड़ा ।

"होती है," उसका यह जवाब भी कुछ मुश्किल से दिया हुआ जवाब नहीं था, स्वाभाविक आवाज में था ।

"आई कांट अंडर स्टैंड," कुछ देर बाद मैंने कहा था ।

यू वांट टु अण्डर स्टैंड ?" उसने जवाब में पूछा ।

मैं उसके पतले मुलायम चेहरे की तरफ देखता रहा । कुछ कहा नहीं गया । लगा, वह कोई अजीब बात कहने जा रही थी । और लगा—मैं शायद उसे सुनने के लिए तैयार नहीं था···

पर अब मेरे सुनने या न सुनने का सवाल नहीं था । मैं पूछ चुका था, उसे जवाब देना था । कहने लगी—"आई फील लाइक हैंगिंग इन सस्पैन्शन एज ए फार्म ऑफ कॉस्मिक डस्ट···"

मैं कितनी देर तक शीरीन के मुंह की ओर देखता रहा, लगा शायद मेरा अस्तित्व भी धरती की ग्रैविटी में से बाहर हो गया था···

"कम बैक टु दि अर्थ···" पता नहीं मैंने अपने आपसे कहा था कि शीरीन से, शायद दोनों से, क्योंकि जवाब उसने दिया—"धरती की ग्रैविटी की तरफ क्यों ? आगे चांद की ग्रैविटी की तरफ क्यों नहीं ?"

समझ गया, धरती की ग्रैविटी से वह डरती थी, क्योंकि धरती पर उसके पारसी होने की, और मेरे पारसी न होने की हकीकत उसके सामने खड़ी हो जाती थी···

अचानक मेरा हाथ अपनी गर्दन की तरफ गया—ऐसे जैसे वहां हल्की-सी धूल जमी हो—कास्मिक डस्ट···

कास्मिक डस्ट का पता नहीं, पर शीरीन के शब्द जरूर मेरी गर्दन के पास बिखरे हुए थे···

कोई लड़की जब चांद की ग्रैविटी की तरफ जाने की बात करे, शायद मर्द का कुछ न कुछ हिस्सा जरूर उधर चल देता है···लगा—इस पल इक्कीस साल की उमर से कुछ वर्ष अचानक बड़ा हो गया था, और मेरा एक हिस्सा धरती की ग्रैविटी से ऊपर उठकर, नो ग्रैविटी स्पेस में से गुजर, चांद की ग्रैविटी में दाखिल हो रहा था···

शायद यही पल था—मेरा 'मैं' एक नहीं रह गया था, दो हो गए थे । एक

मेरे से दूर कहीं शीरीन के साथ डांस करता, बातें करता, उसके होंठ चूमता, और एक—मेरे पास खड़ा, चुपचाप सिर्फ उस दूसरे को देखे जा रहा···

जानता हूं—इन्सानी स्वभाव की तशरीह करने वाले इसका मतलब कुछ और समझेंगे। ऐसी हालत को ये लोग कहते हैं कि वक्ती तौर पर आदमी दूसरों का रोल अदा करता है, यह देखने के लिए कि वह दूसरों की नजरों में कैसा दिखाई देता है, इसीलिए वह एक ही समय आबजैक्ट भी होता है सबजैक्ट भी···

मुझे किसी और का पता नहीं, अपना पता है। यह सिर्फ इसलिए है कि मेरा अपना आप सारे का सारा किसी हरकत में शामिल नहीं। और जो जितना भी, उनमें शामिल नहीं, वह सिर्फ दर्शक है···

6

नौबत आती दिखाई देती थी; पर इतनी तेजी से नहीं, वह एकदम सामने ही आ खड़ी हुई।

तनवीर के लिए एक ही राह दिखाई देती थी कि वह मिस्टर जोसेफ के सामने गिड़गिड़ा कर मुआफी मांगे (ऐसे मुआफी मांगे जैसे जान की खैर मांगता हो) मिस्टर जोसेफ ने सीधे-साफ लफ्ज़ों में कह दिया था—यू विल सी इफ यू एवर पास···

तनवीर साल भर से बहुत चुप रहता था, उसके अन्दर इकट्ठी हुई चुप फट गई। वह हंसने लगा—सर ! आपके 'सिली जोक' परनहीं हंसा था, पर यह कलैवर जोक है, मेरा ख्याल है मुझे इस पर हंसना चाहिए···

और अब नौबत सिर्फ इतनी रह गई थी कि तनवीर को इस साल भी जान-बूझ कर फेल कर दिया जाना था। पता चला कि कालेज से निकाल देने की साजिश हो रही थी···

यह साजिश अगर कहीं सचमुच सफल हो जाती तो यह मिस्टर जोसेफ का सिर्फ सिली और कलैवर जोक नहीं होना था, यह एक बहुत बड़ा वलगर जोक था···

आर्कीटैक्चर का एक अच्छा-खासा पागल स्टुडेण्ट था—हीरू।

इतना पागल कि एग्जाम में उसे एक 'बर्ड केज' बनाने को मिला, तो उसने बर्ड केज में एक बेडरूम भी बनाया था और एक बाथरूम भी। पर कहते हैं, पागलपन उसे सिर की एक सख्त चोट के बाद हुआ था, अपनी स्कूल की पढ़ाई के वक्त वह कभी फर्स्ट भी आता रहा था। पर वह उसकी दिमागी हालत की बात

है, उसके मन की नहीं। पता लगा कि मिस्टर जोसेफ ने उस पागल हीरू को कुछ इस तरह से सिखाया कि अगर वह उसी तरह वही दुहरा देता, और डीन के सामने पेश होकर अपने बयान पर कायम रहता, तो तनवीर पर 'होमो' होने का इल्जाम लग जाता और फिर तनवीर को कालेज से निकाल दिया जाता···

हीरू के मन में यह कहीं जरूर था, कि यह गलत है, उसने मिस्टर जोसेफ से कुछ नहीं कहा पर घबरा कर तनवीर को बता दिया।

"दिस इज आल वैरी डिसगस्टिंग।" तनवीर ने बार-बार सिर्फ यही कहा, और कोई लफ्ज़ नहीं बोला। या एक दिन यह कहा—आई कैन सबमिट टु लाईफ नाट टु ऐनीवन एल्स···

और तनवीर ने सिर्फ कालेज नहीं, देश छोड़ दिया।

इस हालत में उसे न कहीं स्कॉलरशिप मिल सकता था, न देश से बाहर जाने के लिए पैसा। सिर्फ किसी तरह उसने चार सौ सत्तर रुपये जमा किये, और बम्बई से बेड़ी के सफ़र में बसरा चला गया। वहां वह खाली हाथ क्या करता होगा, हमें कुछ पता नहीं···

"इट इज आल वैरी डिसगस्टिंग"—तनवीर चला गया था, पर उसके ये शब्द पीछे रह गये थे···

ये शब्द कई शक्लों में दिखाई देते थे, मसलन हम अपनी कालेज वाली सड़क पर एक मरियल-सा कुत्ता रोज देखते थे, उसकी पिछली टांगें शायद कभी किसी लारी-मोटर के नीचे आई होगी, पता नहीं, पर अब वे न उसकी धड़ से अलग थीं, न जुड़ी हुई, वह जब उन टांगों को जमीन पर घसीटता हुआ किसी के पांवों को चाटने की कोशिश करता था—तनवीर के शब्द हमें उसकी शक्ल में भी दिखाई देते थे···

एक गुस्सा था, रुके हुए पानी की तरह जिसके निकलने की कहीं कोई राह नहीं थी, इसलिए जहां वह रुका हुआ था, उन दीवारों को ही चाट रहा था···

हम सब अपने आपको ही चाट रहे थे···

रिज़वी नाम के लड़के के पास फारेन मोटर-साइकिल थी। वैसे वह बड़ा दोस्त-नुमा लड़का था। उसके साथ कोई भी कॉफी पीने चला जाए, वह किसी और को पैसे नहीं चुकाने देता था, पर अपनी मोटर-साइकिल किसी को भी नहीं देता था। तनवीर वाले हादसे के बाद एक दिन अशोक का गुस्सा अचानक रिज़वी पर बरस पड़ा—साला मोटर-साइकिल को हाथ नहीं लगाने देता···

उस दिन विनी और अशोक ने एक तरकीब निकाली। शाम को जब रिज़वी आया, अशोक इस तरह हरकतें करने लगा जैसे उसने शराब पी रखी है। शराबी हरकतों की एक्टिंग में उसने रिज़वी को एक जोर का घूंसा मारा—साले मोटर-साइकिल देता है कि नहीं? रिज़वी ने घबरा कर मोटर-साइकिल की चाबी उसके

सामने कर दी। पास से विनी ने कहा था कि अशोक इस वक्त होश में नहीं, इसलिए इसे ना की तो पता नहीं क्या कर दे। और विनी ने रिज़वी को विश्वास दिलाया कि मोटर-साइकिल वह खुद चलाएगा, अशोक को सिर्फ पीछे बिठा लेगा और दो-चार मील चक्कर लगाकर वापस आ जाएगा।

विनी और अशोक ने लगभग एक घण्टा मोटर-साइकिल चलाई—सिर्फ रिज़वी की जिद तोड़ने के लिए। रिज़वी की जिद भी ऐसे ही मन का बहाना-सा थी—वास्तव में तनवीर वाले हादसे का गुस्सा था, जो मिस्टर जोसेफ पर निकाला नहीं जा सकता था···

शीरीन तनवीर को जानती नहीं थी, उसने सिर्फ हममें से कुछ से उसकी बात सुनी थी, कम्बख्त को न जाने क्या सूझा, एक दिन अकेली सत्तर मील दूर एक झील को देखने चली गई।

वापस आई तो पूछा—" 'हिच-हाईकिंग' का ख्याल तुम्हें तनवीर से आया था?"

मन में उस पर गुस्सा आ रहा था, पर वह ज़र्द-सा चेहरा लिए इस तरह बैठी थी, गुस्से से कुछ नहीं कहा जा सकता था।

जब वह वापस पहुंची, तो रात आधी हो चली थी, उस वक्त होस्टल नहीं जा सकती थी, इसलिए वह हमारी हवेली में आ गई थी।

"थैंक गॉड, आई एम अलाइव" उसने आते ही यह कहकर किसी को नाराज होने के काबिल नहीं छोड़ा था।

मैं हाथ में थरमस लेकर चाय वाली दुकान पर गया था। दुकान बन्द थी, पर दुकान वाला पास ही चारपाई डाले सो रहा था। उसे दो रुपये देकर मुश्किल से थोड़ी-सी चाय बनवाई थी।

वह चाय का एक प्याला पी चुकी, बाकी चाय उसकी तरफ करते हुए मुंह से निकल गया था—"अब बाकी की गर्म चाय तुम्हारे सिर पर डाल दूं ताकि तुम्हारे सिर को कुछ समझ आ जाए?"

"मे बी इन दि मार्निंग, नाट नाऊ···" उसने मुश्किल से इतना भर कहा, और कांपती-सी मेरे कमरे में सो गई।

मैं हाल में अशोक के पास जाकर सो गया।

ऐसे डरावने सपने मुझे जिन्दगी में कभी नहीं आये। बड़ी तेजी से भागते हुए ट्रक···हर एक ट्रक में चीखों की आवाज···कोई ट्रक सड़क पर उलटा हुआ··· कोई मेरी तरफ इस तरह आता हुआ जैसे सीधा मेरे ऊपर से गुजर जाएगा···

न जाने अपनी अन-सोई रात का गुस्सा था कि क्या, सुबह जब कमरे में गया,

शीरीन से कहा—"समथिंग इज़ रियली इनसेन अबाउट यू।"

"आई थिंक सो।" शीरीन ने जवाब दिया।

कोई अपने मुंह से ही ऐसा कह दे तो उसे क्या कहा जा सकता है।

कुछ देर बाद यह कह सका—"पर तुम्हें हुआ क्या था ? तुम्हें यह ख्याल तनवीर से आया था ?"

"पार्टली"

"पर तुम्हें यह ख्याल नहीं आया कि वह लड़का है, वह सड़क पर भी सो सकता है···वह···"

"उस वक्त जाते हुए यह ख्याल नहीं आया था।"

"फिर ?"

"फिर आते वक्त पता लगा···"

"क्या पता लगा ?"

"इट इज़ टेरिबिल···"

धीरे-धीरे शीरीन ने बताया कि आते समय एक ट्रक में लिफ्ट ली थी, पर जब अच्छा अंधेरा हो गया, एक आदमी आगे से उठकर, पीछे उसके पास आ बैठा। उसने कहा कुछ नहीं था, पर लगता था किसी मिनट कुछ भी कह देगा···फिर उन्होंने ट्रक रोक लिया, एक जगह कुछ दुकानें थीं, जो पीछे बैठा हुआ था, वह उतरकर एक दुकान की तरफ चला गया। वह समझ गई थी कि वह शराब लेने गया था···वह ट्रक में से उतर आई। उस वक्त उसे असली खतरे का एहसास हुआ था। वह बिल्कुल सुनसान जगह नहीं थी, बस उसे यही हौसला था। एक चाय की दुकान पर कुछ भीड़ थी, वह वहां जा खड़ी हुई···फिर से ट्रक में बैठने से इन्कार कर दिया···

सुनकर गुस्सा आ रहा था। क्या कह सकता था ! वह कह रही थी, "आज जिन्दा आ गई हूं, यह बात क्यों नहीं सोचते ?"

"अगर कुछ हो जाता ?" मुझे किर्च की तरह यह बात चुभ रही थी।

"जब फिर एक कार में लिफ्ट ली, मैं तब भी कांप रही थी, अब तक कांप रही हूं। पर अब इस बात को भूल जाओ···"

"एक इकरार पर"

"क्या ?"

"फिर कभी ऐसा नहीं करोगी"

"नहीं करूंगी"

"पर तुमने यह किया क्या···" मैं अभी भी यही बात पूछे जा रहा था।

"एक बार तुमने कहा था—कम बैक टू दि अर्थ···"

"पर उस बात का इस बात से क्या ताल्लुक ?"

"हंगर और हार्डशिप देखना चाहती थी···"

मैं चुप रह गया। धरती पर उतर आने का मतलब उसने कितना सादा-सा निकाला था, सिर्फ भूख और थकावट।

उसने कुछ ठहरकर, पता नहीं क्यों पूछा—"अच्छा, अगर मुझे कुछ हो जाता, मैं हस्पताल में पड़ी होती, तुम्हें पता चलता, तुम मुझे देखने के लिए आते कि नहीं?"

अजीब पागल सवाल था। मैं कुछ देर चुप रहा, उसने फिर वही सवाल दुहराया।

"हां आता, तुम जहन्नुम में होतीं, फिर भी आता।" गुस्से से मेरे मुंह से निकला।

पर मेरे इस जवाब से वह खुश थी। उसने फिर कोई सवाल नहीं पूछा।

मुझे नहीं पता मैंने यह जवाब क्यों दिया था।

उस दिन इतवार था। कालेज नहीं जाना था। हम सब जैसे चाय पीने पास के ढाबे पर जाते थे, उस दिन भी गए। सिर्फ उस दिन फर्क यह था कि शीरीन हमारे साथ थी।

उस दिन हमने, चाय पीने के बाद, बाजार से एक स्टोव खरीदा, एक केतली और चाय की पत्ती भी खरीदी। यह शीरीन का कहना था कि हवेली में कम से कम चाय बनाने का कुछ सामान जरूर होना चाहिए था।

दोपहर तक कोई खास बात नहीं हुई। सब कुछ स्वाभाविक सा लग रहा था शीरीन, अशोक और विनी की तरह एक और दोस्त लग रही थी। उस दिन दोपहर का खाना भी हम सबने एक साथ खाया था। सिर्फ उसके बाद मैंने कहा था —माई डियर! अब हम जनगणमन गाए तब ही तुम होस्टल जाओगी?

उस वक्त वह चुप रही थी। सिर्फ जाते वक्त, मैं जब उसे बाहर तक छोड़ने गया, कहा था—आई होप यू विल आल्वेज वी माई फ्रेंड···इज्ज नाट इट?

"यू नो दि आन्सर।" मैं यह बात सिर्फ जवाब की खातिर नहीं कही थी, बिल्कुल इसी तरह महसूस किया था।

उस वक्त मुझे यह भी लगा था—अशोक और विनी को, या किसी को भी, मैं जितने अर्थों में दोस्त कहता था, यह शीरीन उससे कहीं अधिक अर्थों में थी।

"यू नो आई फील वैरी लोनली, आई मीन एलोन इन दि वर्ल्ड···" उसने हवेली के बाहर वाली दीवार के पास खड़े होकर कहा था।

पहले तो मैंने हंसकर, उसकी इस बात को, कुछ टाला था, "अच्छा थोड़ी-थोड़ी दोस्ती मेरे पास जमा करती जाओ, जब जरूरत पड़े ले लेना···"

"सेविंग अकाउंट की तरह?"

मुझे उसका जवाब अच्छा लगा। उसमें सैंस ऑव ह्यूमर थी।

"हां, सेविंग अकाउंट की तरह" मैंने कहा।

"मालूम है, सेविंग अकाउंट में ब्याज भी मिलता है? मूल रकम मेरी, पर ब्याज तुम्हें देना पड़ेगा?" उसने जवाब दिया।

"ओ माई गॉड! मुझे ब्याज देना पड़ेगा? फिर ऐसा कर करेंट अका खुलवा ले···"

"करेंट अकाउंट?"

"रकम उसमें भी सेफ होती है, सिर्फ ब्याज नहीं मिलती। बल्कि उलटा बैंक हर महीने कुछ लेता है···रकम वाले को रकम में से कटवाना पड़ता है···"

"रकम भी मेरी, और कटवाऊं भी मैं?

"बहुत थोड़ा-सा कटवाना पड़ता है। यह बैंक की उजरत होती है, रकम को संभाल कर रखने के लिए···"

"सो मेरी दोस्ती संभली रहेगी?"

"यह बैंक की गारण्टी?"

"चाहे जब निकलवाऊं?"

"चाहे जब।"

"चाहे दस साल बाद?"

"दस···बीस···भले ही पचास साल बाद···"

"और बैंक उजरत क्या लेगा?"

"बहुत थोड़ी···सिर्फ महीने में एकाध किस्त···।"

"यू आर ए रियल डेबिल···।"

उसकी सैंस ऑव ह्यूमर को मान गया था। पर लगा वह फिर कुछ सीरियस-होती जा रही थी।

"बस, तुम सीरियस मत हुआ करो!" मुझे कहना पड़ा।

"पर तुम सीरियस होने से घबराते क्यों हो?"

शीरीन ठीक कह रही थी। मुझे मालूम था मैं हर उस बात से घबराता था, जो सीरियस शब्द की तरफ जरा भी झुकती दिखाई देती थी।

मुझे लड़कियां अच्छी लगती थीं। सिर्फ शीरीन नहीं, और भी लड़कियां अच्छी लगती थीं। पर अन्दर कहीं यह पता था कि उनके बहुत नजदीक आकर भी, मैं कुछ दूरी पर ही रहता था। या यह—कि कुछ दूर ही मुझे खड़ा हो जाना चाहिए था, जैसे आगे कहीं कुछ खतरा हो···

स्कूल के दिनों में भी, मेरे साथ पढ़ती लड़कियों में से कुछ अच्छी लगती थीं, कालेज के शुरू के सालों में मिली लड़कियों में से भी कुछ अच्छी लगती थीं। पर यह अच्छा लगना—सिर्फ मजाक के अच्छे फिकरों तक ही रहता था, अधिक मेरे स्वभाव में शामिल नहीं होता था···

मैंने कभी किसी से कहा नहीं था—पर मेरे अन्दर अकेलेपन का एक अजीब एहसास था। अजीब से मेरा मतलब है वह नहीं जिससे उस अकेलेपन को तोड़ने को मन हो, बल्कि इस तरह का कि कहीं मेरा यह अकेलापन टूट न जाए।

अकेलापन जैसे 'मैं' था।

शीरीन का अकेलापन, मेरे अकेलापन जैसा नहीं था, पर उसे इसकी पहचान जरूर थी। पूछने लगी—"क्यों मेरा सवाल ठीक नहीं? तुम सीरियस बात से नहीं, सीरियस शब्द से भी चौंक उठते हो?"

मुझे मालूम था शीरीन ठीक रह रही थी।

मैं कुछ देर चुप रहा। सिर्फ शीरीन की तरफ देखता रहा। "सेंस ऑव इनसिक्योरिटी, आई सपोज।" मुझे मालूम था, मैं ये शब्द अपने खिलाफ कह रहा था, पर अगर ये शब्द जबान पर आ ही गये थे, तो इन्हें वापस गले से नीचे उतारना नहीं चाहता था।

शीरीन हंस पड़ी और कहने लगी—आई डांट थिंक सो।

शीरीन पर गुस्सा आया—अगर मैं ही अपने खिलाफ था, तो उसे मेरे हक में होने का क्या अधिकार था।··

"इसमें न मानने वाली कौन-सी वात है?" मुझे पूछना पड़ा।

"यह कि जितनी देर किसी को अपने आप पर बड़ा कान्फिडेन्स न हो, वह इस तरह की बात नहीं सोच सकता। सोच भी ले, तो कह नहीं सकता।" उसने जवाब दिया।

उसकी बात में दलील थी पर एक दलील को दूसरी दलील से काटा जा सकता है, इसलिए कहा—ए मैड मैन एण्ड ए जीनियस हैव मैनी थिंग्स इन कॉमन।"

शीरीन ने मेरी बात ऐसे सुनी, जैसे हंसने वाली न हो, गम्भीरता से सोचने वाली हो। फिर बड़ी स्वाभाविक-सी हो पूछने लगी—"तुम्हारा क्या ख्याल है कि तुम मैड हो या जीनियस?"

"मेरा ख्याल है, थोड़ा-थोड़ा दोनों हूं।" मैंने कहा।

"आई एग्री।" शीरीन ने कहा, तो मुझे लगा मैं कुछ हैरान हुआ था। शायद मैं इस जवाब की उम्मीद नहीं करता था। वही फिर कहने लगी, "इट इज ए गुड कॉबिनेशन।"

मैं चाहता तो बात को मजाक का मोड़ देकर खत्म कर सकता था, पर खत्म नहीं किया। मन में कुछ जिद-सी आ गई थी कि आज शीरीन को कुछ डिसइल्यूजन करूंगा। इसलिए बात का रुख बदला, कहा—असल में मेरी जिन्दगी में कुछ ऐसे हादसे हैं जिनका तुम्हें पता नहीं। पता हो तो तुम्हें शायद यह बात रोमांटिक न लगे।

"हो सकता है, फिर भी रोमांटिक लगे। रोमांस चीजों में नहीं होता, चीजों को देखने की अदा में होता है।" लगता था, आज शीरीन किसी तरह भी हार नहीं मानेगी।

मैंने सोचा यह था कि बात को सीरियस-सा मोड़ देकर छोड़ दूंगा। शीरीन हादसों की बात पूछेगी तो आगे डिटेल्स में नहीं जाऊंगा। बस मैं उसमें खौफ का अहसास-सा पैदा कर, बात खत्म कर दूंगा। पर उसने सवाल को मेरी आशा के अनुसार नहीं दुहराया, इसलिए कहना पड़ा—"असल में बचपन के दिनों की बड़ी अहमियत होती है, उन दिनों अगर कोई इनसिक्यूरिटी-सी महसूस करे, तो वह बड़ा होकर भी करता है···"

शीरीन ने कहा कुछ नहीं, सिर्फ बात सुनने की तसदीक में सिर हिलाया।

मैंने उसे जो कुछ बताया, यह पहली बार था, जब मैंने अपने मुंह से किसी को वह सब बताया, "मैं बहुत छोटा था, जब मेरी मां और मेरा बाप अलग-अलग रहने लगे···"

"वे बहुत लड़ते थे?" शीरीन ने, शायद पूरा फिकरा भी नहीं सुना था, कि पूछा।

"मैंने आज तक उन्हें कभी लड़ते हुए नहीं देखा। मेरा ख्याल है, उनमें से किसी को भी लड़ना नहीं आता—बोथ आर वैरी साफ्ट स्पीकिंग।"

"दैन ह्वाट इज रांग विद यू?"

शीरीन का सवाल अजीब था, उसके ख्याल में जैसे यह कोई बात ही नहीं थी। मैं चुप था, इसलिए उसी ने कहा—"तुम्हारी जगह मैं होती, तो मुझे जिन्दगी से कोई शिकवा न होता।"

जवाब में और क्या कह सकता था, यही कहा—"तुम मेरी जगह होकर देख लो। यह दिलेरी उतनी ही देर रहती है, जितनी देर यह जगह देखी न हो।"

वह हंस पड़ी। कहने लगी—"तुम्हें क्या पता मैंने खुदा के आगे कितनी बार प्रार्थना की होगी इस जगह होने के लिए। बहुत छोटी थी जब से सोचने लगी हूं कि मेरे मां-बाप, अगर एक-दूसरे की शक्ल नहीं बर्दाश्त कर सकते, तो फिर, खुदा की मार, वे साथ-साथ क्यों रहते हैं? मां को जब देखा है, रोते ही देखा है तुमने कभी मां को तड़प-तड़प कर रोते हुए देखा है?"

"नहीं," मैंने सचमुच कभी नहीं देखा था, इसलिए यही कह सकता था।

"तुमने बाप को मां के सामने, एक गैर औरत को लाते देखा है?"

"नहीं···"

मुझे लगा शीरीन अभी चीखकर रो पड़ेगी। पर वह रोई नहीं। उसने केवल इतना कहा—'यू डोंट नो हाऊ डिसगस्टिंग इट इज···"

मैंने शीरीन के कंधे पर हाथ रखा। इससे अधिक नहीं, केवल हाथ रखा। पहले कई बार डांस करते हुए मैंने उसके होंठ चूमे थे, आज और कुछ नहीं, केवल उसके कंधे पर हाथ रखा, पर लगा, आज जितनी निकटता मैंने पहले कभी नहीं देखी थी।

शीरीन ने अपनी गर्दन जरा-सी झुका दी, अपने उस कंधे की तरफ जहां मेरा हाथ था। और अपना सिर मेरी हथेली से छुआ दिया।

"वी विल बी फ्रैंड्ज···आलवेज़···" मैंने कहा, और मुझे लगा—वे शब्द मैंने पहली बार अपने मुंह से सुने थे। किसी के लिए भी पहली बार सुने थे।

"इकरार ?"

"इक़रार !"

"एक इकरार और !"

"क्या ?"

"दैट यू विल नेवर किस्स ?"

उसका सिर अभी भी मेरी हथेली पर टिका हुआ था, एक विश्वास के साथ। और शायद यह इकरार मांगने की आवश्यकता भी उसी विश्वास में से पैदा हुई थी, मैंने जवाब दिया, "अच्छा, यह इकरार भी।"

मैंने इस इकरार का कारण नहीं पूछा। उसी ने फिर कहा—"आई विल हैव टु मैरी दैट फैलो···एण्ड आई वांट टु बी फेथफुल टु हिम···"

"आई अंडरस्टैंड," कह दिया पर लगा यह कहने की भी जरूरत नहीं थी। उसे मुझ पर, मुझसे अधिक विश्वास था।

सिर्फ जब वह जाने लगी—सारी बात को स्वाभाविक-सा रूप देना आवश्यक लगा, क्योंकि जाते समय उसने बड़ी प्यासी नजरों से देखा था, जैसे अपने मांगे हुए इकरार पर वह खुश न हो।···

कहा—"वी श्योर दैट आई विल बी योर लेजिटिमेट फ्रैंड।"

"क्या मतलब ?"

"यही कि इकरार पूरा करूंगा, अगर पूरा नहीं करूंगा तो इल्लेजिटीमेट दोस्त बन जाऊंगा···"

दोस्त भी कानूनी और गैर-कानूनी हो सकता है, इस बात पर वह ऐसे हंसी कि सचमुच उसका स्वाभाविक रौ वापस आ गया···

7

फिश पौण्ड गेम चल रही थी···

यूनिवर्सिटी के हाल में हम कोई पच्चीस स्टुडैंट बैठे हुए थे। लड़कियों में से अधिक आर्ट क्लासिज की थीं, लड़कों में से अधिक आर्कीटैक्चर और इंजीनियरिंग के स्टुडैंट थे। गुमनाम चिटें स्टेज पर भेजी जा रही थीं, और फिर एक-एक का नाम लेकर एक-एक मजाक स्टेज पर से अनाउन्स हो रहा था। मोटी सुराज के आंसू निकल आये जिस समय स्टेज पर से कहा गया, सुराज बड़ी बहादुर लड़की है, किसी चीज से नहीं डरती, सिर्फ अपनी परछाइं से कभी डर जाती है, क्योंकि उसे परछाईं देखकर लगता है कि जैसे एक जिन्न उसका पीछा कर रहा हो।

मास्टर राणा, नेपाली लड़के का मुंह लाल हो गया था, जिस समय स्टेज पर से कहा गया—"अगर माटी राणा एक लड़की के साथ एक बैंच पर बैठा हो, बिजली फेल हो जाये, तो आशा है माटी राणा सारा वक्त फ्यूज का तार ढूंढ़ने में लगा देगा।"

राज़ गोयल का रंग बहुत गोरा था, पर सब नक्श बेतरतीब। उसका चेहरा बहुत ही उदास हो गया, जिस वक्त स्टेज पर से कहा गया—"हम राज गोयल को जीप के हादसे में से बच जाने पर मुबारकबाद देते हैं। उसे देखकर लगता है, उस हादसे में से और कोई नहीं बचा होगा, मुश्किल से वही बचा होगा।"

तारा चौधरी के दांत ऊंचे-नीचे थे। दांतों को सीधी पंक्ति में करने के लिए डाक्टर से सब दांतों पर तार लगवाया था। सारा हाल हंसी से गूंज उठा था, जिस वक्त स्टेज पर से कहा गया—"टैन कमांडमैंट्स, आल ब्रोकन।"

कई मजाक वास्तव में ही तीखे थे। मेरे बारे में भी था, मेरी गिटार को लेकर, कि मैंने "एक नए राग का आविष्कार किया है, जिसका नाम है राग साइलैंस और पता चला है कि लड़कियों को यह राग बहुत पसन्द आया है।"

रिक्की मेरे बाएं हाथ बैठी हुई थी, उसे अधिक नहीं जानता था, पर जिस वक्त उसका नाम लेकर मजाक किया गया, उसने नीचे का होंठ दांतों में काटते हुए, मेरा हाथ पकड़ लिया। मेरे ख्याल में वह मजाक खूबसूरत भी था, चुस्त भी। सुन रखा था कि रिक्की के मां-बाप बहुत सख्त तबियत हैं, हर बात हुक्म के अन्दाज में कहते हैं, इसलिए रिक्की को एक नए नाम की उपाधि दी गई थी—"मिस क्रेमलिन।" क्रेमलिन : रूस में जार का महल, जहां से आजकल पार्टी के फरमान जारी किए जाते हैं। पर रिक्की घबरा गई थी कि अगर यह बात उसके मां-बाप तक पहुंच गई···

पता नहीं इस गेम का नाम 'फिश पौंड' किसने रखा था। हर कोई एक-एक

मजाक की कुंडी में फंसा हुआ मछली की तरह तड़प रहा था। मुझे कभी भी इस गेम में विशेष दिलचस्पी नहीं हुई, किसी के बारे में कभी कोई गुमनाम चिट लिखकर नहीं भेजी, यानी हाथ में कोई कुंडी या डोरी नहीं पकड़ी, पर रिक्की ने जब मुलायम और ठण्डी-सी उंगलियों से मेरा हाथ पकड़ लिया मुझे लगा एक सुनहरी मछली मेरी हथेली पर आ गई थी।

हाथ में एक स्वाभाविक-सी हरकत आने लगी थी, रिक्की का हाथ भींच लेने की या हौले से पकड़ लेने की, पर नहीं आई—मैंने रोक ली थी। लगा था—मेरा हाथ उस कुंडी की तरह हो जायेगा, जो एक मछली को अपने में फंसा रहा हो। यह मुझे मंजूर नहीं था। मैं उसे उसके स्वतन्त्र रूप में देखना चाहता था। 'उसको' से मेरा मतलब उस मछली से है।

और इस तरह बेहिस पड़ा हुआ मेरा हाथ, मुझे तालाब का ही एक हिस्सा लगा, पानी में पड़ा हुआ, पानी का एक हिस्सा, जहां वह मछली आने के लिए भी स्वतन्त्र, जाने के लिए भी।

यह उस दिन की नहीं, उससे कोई दस दिन बाद की बात है, कि मिस क्रैमलिन आई थी। हमारी हवेली का, पता नहीं किस तरह, स्वयं ही एक नाम प्रसिद्ध हो गया था—शांति भवन। मालूम नहीं पहले यह किसे सूझा था, फिर किसने किसको बताया था, पर सब एकबारगी इस जगह को इसी नाम से बुलाने लगे थे। एक शाम मिस क्रैमलिन इसी शान्ति भवन में आई थी।

"सोशलाइजेशन के लिए आई हूं।" मुझे देखकर उसने सबसे पहली बात कही थी। हालांकि वह अकेली नहीं आई थी, उसके साथ उसकी कोई दो सहेलियां भी थीं फिर भी उसने यही कहा था।

मैं शायद चुप रहा था, उसी ने ही फिर कहा था—"डांट यू वैलकम दि आइडिया ?"

"पुराने जमाने में दहलीज पर तेल डालते थे।" मैं हंस पड़ा था, और कहा था—"यह वैलकम की निशानी होता था। तुम कहो तो तेल डाल दूं, तुम्हारे लिए नहीं, तुम्हारे आइडिया के लिए ?"

उस दिन पहली बार मैंने उसे खुलकर हंसते हुए देखा था।

"आई वांट टु लिसिन टु मंकीज।" उसने कहा, और मैंने हाल में मंकी-गीत का एक रिकार्ड लगा दिया। गीत मैंने अपनी पसन्द का लगाया था, "लव इज अण्डरस्टैंडिग···" पर यही गीत उसने बताया, उसकी पसन्द का था।

"इन दिस लिविंग टाइम
वी विल मेक दि वर्ल्ड टु शाइन"

और अगले मिनट हमने देखा—हम सब डांस कर रहे थे।

"तुम्हें पता है रिलेशनशिप दो तरह की होती है।" उसने डांस करते हुए

कहा था।

मुझे नहीं पता था, वह क्या कहना चाहती थी, इसलिए चुप रह गया।

उसी ने कहा था—"मोरेलिटी दो तरह के रिलेशनशिप में से बनती है। एक रिलेशन अथॉरिटी से होता है, मां-बाप से, सुपीरियर, एक्सटर्नल एवसोल्यूट और वियोंड कम्प्रीहेन्शन···" [एक रिश्ता अधिकार का होता है, जैसे मां-बाप का—ऊंचा, बाहरी, पूर्ण और समझ से परे।]

अब मुझे उसकी बातों में दिलचस्पी हो चली थी। रिकार्ड बहुत करीब बज रहा था, पर लगा वह दूर बैकग्राउंड में चला गया था, और उसकी आवाज मेरे नजदीक सरक आई थी।

वह कह रही थी, "और दूसरा रिलेशनशिप होता है ईक्वल से। इसमें मिस्टिक सुपीरियरिटी नहीं होती, इट इज कैपेबिल ऑ मॉजीफिकेशन ऐकार्डिंग टु दि नीड्ज़ आफ, पार्टीसिपैंट्स···" [दूसरा रिश्ता होता है बराबर वाले के साथ। इसमें वह रहस्यमय बड़प्पन नहीं होता, यह दोनों की जरूरतों के अनुसार बदल सकता है।]

"यू अंडरस्टैंड सो मच···" मैं कह रहा था, उसने बात काट दी, "पर मेरे समझे क्या बनेगा, मेरे मां-बाप नहीं समझते। हालांकि यह सीधी-सी बात है कि बच्चे की सोशलाइजेशन के लिए दोनों एसट्रीमली इंपॉर्टेन्ट होते हैं। तुम्हें मालूम है आज मैं झूठ बोलकर यहां आई हूं···?"

मिस क्रैमलिन के मां-बाप को मैंने देखा नहीं था, पर उनके बारे में सुन जरूर रखा था। और अब वह खुद बता रही थी, "मेरी उमर के किसी को वे मुझसे मिलने नहीं देते, इस कमी को वे चीजों से पूरा करना चाहते हैं!···"

"चीजों से ? क्या मतलब ?" मैंने पूछा।

"ठंडी बर्फ चीजों से···मसलन रॉ सिल्क के सूट से, फारेन कोट से, या गर्मियों में किसी पहाड़ पर ले जाकर···" वह हंस रही थी।

इस जैसी जलती हुई हंसी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी।

"आज मैं यह कहकर आई हूं कि कालेज में एक्स्ट्रा क्लास लगनी है···" जाते वक्त उसने बताया, और कहा, "तुम मेरे लिए झूठ बोलोगे ? शायद जरूरत नहीं पड़ेगी पर अगर पड़ी···"

"तुम यहां नहीं आई···मैं तुम्हें नहीं जानता···मैंने तुम्हें कभी देखा भी नहीं, मैंने तुम्हारा नाम भी कभी नहीं सुना···यही न ?" मैं कह रहा था, और हंस रहा था।

मिस क्रैमलिन इज अंडर हाउस अरैस्ट—यह खबर तीसरे दिन उनकी सहेली से सुनी थी।

8

हीरू के प्रति मेरे हाथों एक वेइन्साफी हो गई थी।

एक बार, बड़े दिन से पहले की बात थी, उसके मुंह से एक फिकरा निकला —हम सब एक ही खुदा के बेटे हैं।

मेरा ख्याल है कि उन दिनों वह कोई ऐसी किताब पढ़ रहा था, जिसके प्रभाव से उसने यह कहा था। हम जानते थे कि वह जिन दिनों जैसी किताब पढ़ रहा हो, वैसी ही सोच में ढल जाता था, जैसे जैली हर सांचे में ढल जाती है।

अपनी पहचान वह ऐसे ही ढूंढ़ता था—महात्मा बुद्ध पढ़ रहा हो तो किसी कुर्सी पर भी वह ऐसा चुप शान्त बैठता था जैसे कोई बौद्ध भिक्षु किसी पेड़ के नीचे बैठा हो। एक बार किसी ने उससे कह दिया कि उसकी शक्ल हालीवुड के एक्टर मारलिन ब्रैन्डों से मिलती है। उन दिनों उसकी हर हरकत देखने वाली थी—वह बड़े स्टाइल से खड़ा होता, और हौले से सिर को हिलाता था। यहां तक कि एक बार किसी बहस में गर्म होकर उसके दोस्त ने थप्पड़ मार दिया था, तो यह थप्पड़ भी उसने एक ऐसे खास अन्दाज से खाया था, जैसे अन्दाज में उसने एक एक्टर को एक फिल्म में थप्पड़ खाते देखा था। और मेरा ख्याल है—अपने आपको किसी के साथ आइडैंटीफाई करने के अपने स्वभाव के कारण उसने इम्तिहान के एक पर्चे में एक पक्षी का पिंजरा बनाते हुए एक सोने का कमरा और एक गुसलखाना भी बना दिया था। वह उस दिन अपने मन में अवश्य अपने आपको किसी चिड़िया या तोते के साथ आइडैंटीफाई कर रहा होगा।

यह पिंजरे और गुसलखाने वाली बात उन्हीं दिनों हुई थी। मैं मजाक करने के मूड में था, जब उसने कहा—हम सब खुदा के बेटे हैं, तो मेरे मुंह से निकल गया था, हम सब नहीं, हममें से कुछ खुदा के एडॉप्टेड बेटे भी हैं। बात यह है कि खुदा के अपने बेटे बहुत थे—पर सब अधिक जहीन नहीं थे। सो खुदा ने कुछ बहुत जहीन बच्चे चुनकर अपने बेटे बना लिए, मसलन तुम···

यह बात इतनी फैल गई कि हीरू का नाम मशहूर हो गया—एडाप्टेड सन आफ गॉड···

पर कुछ दिनों में ही मुझे लगने लगा, मैंने उसके साथ बेइंसाफी की है। लड़के उसे रुलाने की हद तक चिढ़ा देते थे। फिर जब तनवीर वाला हादसा हुआ, यह हीरू ही था जिसने तनवीर को प्रोफेसर वाली साजिश बताई थी (भले ही घबराइट के कारण बताई थी) पर मेरे मन पर उसके नाम के साथ चलाए मजाक का बोझ पड़ गया। बस मजाक का कर्ज उतारने के लिए मैं उसका दोस्त बन गया।

(यह दोस्ती शब्द केवल इतने अर्थों में है कि और कोई लड़का कभी गम्भीर होकर उसकी बात नहीं सुनता था, पर मैंने उसकी हर बात ऐसे सुननी शुरू की जैसे वह सचमुच सुनने वाली हो)। मेरी इस कोशिश को मेरी बद-दयानतदारी नहीं कहा जा सकता, भले ही इसमें एक बनावट शामिल थी। पर यह बनावट नेक-नीयत थी।

उसकी जरूरत भी शायद इतनी ही थी, कि कोई उसकी बात को ध्यान से सुने, सीरियसली ले। कम से कम उस पर हंसे नहीं। इतना मैंने कर लिए था। पर एक दिन कम्बख्त के हाथ में मैसमरेजिम की किताब आ गई। पढ़ता रहा और अपने स्वभावानुसार उसने किताब के हीरो के साथ खुद को आईडैन्टीफाई कर लिया, और सोचने लगा कि वह भी चाहे तो किसी को मैसमरेजिम के असर में लाकर बांध सकता···

अब सवाल यह था कि यह तजुरबा वह किस पर करे? कोई भी तैयार नहीं था।

"आई एम रियली डेसपेरेट"··एक दिन उसने मेरे पास आकर इस तरह कहा कि मुझे कहना पड़ा—"अच्छा तुम मुझ पर तजुरबा कर लो···"

"मैं जितनी देर कहूंगा, तुम मेरे सामने बैठोगे?"

"बैठूंगा!"

"मैं तुम्हारी तरफ स्टेयर करूंगा···"

"करो···"

उसने हाथ में पकड़ी हुई किताब के पन्ने पलटे, कुछ पन्ने फिर से पढ़े, और फिर मुझे सामने बिठाकर उसने अपना तजुरबा शुरू कर दिया।

मैं आराम से बैठा रहा। उसके कहे अनुसार मैं उसकी तरफ देख रहा था। मुझे आंखें झपकाने की छूट थी। इसलिए आराम में आंखें झपक लेता था। पर उसकी आंखें नहीं झपकती थीं, क्योंकि किताब में यही लिखा हुआ था, इसलिए वह पूरी तरह आंखें खोलकर बड़े ध्यान से मेरी तरफ देखता रहा···

माई गॉड! बेचारे की क्या हालत हो रही थी। आंखें थककर लाल हो चली थीं, और आंखों में पानी बहने लगा था···

"तुम्हें कुछ हो रहा है!" बीच-बीच में वह मुझसे पूछ लेता।

"नहीं।" मैं कह देता। कभी हंस भी पड़ता।

एक बार ख्याल आया—उसका मन रखने के लिए पूरी एक्टिंग शुरू कर दूं—पर लगा—कहीं यह उसके मन में कोई ऐसा बहम ही न डाल दे कि उसका मन सदा के लिए ऐसे तजुरबे में लग जाए। इसलिए नहीं कहा।

यह पता था कि इस तजुरबे में अगर वह सफल न हुआ तो उसे कुछ दिन इसकी तकलीफ होगी, पर उसने जब भी इस किताब का पीछा छोड़ दिया, यह

सब्जैक्ट भी उसे भूल जाएगा। फिर कोई नई किताब—नया हीरो और नई आइडैन्टीफिकेशन···

हीरू की खैर थी—पर उस लड़की का कोई क्या करे जिसे किसी की सूरत में अपने ड्रीम बॉय की सूरत दिखाई देने लगे—

मिस क्रैमलिन की बात सोचता था तो लगता था जैसे कोई किताब मैंने बीच में से पढ़नी आरम्भ की हो, और मुझे इसकी कुछ समझ न आ रही हो—वह बड़ी जहीन लड़की थी, उसके विचार को हीरू के विचार के साथ नहीं जोड़ना चाहता था, पर फिर भी रह-रहकर लगता था—उसने हीरू की आदत की तरह स्वयं को जूलियट से आइडैन्टीफाई कर लिया था, और मुझे रोमियो से···सिर्फ यह नहीं पता चलता था कि कितनी देर के लिए···

रोमियो और जूलियट दो दुश्मन घरानों के बच्चे थे, पर मैं और मिस क्रैमिलन—(मेरा ख्याल है मैं उसके असली नाम से ही उसकी बात करूं)—मैं और रिक्की दो अपरिचित घरानों के बच्चे थे, न दोस्ती का सवाल था, न दुश्मनी का। पर मालूम नहीं कैसे रिक्की के शान्ति भवन आने वाली बात उसके मां-बाप तक पहुंच गई थी और चाहे शान्ति भवन में जैसा मैं था, वैसे विनोद तथा अशोक थे, और हम तीनों के अतिरिक्त भूपी तथा अन्य कितने ही, शाम को अक्सर वहां रहने वाले लड़के थे, पर रिक्की के मां-बाप को मेरा नाम खास-तौर पर गौर करने वाला लगा था।

सो मैं, जो रोमियो नहीं था, रोमियो मान लिया गया था। रिक्की की तरफ से भी, और उसके मां-बाप की तरफ से भी। अन्तर केवल यह था कि रिक्की की तरफ यह चुनाव था—स्वाभाविक दोस्त की सूरत में। और उसके मां-बाप की तरफ से यह चुनाव था—स्वाभाविक दुश्मनी की सूरत में···

दोस्ती स्वाभाविक होती है, सिर्फ दुश्मनी को पहली बार स्वाभाविक देख रहा था···

लग रहा था अगर रोमियो और जूलियट के दो घरानों की दुश्मनी एक ऐतिहासिक घटना थी, तो रिक्की की मां-बाप की नजर में ऐसी हालत में दुश्मन का होना स्वाभाविक ही था···

सो मैं, मेरा नाम, मेरा अस्तित्व, इस स्वाभाविक दुश्मनी का निशाना थे। रिक्की के मां-बाप की तरफ से मुझे धमकी मिली थी कि मैं रिक्की से इस जन्म में कभी मिलने की कोशिश न करूं···

पता नहीं 'इस जन्म' शब्द का इस्तेमाल करने की उन्हें क्या जरूरत थी?

"शायद इसलिए कि उन्हें यह विश्वास न हो कि वे अगले जन्म में भी मेरे मां-बाप होंगे···" एक दिन रिक्की ने स्वयं मेरे इस सवाल का जवाब दिया था। कमबख्त हंस रही थी।

इस धमकी के बावजूद वह एक दिन फिर शान्ति भवन आ गई थी। 'अपने हाउस अरैस्ट' की बातें भी सुना रही थी, और हंस भी रही थी।

शान्ति भवन मुझे उस बिजली के खम्भे की तरह लग रहा था, जिस पर मैं खतरे के अलार्म की टिन प्लेट की तरह, एक भयानक खोपड़ी की शक्ल में होऊं···

यह मेरी नजर में नहीं था, रिक्की के मां-बाप की नजर में था, पर टिन प्लेट की खोपड़ी वाला अपना रूप मुझे सख्त नापसन्द था। इसलिए रिक्की से कहा, "तुम यह ख्वाहमख्वाह का खतरा क्यों मोल लेती हो ?"

"क्योंकि वह मुझ पर ख्वाहमख्वाह की सख्ती कर रहे हैं।" रिक्की ने जवाब दिया।

सो यह 'ख्वासमख्वाह' की 'ख्वाहमख्वाह' से लड़ाई थी···

"पर इसका हश्र क्या होगा ?"

"फिर इण्टैरोगेशन, फिर हाउस अरैस्ट, फिर सख्ती···"

"पर कितनी बार ? किस हद तक ?"

"शायद उस हद तक, जहां···" रिक्की कुछ चुप हो गई, फिर कहने लगी, "जिस हद तक कई थानों में होता है।"

लगा—रिक्की सिर्फ इतना ही नहीं कहना, चाहती थी, इससे आगे भी कुछ कहना चाहती थी। शायद, जिस हद तक थानों में होता है, उसकी तशरीह करना चाहती थी। मैं चुपचाप उसकी तरफ देखता रहा।

उसने तशरीह की, "तुम्हें मालूम है, थाने वाले कई बार अपने मुल्जिम को खुद ही तीसरी मंजिल से धक्का देकर मार देते हैं, और कह देते हैं, कि मुल्जिम ने अपनी मर्जी से आत्महत्या की है।"

मैं कांप-सा गया—धक्के और हत्या में जो अन्तर था, वह कहां नहीं था ? और वह क्यों किसी की पकड़ में नहीं आ रहा था ?···

"एक और हश्र भी हो सकता है।" रिक्की ने कुछ सोचकर कहा।

"क्या ?"

"कि अचानक वह किसी दिन, किसी को पकड़ कर मेरा विवाह कर दें। पर यह भी तीसरी मंजिल पर से धक्का देकर मार देने वाली बात है, क्यों नहीं ?"

मैं रिक्की के बहुत मुलायम, पर बड़े सख्त चेहरे की तरफ देखता रहा।

"एक और भी हो सकता है, "रिक्की ने फिर कुछ सोचकर कहा—

"क्या ?" मेरी आवाज शिथिल-सी हो गई—

"तनवीर वाला।"

"क्या ?" लगा मेरी आवाज चौंक गई थी।

"जैसे तनवीर जलावतन हुआ था, मैं भी हो सकती हूं।" रिक्की हंस पड़ी और कहने लगी, "टीचर भी मां-बाप जैसे होते हैं। मिस्टर जोसेफ की जिद टूटती नहीं थी, तनवीर को देश छोड़ना पड़ा, मेरे मां-बाप की जिद भी, मुझे पना है, टूटेगी नहीं..."

हॉल में मेरे दोस्त और रिक्की की सहेलियां रिकार्ड बजा रहे थे, और डांस कर रहे थे। रिक्की का जब से 'मिस क्रैमिलन' का नाम पड़ा था, लगभग तभी से उसकी एक सहेली का नाम 'मिस व्हाईट हाउस' पड़ गया था। यह 'फिश पौंड' गेम खेलते हुए नहीं पड़ा था, वैसे ही उसका अंग्रेजी के अमरीकन लहजे से पड़ गया था। वह 'मिस व्हाईट हाउस' अचानक धमाके-सी मेरे कमरे में आई और रिक्की की बांह पकड़ उसे उठाती हुई, मुझसे कहने लगी, "कम आन मिस्टर कपिल। यू सिली फिलासफर ! ज्वाइन अस !"

मैं और रिक्की, दोनों हाल में जाकर, डांस करने लगे...

"अगर मैं भी तनवीर की तरह चार सौ सत्तर रुपये जमा कर लूं, बम्बई से बसरे की टिकट ले सकती हूं," रिक्की ने मेरे साथ डांस करते हुए अचानक मुझसे कहा...

लगा—तनवीर वाला हश्र, कुछ-न-कुछ हम सबकी तकदीर था...

मिस्टर जोसेफ वाली जिद शायद सारी हवा में थी—कहीं मां-बाप की सूरत में, कहीं पूरी राजनीति की सूरत में...कौन था, जिसका कुछ हिस्सा, जलावतन नहीं था!...

रिक्की से केवल इतना भर कहना चाहता था—पूरी तरह जलावतन होना हर किसी के वश में नहीं होता। तनवीर मर्द था, रास्तों की धूल में अपने पांव मैले कर सकता था, पर तुम औरत हो... पर यह भी कोई कहने वाली बात थी, एक औरत से अधिक किसे इस बात का पता हो सकता था...

और सचमुच रिक्की को पता था, कहने लगी—"तुम मेरे साथ चलोगे ?"

जवाब में मैंने रिक्की के होंठ चूम लिए...

कितनी ही देर कुछ इस तरह लगता रहा—जैसे हम दोनों एक परदेशी जमीन पर खड़े थे, मीलों तक कोई जाना-पहचाना चेहरा नहीं था...किसी जगह रेत के ढेर थे, किसी जगह सिर्फ जंगल, किसी जगह सिर्फ पर्वत और किसी जगह सिर्फ वह नगर, जहां हमारे लिए सिर छुपाने की जगह नहीं थी...

रिक्की चलते-चलते थक गई थी, और मैं...

रिक्की भूख से बेहाल थी, और मैं...

रिक्की सर्दी के मारे कांप रही थी, और मैं...

रिक्की बुखार से बेहोश-सी थी, और मैं...

ओ माई गॉड ! मेरे पास मेरे अतिरिक्त, क्या था, जो मैं रिक्की को दे

सकता। और मैं—इस भूख, सर्दी और बुखार की दवा के लिए कितना नाकाफी था···

"अभी एकदम नहीं, जब तुम डिग्री ले लोगे···" रिक्की ने खुद ही कुछ समझा, और खुद ही कहा।

कुछ अच्छा नहीं लग रहा था, केवल रिक्की का विश्वास अच्छा लग रहा था। और जिसके कारण, कमरे में बजता गीत अच्छा लग रहा था—लेट अस सो दि अर्थ विद क्रेजी ड्रीम्ज़···

9

सिर्फ शीरीन नहीं, शीरीन की दोस्ती भी बड़ी सख्त जान थी···जिस पारसी लड़के के साथ शीरीन की मंगनी होनी थी, हो गई। मंगनी के बाद उसने सिर्फ एक एतराज किया कि शीरीन मुझसे न मिला करे। पर शीरीन का एक ही जवाब था, मुझे ठीक और गलत की पहचान है। कपिल की दोस्ती मुझे उतनी ही ठीक लगती है, जितनी तुम्हारे साथ मगनी। तुम मुझ पर कोई ऐसी शर्त मत लगाओ कि मुझे तुम्हारे साथ अपनी मंगनी गलत लगने लगे··

सो शीरीन पर किसी का लगाया हुआ कोई बन्धन नहीं था। वह अपनी मंगनी के बाद भी उसी तरह मिलने आती थी, जैसे मंगनी से पहले। रिक्की उसे अच्छी लगी थी, पर रिक्की का अपने बाप की सख्ती के आगे झुक जाना उसे अच्छा नहीं लग रहा था। एक दिन, वह मुझे भी बताए बिना, रिक्की के घर मिलने चली गई।

वापस आई तो खीझी हुई थी—उसकी खीझ शायद सिर्फ रिक्की पर नहीं थी, रिक्की के गिर्द लपेटे हुए उस जाले पर भी थी, जिसमें फंसी हुई रिक्की, रोए जाती थी, और अपनी जान तोड़े जाती थी।

कोई बात नहीं करती, हर बात के जवाब में रोए जाती है, और कहे जाती है—"माई ईडियट फादर विल नेवर अण्डरस्टैंड" शीरीन ने मुझे बताया और यह भी बताया कि पिछली बार जब वह आई थी, उसके बाप ने उसके पीछे एक नौकर भेजकर पता कर लिया था कि वह कितनी देर वहां ठहरी थी···

'बाप' शब्द के साथ ईडियट शब्द जोड़ना, साधारण-सी घटना नहीं···

इस शब्द पर संस्कारों के बड़े सख्त दबाव होते हैं—लोहे के पंजों की तरह। और इस शब्द को लोहे के पंजों में से निकालकर मुहब्बत या नफरत के असली रूप में देखना बहुत कठिन है। शीरीन के मुंह से रिक्की के मन की हालत सुनकर बेचैनी का अजीब अहसास हुआ···

पता था—यह केवल बाप के लिए नहीं, बाप को जिस माहौल ने जिस तरह का बनाया है, यह शब्द उसके लिए है, और यह शब्द, रोष और घृणा की जिन जड़ों में से उगा है, वे जड़ें केवल एक रिश्ते या एक घर की सीमाओं तक सीमित नहीं, वे सारे सामाजिक ढांचे की मिट्टी में फैली हुई हैं···

किसी भी गलत ढांचे से रोष या घृणा, स्वयं में जीवन की निशानी है, सदा रही है, जिन्दा डंक की तरह। पर इसके डंक को वर्षों सीने में छुपाए रहकर, कोई बिरला ही साबुत रह सका है। प्रायः समझौते की शक्ल में, आदमी इसकी पीड़ा से मुक्ति ढूंढ निकालता है। या फिर इसकी पीड़ा से टूटकर, बड़ी असन्तुलित-सी आदतों में, कहीं पनाह ढूंढ़ने लग जाता है···

मैं परेशान था—रिक्की का क्या होगा? नफरत सिर को जहर बनकर भी चढ़ती है, और जहर से जहर को काटने वाली दवा बनकर भी मिलती है···

रिक्की को देख नहीं सकता था, कुछ पूछ नहीं सकता था, कुछ कह नहीं सकता था, इसलिए केवल सोचे जा रहा था···

विनोद भी परेशान था। बड़ी कठिनाई से कुछ पैसे जमा कर उसने अपनी पेंटिंग्ज का वन-मैन शो किया था, पर उसकी गुमनामी की कोठरी में उसी तरह अन्धेरा रहा था। कहीं कोई चर्चा नहीं थी।

"अरेंज्ड पब्लिसिटी, आई हेट इट···" विनोद कड़वे थूक की तरह, इस शब्द को थूकता रहा था, या गले के नीचे उतारता रहा था, पर इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता था।

अचानक उसको एक क्रेजी आइडिया आया। उसने फिर एक आर्ट-गैलरी बुक करवाई। इस बार सारा इन्तजाम अकेले ने किया। हमसे, अपने करीबी दोस्तों से भी, न पैसों की मदद ली, न चित्रों को चुनने-चुनाने में।

गैलरी के बाहर एक बहुत बड़ा पोस्टर लगाया—'रियली रियलिस्टिक पेंटिंग्ज'। गैलरी को वह हर समय ताला लगाए रखता था। उसका कहना था—इस बार वह दोस्तों, दुश्मनों, सबको एक सरप्राइज देगा। गैलरी का ताला, उसे सिर्फ उस समय खोलना था, जिस वक्त, नुमाइश की ओपनिंग का समय, उसने पोस्टर में लिखा हुआ था।

समय हुआ। हम सब दोस्त भी, नुमाइश देखने आए बाक़ी लोगों की तरह दरवाजे के बाहर खड़े थे। विनोद ने घड़ी देखी और फिर एलान किए हुए समय के अनुसार, गैलरी का ताला खोल दिया।

ओ ख़ुदाया···

एक जगह लिखा हुआ था 'पोर्ट्रेट ऑव ए कैट' और उसके नीचे एक बिल्ली

को मारकर कील से टांगा हुआ था।

एक जगह लिखा हुआ था 'पोर्ट्रेट ऑव ए माउस' और उसके नीचे एक चूहे को मारकर कील से टांगा हुआ था।

और इसी तरह—कबूतर···कौआ···चिड़िया···

कई जगह—सिर्फ एक कील थी, एक कैंची, एक चाकू, या पेन्सिल, ब्रुश या इसी तरह की कोई दूसरी चीज। और हर एक पर एक-एक टाइटिल था···

मैंने घबराकर उससे मजाक किया—"ह्वाट अबाऊट दि सैल्फ पोर्ट्रेट?"

"वह आखिरी आइटम होगा," विनोद हंस दिया, और कहने लगा—"उससे पहले एक और बहुत जरूरी आइटम रहता है। पोर्ट्रेट ऑव एन ईडियट क्रिटिक।"

मैं कांप-सा गया—वही शब्द···रिक्की वाला 'ईडियट फादर···'

अगर कहीं तनवीर यहां होता, मुझे लगा, तो वह विनोद को 'पोर्ट्रेट ऑव एन ईडियट टीचर' बनाने के लिए जरूर कहता।

लगा—अलग-अलग दिख रहे हर टाइटिल के पीछे सिर्फ एक ही टाइटिल था 'दि ईडिएट सिस्टम'···

तनवीर न मालूम कहां था, रिक्की पता होते हुए भी पता नहीं कहां थी, सिर्फ विनोद सामने था—मैंने उसके गिर्द बांहें लपेटकर एक बार उसे बांहों में लिया और सिर्फ गैलरी के बाहर उन सड़कों पर आ गया, जो कहीं से चलकर कहीं नहीं पहुंचतीं···

10

मिस ह्वाइट हाउस आई थी, रिक्की की सहेली। उसकी जबानी सिर्फ यह पता लगा कि रिक्की को बहुत पीटा गया था। पर कई दिनों की लगातार पिटाई के बाद भी जब वह टूटी नहीं थी, तो उसके बाप ने सब हथियार छोड़कर एक दिन उससे पूछा था, "तुम्हें कपिल पसन्द है? तुम उससे मिलना चाहती हो?" और जवाब में जब रिक्की ने हां की थी, तो उसके बाप ने एक आखिरी हथियार पकड़ लिया था, "फिर मेरे और कपिल में से जिसको मर्जी चुन लो," और रिक्की चुप की चुप रह गई थी···

यह सब कुछ सुनकर बोला नहीं गया। मैं भी शायद रिक्की की तरह चुप का चुप रह गया था···

हीरु उस समय मेरे पास बैठा था, सिर्फ वह बोला, "इजण्ट ही ए परवर्ट?"

एक लड़के की दोस्ती में और एक बाप के रिश्ते में भला क्या मुकाबला होता

है ? दोनों को एक सतह पर रखकर, एक को छोड़ने का, और दूसरे को चुनने का सवाल भी कोई सवाल है ? हीरू जैसा पागल लड़का भी इसे 'परवर्शन' कह सकता था, पर मुझ में यह कहने की भी शक्ति नहीं रह गई थी···

चुप था, चुप हूं···

जिन दिनों की यह बात है—उन दिनों हमारे इम्तिहान हो रहे थे। मैंने बहुत सोचा था कि रिक्की को न सोचूं। कम अज कम इम्तिहान के दिनों में न सोचूं। वैसे भी मैंने कभी रिक्की को अपनी जिन्दगी से नहीं जोड़ा था—अपना-आप हमेशा ख्वाहमखवाह का रोमियो बना लगता रहा था—और रिक्की का अपने बाप की सख्ती को सहन करना मुझे कभी इतना अपने लिए मुश्किल नहीं लगा था, जितना उसके लिए,···तो भी मैं परेशान था, और रिक्की को सोचे जा रहा था।

उस दिन हमारी टेक्नीकल ड्राइंग का पेपर था—मुझे कुछ पता नहीं कि मैंने वह पेपर कैसा किया—सिर्फ शाम को जब मेरे साथ पढ़ते फोर्थ ईयर के कुछ लड़के बड़े फिक्रमन्द से लगे—मैं भी अपने पेपर के बारे में सोचने लगा। वे मुझसे भी मेरे पेपर के बारे में पूछ रहे थे—पर मैं कुछ ऐसी हालत में था कि उन्हें कुछ बताने के पहले, मुझे यही कुछ खुद से पूछना पड़ रहा था···

पेपर शाम को हुआ था—तीन बजे से छः बजे तक, और यह पता था कि चाहे एग्जामिनेशन हाल में इस समय ताला लगा हुआ था, पर सबके पेपर उसी तरह सबकी मेजों पर पड़े हुए थे। बहुत-से लड़के जब एक-दूसरे से पूछ-ताछकर चले गए, तो दो लड़के मेरे पास बैठे रहे। मेरे दोस्त नहीं थे, सिर्फ वाकिफ थे। उन दोनों को कुछ ज्यादा ही फिक्र थी, कुछ सवाल वे वैसे के वैसे छोड़ आए थे।

"अगर कभी सिर्फ एक घण्टे के लिए, आधे घण्टे के लिए, हमारे पेपर हमारे हाथ लग जाएं···" वे दोनों कहे जा रहे थे, और मुझ से पेपर के बारे में पूछे जा रहे थे।

मैं अपने पेपर के बारे में कुछ भी नहीं बता सकता था, मुझे खुद पता नहीं था।

"मुश्किल यह है कि हाल तीसरी मंजिल पर है।" एक ने कहा।

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि अगर हाल पहली मंजिल पर भी होता तो क्या फर्क पड़ता···

"समझे नहीं ?" दूसरे ने कहा।

"नहीं···"

"दरवाजा भी बन्द है और खिड़कियां भी, पर रोशनदान खुले हैं···अगर किसी रोशनदान में से लांघकर सिर्फ आधे घण्टे के लिए हम अपने पर्चे ला सकें···" एक ने कहा—"जेब में बैटरी ले जाई जा सकती है या दियासलाई की

तीली जलाकर अपना रोल नम्बर देखा जा सकता है और फिर आधे घण्टे बाद उसी तरह पर्चे वहां वापस रखे जा सकते हैं…"

"टू रिस्की…" यही लगा था कह दिया।

"रिस्की नहीं, एक कोई पाइप के सहारे चढ़ जायेगा, दो नीचे दूर पर खड़े रहेंगे।" दोनों ने मुझे समझाया, "अगर कोई उधर से गुजरने लगा, तो नीचे खड़े होने वाले किसी बहाने थोड़ा दूर ही उसे रोक लेंगे…सिर्फ मुश्किल यह है कि हम दोनों में से किसी को पाइप पर चढ़ना नहीं आता…"

"फिर!" मैंने पूछा।

"तुम्हें जिमनास्टिक आती है—तुम अगर पाइप पर चढ़ जाओ…" उन्होंने कहा…

मैं कुछ देर सोचता रहा। मेरा पेपर भी शायद अच्छा नहीं हुआ था, कुछ ऐसा ही, इम्प्रैशन था। पता नहीं यह मन का डिप्रेशन था कि अपने पेपर का सच-मुच कुछ लोभ-सा जाग पड़ा। मैं मान गया।

हम तीनों काफी देर तक इमारत के पिछले हिस्से वाले बगीचे में घूमते रहे। जब लगा कि उस तरफ से लोगों का आना-जाना खत्म हो गया है, तो वे दोनों लड़के दोनों मोड़ों की तरफ जाकर खड़े हो गए। मेरे सारे बदन पर पसीना आ रहा था—खास कर माथे पर। पर कह चुका था, अब पाइप पर चढ़ना था…

नीमहोशी-सी में पाइप की चढ़ाई भी खत्म की, रोशनदान में से अन्दर छलांग भी मारी, माचिस की तीली जलाकर तीनों रोल नम्बर भी ढूंढ़े, तीनों पेपर भी कमीज के बटन खोलकर कमीज के अन्दर रखे और फिर उसी तरह वापस भी आया…

वे दोनों लड़के होस्टल के एक ही कमरे में रहते थे। मैं होस्टल में नहीं था, इसलिए अपने पेपर को लेकर अपनी हवेली के कमरे में जाना था, या उन लड़कों के कमरे में। उनके पेपर उन्हें देकर मैं अपनी हवेली के कमरे की तरफ चल पड़ा…

फिर पता नहीं क्यों—अपना पेपर लेकर अपने कमरे में जाने को मन नहीं हुआ। मैं हवेली तक गया भी, पर कमरे में नहीं। हवेली के बाहर वाले बगीचे में घूमता रहा…

पेपर को एक बार खोलकर देखा भी नहीं…

पता नहीं कितना समय गुजर गया, शायद आधा घण्टा ही हुआ होगा, या कुछ ज्यादा, वे दोनों लड़के मुझे ढूंढ़ते मेरे पास आ गए। अब सारे पेपर फिर वापस रखने थे…

पेपरों को वापस, उसी हाल की उन्हीं मेजों पर रखने का सिलसिला भी उसी तरह बिना किसी अड़चन के हो गया, जिस तरह निकालते वक्त हुआ था…

यह सब कुछ मैं किस तरह कर गया, मुझे कुछ समझ नहीं आया···

अपना पेपर अगर इतना खतरा मोल लेकर लाया ही था, तो उसे फिर खोल-कर, उसमें कुछ भी लिखने को उत्साह क्यों नहीं रहा था, इसको मैं कभी नहीं समझ सका···

यह एक खतरनाक हरकत थी, मैं कर गया था। पर जब पेपर हाथ में था, उसे खोलने की, और उसमें कुछ लिखने की, बड़ी मामूली-सी हरकत थी, पर वह नहीं हुई···यह क्या था?

क्या यह भी भीतर की किसी खामोशी की कोई सूरत थी?

वे दोनों लड़के बहुत खुश थे। मेरे अहसानमन्द भी। पर उन्हें भी मैंने यह बात नहीं बताई। बताने को मन नहीं हुआ। न मालूम यह कैसी खामोशी थी···

11

चुप था, चुप हूं···

लगता है—यह चुप कभी नहीं टूटेगी! न इसे मैं तोड़ सका हूं, न वक्त तोड़ सका है···

वक्त ने और बहुत कुछ तोड़ा है—मसलन शान्ति भवन, जिसकी जगह उससे अगले साल ही इन्कमटैक्स की एक सरकारी इमारत बनने लगी थी···(इन्कमटैक्स की बन रही इमारत को देखकर एक दिन विनोद ने कहा था—जहां जिन्दगी को न कमाने का मौका हो, न खर्चने का, वहां सांसों पर टैक्स लगना चाहिए। लोगों की सांसों में से रोज कुछ सांसें निकालकर हुकूमत के बुत में डाल देनी चाहिए···)

और वक्त ने विनोद को भी तोड़ा है—पिछले एक वर्ष से विनोद पागलखाने में है···(एक बार मैं उससे मिलने गया था, उसने मुझे पहचाना नहीं था, पर मैंने उसे गाते हुए सुना था 'आई एम. दि बैस्ट क्रिएशन ऑव गॉड, ब्लैस्ड विद हॉरर एण्ड मिज़री···')

तनवीर के बारे में खबर मिली थी कि वह खुफिया राजनीतिक पार्टी में शामिल हो गया था, और विदेशी हथियारों की स्मगलिंग के जुर्म में, पुलिस के हाथों जखमी होकर पकड़ा गया और अब किसी जेलखाने में है।

अशोक अजीब तरह से टूट गया है—तकरीबन हर सरकारी इमारत पर कुछ मोजेक बनाने का ठेका उसे मिलता है, जिसके लिए सरकारी अफसरों को रिश्वत देने की उसकी दरें निश्चित हैं। अब वह पेंट नहीं करता। कई छोटे

कारीगर अपने मातहत रखे हुए हैं, और स्वयं केवल सरकारी दफ्तरों से सम्बन्ध बनाए रखने का प्रबन्ध करता है···

शीरीन बड़ी सख्त जान है। उसे विवाह करना था किया, पर उसका खाविन्द उसे अंडरस्टैंडिंग जैसा कुछ नहीं दे सका जिसकी उसे सबसे ज्यादा जरूरत थी, और जिसकी वह हकदार थी। उसकी एक छोटी-सी बच्ची है, और खुद वह किसी स्कूल में नौकरी करती है। विवाह अभी भी साबुत दिखाई देता है, पर वह रोज जैसे उसे, जहां से भी उधड़ता है, टांके लगा कर सीती रहती है···एक बार फ्रांस के बारे में कही हुई किसी की एक बात कहीं पढ़ी थी, 'फ्रांस हैज बीन कांकर्ड बट नाट डिफीटेड' शीरीन के बारे में भी कुछ ऐसा ही है—वह टूटी है पर हारी नहीं···

मेरा अगर वक्त ने कुछ और नहीं तोड़ा, तो उमर का एक टुकड़ा अवश्य तोड़ दिया है, और रोज तोड़े, जा रहा है···पढ़ाई के साल पूरे करने के बाद डिग्री मिल गई थी, एक छोटी-सी नौकरी भी। और घड़ी की सुइयों की तरह मैं, घर से दफ्तर, दफ्तर से घर घूमता हूं, और रोज एक दायरे में घूमे जाता हूं···

और रिक्की ?

रिक्की मिली थी। किसी खत या खबर की तरह नहीं, प्रत्यक्ष।

कुछ दिनों से खत आ रहे थे कि मेरी नानी उदास थी, कुछ बीमार भी। मां कह रही थी कि मैं गाड़ी में जाकर, गांव नानी से मिल आऊं या उसे साथ ले आऊं (पढ़ाई खत्म कर, वापस मां के पास आने पर मां ने—एक बहुत नई तो नहीं, पर एक गाड़ी खरीद कर मुझे दी थी।) मैं सुबह-सुबह, जब पहर भर अंधेरा था, अपने शहर से चल पड़ा था। एयर लाइन के दफ्तर के साथ एक पेट्रोल पम्प था, जहां से गाड़ी की टंकी भरवा रहा था, कि एयर लाइन के दफ्तर के आगे, हवाई अड्डे से आकर जो बस खड़ी हुई, उसमें से रिक्की उतरी···

रिक्की ने मुझे देखा, मैंने रिक्की को···

ध्यान नहीं, पर नजर उधर से हटाना चाहता था, कि रिक्की मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

बस में से उतरे, और उतर रहे सब लोग, मुझे रिक्की के साथ जुड़ी हुई परछाइयों की तरह लग रहे थे—पता नहीं इनमें से कौन था जो अभी रिक्की की बांह पकड़ उसे दूर ले जाने वाला था···इसलिए मैं परछाइयों की ओर देखता रहा, बोला नहीं गया।

"मैं अकेली हूं, मेरे साथ कोई नहीं," रिक्की ने कहा। उसने मेरी चुप को शायद समझ लिया था···

रिक्की का एक सूटकेस बस में था। रिक्की को अपना सूटकेस लेना था, 'एक मिनट,' कहकर जब वह मुड़ी और सूटकेस ले आई, मैं उसका सूटकेस अपनी

गाड़ी में रखते हुए पहली बार बोला : "चलो, तुम्हें जहां जाना है, छोड़ आऊं।"

रिक्की ने कहा कुछ नहीं, गाड़ी में मेरे बाईं ओर बैठ गई। गाड़ी के स्टीयरिंग पर हाथ रख कर, जब सामने शीशे में से बाहर वाली सड़क को देखा—पता नहीं लग रहा था, यह किस शहर की कौन-सी सड़क थी···

एक्सीलरेटर पर पांव रखा, गाड़ी सामने की तरफ बढ़ी और फिर सामने सड़क खत्म हो गई···

कहीं मुड़ना था—बाएं या दाएं, इसलिए रिक्की से पूछा, "गाड़ी को किधर मोड़ूं ?"

"जिधर जी चाहे," रिक्की ने ऐसे कहा, जैसे वही एक स्वाभाविक जवाब था।

"जिधर भी मोड़ूं, उधर ही तुम्हारा घर होगा ?" मुझे हंसी-सी आई।

रिक्की हंसी नहीं, कहने लगी, "जिधर मोड़ोगे, उधर ही घर नहीं होगा।"

अपना पांव एक्सीलरेटर पर रखने की जगह, लगा—मैंने अपने ख्यालों पर रख लिया था, और वे बड़े तेज, पता नहीं किधर को, जा रहे थे···

"तुम इतनी सुबह कहां जा रहे थे ?"

"शहर से कोई सौ मील दूर, अपनी नानी के गांव···"

"फिर गाड़ी चलाए जाओ, खड़ी किसलिए की है !"

"तुम मेरे साथ चलोगी ?"

"हां !"

मैं गाड़ी उस सड़क पर ले आया, जो शहर से बाहर जाती थी, पर सोच रहा था, अभी नहीं तो जरा ठहर कर, रिक्की, गाड़ी को शहर की तरफ घुमाने के लिए कहेगी।

रिक्की ने कुछ नहीं कहा।

थोड़ी देर बाद ही मुझे कहना पड़ा, "गांव से वापस आने तक रात हो जाएगी, यहां पीछे कोई तुम्हारा इन्तजार कर रहा होगा···"

यहां कोई नहीं। सिर्फ पासपोर्ट बनवाने के लिए इस शहर आई थी। पासपोर्ट आज न सही, कल बनवा लूंगी।"

यह सारा दिन कैसे बीतेगा यह अचानक मुझे क्यों और कैसे मिला था··· किसलिए मिला था···कुछ समझ नहीं आ रहा था···

यह दिन, ऐसे लग रहा था, जैसे सड़क पर चलते-चलते, अचानक सड़क पर से, कोई कीमती चीज मिल गई हो···और वह कीमती चीज, अपनी लगने की जगह, हाथों में बेगानी-सी लग रही हो, कि आदमी वह चीज उसके असली मालिक को लौटाने के लिए, उसे ढूंढ़ने निकल पड़ा हो···

"तुम्हें पता है—मेरी शादी हो गयी है," रिक्की ने अचानक बताया।

"अन्दाजा था, पर पता नहीं था···"

"वह आजकल इंग्लैंड में हैं, इसलिए इंग्लैंड जाना है" रिक्की ने बताया, और फिर हंसने लगी, "तुम्हें याद है एक बार मैंने चार सौ सत्तर रुपये जमा कर बंबई से किश्ती में बसरा जाने की बात कही थी···"

मैं रिक्की को कुछ भी याद नहीं दिलाना चाहता था इसलिए बात का जवाब नहीं दिया।

"भूल गये हो ?" रिक्की ने फिर कहा।

"नहीं," मुझे कहना पड़ा।

"चार सौ सत्तर रुपये मेरे टिकट थे, और चार सौ सत्तर रुपये तुम्हारे टिकट के···" कम्बख्त रिक्की ने फिर कहा।

जवाब में हंसने की कोशिश की।

अब चाहे मेरे पास कितने भी पैसे हों, और चाहे तुम्हारे पास भी बहुत पैसे हों, पर वह चार सौ सत्तर रुपये किसी के पास नहीं हो सकते···" रिक्की कह रही थी, और मैं सोच रहा था कि रिक्की कभी इस तरह जजबाती नहीं होती थी।

"एक और खबर भी तुम्हें सुनानी है···" अचानक फिर रिक्की ने कहा।

"क्या ?"

"कि मेरा एक बच्चा भी है, एक लड़का। उसे तीन-चार दिनों के लिए पीछे अपने मां-बाप के पास छोड़ आई हूं···"

बच्चा कितना बड़ा था, उसका क्या नाम था, और बच्चे का बाप कैसा था, क्या करता था, यह विवाह रिक्की की मर्जी से हुआ था कि नहीं, कितनी ही बातें थीं रिक्की से पूछना चाहता था, पर रिक्की ने सब कुछ एक ही बार में अखबार की खबरों की तरह सुनाकर, फिर कह दिया—"इट हैज नो रिपीट वैल्यू, लैट अस टाक समथिंग एल्स···"

फिर और बातें करने की जगह, हम चुप-से हो गये। यह और क्या था—जो बातों की पकड़ में नहीं आ रहा था—पर था।

इसी 'और' को थोड़ा-सा पकड़ने की रिक्की ने फिर कोशिश की, "मेरे और मेरे बाप में से किसी एक को हारना था, सो वह नहीं, मैं हारी हूं। अगर मैं नहीं, वह हारता, तो भी शायद सुखकर न होता। अब वह खुश है, मां खुश है, सब खुश हैं।

"तुम ?"

"जिन्दगी के सब आराम हैं, क्यों, जाहिर नहीं ?"

"जाहिर है !"

"फिर आज का दिन···अभी अचानक, यह एक दिन, मुझे अपनी जिन्दगी में

स चुराने का मौका मिला है, और मैंने इसकी चोरी कर ली है। इतनी जल्दी से कि तुमने भी इसकी जरूरत नहीं पूछी। इसका मतलब—मुझे कहीं, किसी जगह, इसकी बड़ी जरूरत थी। क्यों, जाहिर नहीं?"

"जाहिर है," मैंने कहा, पर सोच रहा था—यह जाहिर क्या है? जो सीधी तरफ से भी वही है, और उल्टी तरफ से भी वही···

पता नहीं कितने मील गाड़ी के पहियों के नीचे से गुजर गए थे, काफी दिन चढ़ आया था—जिस वक्त ख्याल आया—रिक्की ने कुछ खाया नहीं था। मैं सुबह बड़ी जल्दी निकल आया था, पर चाय पीकर चला था। मां ने गाड़ी में भी कुछ फल, बिस्कुट और थर्मस में चाय डाल कर रख दी थी, इसलिए रिक्की को कुछ खाने के लिए कहा।

रिक्की ने थर्मस में से लेकर चाय पी, मेरे लिए भी डाली, और चाय देते हुए कहते लगी—"लास्ट राइड टु गैदर···"

"फर्स्ट राइड टु गैदर"—मैंने जवाब में कहा। यह सचमुच पहला सफर था, इससे पहले मैं और रिक्की कभी एक छोटी-सी सड़क पर भी साथ-साथ नहीं चले थे। पर रिक्की जो कह रही थी, वह भी सच था। इसके बाद हमें कब कहां जाना था।

और फिर अचानक पक्की सड़क से कच्चा रास्ता अलग होता दिखाई दिया—जो मेरी नानी के गांव की तरफ जाता था, और जिसके एक किनारे पर लकड़ी का एक खम्भा लगा हुआ था, जिसकी तख्ती पर लिखा हुआ था—फतहगढ़।

कच्चे रास्ते पर धूल थी। गाड़ी बहुत आहिस्ता कर ली थी, पर धूल के गुब्बार-से उठकर आंखों के आगे फैल रहे थे। रिक्की की ओर वाला शीशा बन्द करते हुए मैंने उससे मजाक किया, "बम्बई बेड़ी में बैठकर हम बसरे जाते तो आगे कुवैत आता, वहां सिर्फ रेत ही रेत है, वहां ऐसे ही रेत के गुब्बार उठते···"

"वहां मैं हर वक्त थर्मस में पानी डालकर रखती, और तुम्हें थोड़ी-थोड़ी देर बाद पानी पिलाती रहती···" रिक्की हंस दी।

"और फिर तुम इस सब कुछ से कितने दिनों में ऊब जातीं?" मैंने पूछा।

"ऐसे ही मुंहजबानी कुछ कहने से क्या होता है," रिक्की ने कहा तो लगा शायद रिक्की ने बात को टाला था···

"अब कोई सबूत नहीं हो सकता, इसलिए मुंहजबानी ही सही," मैंने फिर कहा, शायद ख्वाहमख्वाह बात को खींच रहा था···

"सबूत हो सकता है," रिक्की ने कहा, तो कुछ हैरान-सी हुई। पूछा, "वह कैसे?"

"अभी, यहां से, किसी रेगिस्तान को गाड़ी मोड़ लो, चाहे कुवैत की रेत हो,

और चाहे कहीं की…" रिक्की ने एक ही सांस में कहा। मेरी सांस कुछ गर्म-सी हो गई, और कह गया, "पहले रास्ते में सिर्फ बाप था, अब…"

"अब तीन लोग! एक मेरा बाप, एक मेरा पति, एक मेरा बच्चा। पर कपिल! जो एक बार नहीं होता, तुम्हारा क्या ख्याल है, वह कभी नहीं होता? क्या पता मेरी एक बार की हार ने मुझे क्या कर दिया हो, कि मैं उससे तीन-गुना मुश्किलों के सामने…" रिक्की के आगे के शब्द उसके गले में भीग गए लगे।

बात हंसी से शुरू हुई थी, पर पता नहीं किस समय कौन-सा मोड़ मुड़ गई थी।

रिक्की कह रही थी, "अभी मैंने कहा था 'लास्ट राइड टु गैंदर,' पर तुमने कहा था 'फर्स्ट राइड टु गैंदर'—तुम इसे सचमुच फर्स्ट राइड नहीं बना सकते?"

"यू आर रियली मैड," मैंने जवाब दिया, और अपना बायां बाजू, अपने पास बैठी रिक्की के कन्धों पर रख दिया।

"तुम्हें याद है—आखिरी दिन, आखिरी बार, जब हमने डांस किया था, उस दिन, रिकार्ड का कौन-सा गीत था?" रिक्की ने मेरी बांह पर सिर टिका दिया, और वह गीत गुनगुनाया, "लैट अस सो दि अर्थ विद क्रेजी ड्रीम्ज…"

"पर रिक्की इस धरती में गीत नहीं उगते।"

उस समय मेरे मन में—मेरे सामने—न मैं था, न रिक्की, न रिक्की का कोई बाप या पति, सिर्फ रिक्की का बच्चा था, जिसे मैंने कभी देखा नहीं था…

नहीं, वह बच्चा मैं स्वयं था…

मेरे मां-बाप, जब एक-दूसरे से अलग हुए थे, मैंने वह बच्चा देखा था…

मैं अब बड़ा हो गया था, मर्द बन गया था, पर वह बच्चा मुझे अभी भी याद था…

और उसी बच्चे जैसा रिक्की का बच्चा था…

मैंने जिस बच्चे को हर समय सहमते, डरते और रात को कम्बल में मुंह छिपाकर रोते हुए देखा था, उस बच्चे की शक्ल भी रिक्की के बच्चे जैसी थी…

नहीं…नहीं…मैं रिक्की के बच्चे की शक्ल उस बच्चे जैसी नहीं होने दूंगा…

मैंने रिक्की के कन्धों पर से अपना बाजू उठा लिया। मन हुआ—अगर रिक्की का बच्चा इस वक्त यहां हो, मैं जोर से उसे अपने सीने से चिपका लूं, और उसका मुंह चूमकर उससे कहूं—मैं तुझे कुछ नहीं दे सकता, पर मैं तुझसे कुछ छीनूंगा नहीं…

धूल के गुब्बार आंखों के आगे उड़ते रहे। रिक्की ने फिर अपना चुप और उदास मुंह मेरे कन्धे पर रख दिया था। रिक्की उदास थी, मैं उदास था, पर मेरा

ख्याल है—उस वक्त कहीं दूर किसी पालने में पड़ा हुआ एक बच्चा हंस रहा था…

गाड़ी के शीशे बन्द थे, पर गर्द फिर भी हमारे कपड़ों पर पड़ रही थी। कपड़ों पर से कुछ मिट्टी झाड़ते हुए, अपनी और रिक्की की उदासी को भी झाड़ना था—इसलिए हंसकर कहा, "इस जगह का नाम किसी ने फतहगढ़ क्यों रखा? शायद इसलिए कि बहुत सारी मिट्टी को फतह करके जाना पड़ता है—"

"इस फतह शब्द के जाने क्या अर्थ हैं?" रिक्की को कुछ याद आया, और कहने लगी, "मोड़ वाली तख्ती पर जिस वक्त मैंने फतहगढ़ लिखा हुआ देखा था, तब से सोचे जा रही थी कि इसके क्या अर्थ हुए। अजीब स्पैलिंग थे—पी एच ए टी ई एच।"

"बिल्कुल नहीं, मैंने खुद तख्ती पर लिखा हुआ यह नाम पढ़ा था—एफ ए टी ई एच," मैंने कहा। मुझे अच्छी तरह याद था कि यही स्पैलिंग थे।

"बिल्कुल नहीं," रिक्की ने इन्कार किया, और पूछा, "रही शर्त?"

"शर्त—जो तुम कहो," मैंने जवाब दिया। मुझे विश्वास था कि मैं ठीक हूं।

रिक्की को भी विश्वास था कि यह ठीक थी, सिर्फ वह कोई बहुत बड़ी शर्त सोच रही थी।

"तुम जो शर्त कहो," मैंने अपने शब्दों को दुहराया।

"अच्छा फिर—" रिक्की चमक-सी उठी, और कहने लगी, "अगर मैं जीत जाऊं तो यह फर्स्ट राइड, अगर मैं हार जाऊं तो लास्ट राइड।"

"मंजूर।"

"मंजूर का मतलब सोच लिया है?"

"जो भी मतलब हो, मंजूर"

"चाहे यही हो कि यहां से सीधे किसी रेगिस्तान में जाना पड़े—!"

मैं हंसने लगा।

"इजण्ट इट ए क्रेजी ड्रीम?" रिक्की भी हंस पड़ी।

नानी के गांव पहुंचने की जल्दी से भी ज्यादा हम दोनों को अपनी शर्त का हस्र देखने की जल्दी थी। इसलिए गाड़ी को पीछे घुमा लिया।

वही कच्चा रास्ता, वही धूल के गुब्बार, पर आखिर वह रास्ता खत्म होना था, हो गया। और पक्की सड़क के बगल में लगा हुआ वह लकड़ी का खम्भा आ गया, जिसके किनारे पर लगी हुई तख्ती पर 'फतहगढ़' लिखा हुआ था।

एफ ए टी ई एच—मैंने अपनी आंखों से पढ़ा, और हंसकर रिक्की का हाथ अपने हाथ में दबाया और कहा—सो इट इज़ दि लास्ट राउड, अवर फेट—

सड़क पर से उड़ती हुई धूल, जैसे सिर्फ मटमैले रंग की नहीं थी, पीले जर्द रंग की भी थी—रिक्की का मुंह एकदम जर्द हो गया।

"ओ गॉड···" रिक्की ने पहले ध्यान से तख्ती की तरफ देखा, फिर हाथ की हथेली से तख्ती के शब्दों को ऐसे छुआ, जैसे उसे शक हो कि अभी-अभी कोई अदृश्य हाथों से तख्ती पर लिखे नाम के स्पैलिंग बदल गया था, और जिसकी गीली स्याही को यह हाथों के पोरों से देख सकती थी···

"पर यह हुआ क्या···कैसे हुआ···" रिक्की मुझसे बात करती हुई तख्ती की तरफ देखे जा रही थी, जैसे उसे विश्वास हो कि उस तख्ती ने अवश्य ही उसके साथ कोई धोखा किया था।

"सो मैं एक बार फिर हार गई···" रिक्की इतना मुझे नहीं जितना खद को कह रही लगती थी। उसकी आवाज बुझी-सी हो गई थी, कि मुझे एक बार पछतावा हुआ कि रिक्की के साथ मैंने यह शर्त क्यों लगाई थी। अगर लगाई थी तो मैं हार क्यों नहीं गया···

रिक्की से अपना हाथ तख्ती पर से उठाया नहीं जा रहा था, वह जैसे उसे कन्धों से हिलाकर और झंझोड़कर पूछ रही हो—यह तुझे क्या हुआ? मैंने खुद अपनी आंखों से तुम्हें पढ़ा था···तुम एक झूठे गवाह की तरह फिर गईं···

और फिर तख्ती से बातें-सी कर रही रिक्की का ध्यान उसी तख्ती की दूसरी तरफ गया—यहां भी फतहगढ़ लिखा हुआ था, पर—पी एच ए टी ई एच।

"कपिल! देख!" रिक्की हैरानी से भर उठी, "मैंने तुम्हें कहा था कि मैंने खुद अपनी आंखों से देखा था···"

सो रिक्की गलत नहीं थी···

मन की कोई पीड़ा कभी गलत नहीं होती···

मैं भी जिन्दगी की एक तल्ख हकीकत की तरह सच था, एक बहुत बड़ी दलील की तरह सच था···

पर हम दोनों जीतकर भी नहीं जीते थे···

यह तख्ती सिर्फ एक खेल थी, पर क्या यह जिन्दगी के उस अजीब ढांचे का प्रतीक नहीं थी, जो हर तरफ से अलग दिखाई देता था, पर जिसे जो कोई जिस तरह से देखता है, उसी को सच्चाई मान लेता है···

बस यह रिक्की से आखिरी मुलाकात थी। उस दिन शर्त जीतकर भी न जीतने में दुपहर हो गई थी। नानी के गांव फिर दूसरे या तीसरे दिन जाने का ख्याल करके, मैं वहीं से रिक्की को लेकर शहर लौट आया था। दूसरे या तीसरे दिन उसका पासपोर्ट बन गया होगा, और वह अपने बच्चे को उसके बाप के पास ले गई होगी, बस इस अनुमान से अधिक कुछ पता नहीं···

अनुमान···

लगता है— मेरी और रिक्की की जिन्दगी सदा एक शब्द के गिर्द घूमती रही है···

उस दिन जब 'फिश पौंड' गेम खेला जा रहा था, रिक्की का नाम 'मिस कैमिलन' रखा गया था, तो घबराकर रिक्की को किसी का हाथ पकड़ना था— मेरा पकड़ लिया। कुछ सोचकर नहीं, वैसे ही अनुमान से···

रिक्की जब मां-बाप की सख्ती से घबराई थी, किसी में विश्वास की उसे बड़ी आवश्यकता थी—इस विश्वास के लिए उसने मुझे चुना था, मेरा कुछ जान सुन-कर नहीं, वैसे ही अनुमान से···

रिक्की के अन्दर जब एक दिन बगावत जल उठी थी, उसने तनवीर की तरह जलावतन होना सोचा था, तो उन रेतीली राहों के लिए उसने मुझको सोच लिया था, जैसे अपने आपको। पता नहीं क्यों ?—शायद यही अनुमान उसकी और मेरी तकदीर था···

रिक्की को बगावत नहीं रास आ सकती थी, इसलिए वह चुप हो गई। पर चुप का जो दर्द होता है, उसने आधा-आधा कर लिया, और अपने हिस्से का अपने पास रखकर, मेरे हिस्से का मुझे भेज दिया। उसने भी अनुमान से भेजा था, मैंने भी अनुमान से कबूल कर लिया···वह अनुमान क्या है···

हम राह चलते मिले थे—सड़कों पर। पर लगता है—आदमी नहीं चलता, सिर्फ सड़कें चलती हैं। मैं और रिक्की वही के वहीं खड़े हैं, पर सड़कें कहीं-की-कहीं पहुंच गयी हैं···

अब जब एक दिन, एक सड़क के पास से गुजरी, मैंने रिक्की को देखा, रिक्की ने मुझे, तो दोनों को लगा—हम वहीं-के-वहीं खड़े हैं···

रिक्की नें फिर अपना हाथ बढ़ाया, मैंने फिर उसका हाथ पकड़ा, पर इतने में सड़कें फिर तेजी से चलने लगी थीं। और अब अपनी सड़क पर खड़े हुए, मुझे कहीं दूर-दूर भी रिक्की की सड़क दिखाई नहीं देती···

उस दिन—जब फतहगढ़ से लौटकर, फिर वापस शहर आकर, रिक्की को एक होटल में छोड़ा था, तो रिक्की ने अचानक कहा था—"कपिल ! तुम कुछ बोलते क्यों नहीं ? कभी कुछ नहीं कहते···"

जवाब दिया था, "तुम्हें 'फिश पौंड' गेम वाला दिन याद है ?"

"याद है।" उसने कहा था।

और मैंने बताया, "उस दिन जब तुम एक मजाक की कुंडी में फंसी हुई, एक मछली की तरह तड़प उठी थीं, उसने अचानक मेरा हाथ पकड़ा था। उस समय मुझे लगा था—जैसे अचानक एक सुनहरी मछली मेरी हथेली पर आ गयी हो···"

रिक्की हंस दी, पूछने लगी, "फिर और क्या लगा था ?"

बताया, "मेरे हाथ में एक हरकत आने लगी थी—तुम्हारा हाथ पकड़ लेने

की, पर वह हरकत मैंने रोक ली थी।"

"क्यों ?" रिक्की ने पूछा।

जो उस दिन मुझे लगा था, मैंने रिक्की को कभी नहीं बताया था, अब इतने दिनों बाद बताया, "मुझे लगा था, अगर मैंने तुम्हारा हाथ इस तरह पकड़ लिया, तो अपना हाथ मुझे उसी कुंडी की तरह लगेगा, जो एक मछली को अपने में फंसा रहा हो··· यह मुझे मंज़ूर नहीं था···"

रिक्की मेरे कन्धे के पास खड़ी थी, इतनी पास कि कभी-कभी उसकी सांस मेरे कन्धे को छू जाती थी। उस दिन वाली बात सुनकर, उसने पता नहीं कैसी सांस ली—कि वह एक सांस मेरे कन्धे में से गुजरकर मेरी बांह में फैल गयी। सारी बांह गर्म-सी हो गयी···

"फिर कपिल ?" रिक्की ने ही याद दिलाया—कि उस दिन वाली बात अभी और भी सुनानी बाकी थी···

"कुछ नहीं" मैं पूरा नहीं, पर थोड़ा-सा खोया-पाया था। यह दिन भी शायद उस बहुत पुराने दिन का एक और हिस्सा था—उसका बाकी रह गया हिस्सा, पर मोमबत्ती के आखिरी हिस्से की तरह और भड़का हुआ···उस दिन सिर्फ हाथ में हरकत आने लगी थी—रिक्की का हाथ पकड़ लेने की। पर आज एक हरकत थी, जो मेरे अंग-अंग में आना चाहती थी···

पर जिस ख्याल को लेकर रिक्की को पहली बार देखा था—वह ख्याल भी मेरे अंग-अंग का हिस्सा था। उसी ख्याल ने मेरे अंग-अंग पर पानी का एक छिड़काव सा किया—और मैंने कहा, "उस दिन तुम्हारे पतले और मुलायम से हाथ के नीचे शिथिल पड़ा हुआ मेरा हाथ, मुझे तालाब का ही एक हिस्सा लगा था—पानी में पड़ा हुआ पानी का एक हिस्सा। और मैंने सोचा था—जहां तुम एक मछली की तरह आने के लिए भी स्वतंत्र थीं और जाने के लिए भी···"

"ओ खुदाया"···रिक्की ने कहा, और एकटक मेरी तरफ देखने लगी।

मैं शायद जवाब में हंस पड़ा था, "अगर मैं मछली पकड़ने वाली एक कुंडी बन जाता, तुम्हें अच्छा लगता ?"

"नहीं कपिल ! तुम पानी का सरोवर हो, वही रहो !" रिक्की ने जवाब दिया और कहा, "यही तुम्हारी खूबसूरती का राज है और शायद इसी से मुझे इश्क है। पर मुझे बताओ कि उस मछली का क्या बने, जिसे न इस पानी में आने की स्वतंत्रता हो, न जाने की···"

जवाब में मेरी आंखें बन्द-सी हो गईं - सामने रिक्की का वह सवाल था, जिसका मेरे पास कोई जवाब नहीं था। न मेरे पास, न रिक्की के पास, न किसी और के पास···

"तुम्हें मालूम है—एक दिन मैंने तुम्हें एक बहुत लम्बा खत लिखा था···"

रिक्की ने अचानक कहा।

"फिर···"

"मैं अपने कमरे में थी—खत की सतरों में डूबी हुई—न जाने तुम्हें क्या-क्या बता रही थी, और तुमसे क्या-क्या पूछ रही थी—कि अचानक कानों में आवाज पड़ी—कमरे के बाहर, मेरे दरवाजे के आगे, मेरा बाप पहरेदार की तरह घूम रहा था—पन्द्रह-बीस फुट के बरामदे में, कभी बाईं तरफ से दाईं तरफ, कभी दाईं तरफ से बाईं तरफ···

"फिर?"

"उसके पाव में पता नहीं कैसे बूट थे—आवाज लगातार चल रही थी—मुझे लगा जैसे मेरा खत जमीन पर बिछा हुआ था, और वह एक-एक शब्द को पांवों से रौंदे जा रहा था···"

रिक्की ने बहुत थककर एक गहरी सांस ली, कहने लगी, "मैंने खत को फाड़ा ही नहीं, उसका पुर्जा-पुर्जा चुनकर गुसलखाने में ले गई···क्यों कपिल ! उसे किसी के बूटों के नीचे कुचले जाते देखने से, अपने हाथों पानी में बहा देना अच्छा नहीं था? मुझे पता था कि वह तुम्हारे तक पहुंचने से पहले जरूर उन बूटों के नीचे आ जाएगा···मैं जब सोई हुई थी, या गुसलखाने में गयी होती थी, तब मेरे कमरे की एक-एक चीज को उलट-पलटकर देखा जाता था—"

"काश—चीजें उलट-पलटकर देखने वाले किसी के सपनों को भी देख सकते···" रिक्की से कहने लगा था पर कहा नहीं। लगा उसे इसका मुझसे भी ज्यादा पता था···

बस यही कुछ अनुमान थे, जो हमारे हिस्से में आए थे—मेरे हिस्से भी और रिक्की के भी···

और शायद आगे भी—जब उम्रों की सड़कें चलते-चलते, कहीं-से-कहीं पहुंच जाएंगी, हम इस एक शब्द 'अनुमान' के गिर्द घूमते रहेंगे···या हम खड़े रहेंगे और यह शब्द हमारे गिर्द घूमता रहेगा···

12

मेरे साथ कुछ अजीब घटता रहता है, रोज नहीं, अक्सर, पर ठीक उस वक्त जब रात आधी बीत चुकी होती है, और आधी बीतने वाली

एक कमरा, जिसमें दो चारपाइयां और एक पालना···एक चारपाई पर मेरी मां सोई हुई, एक चारपाई पर मेरा बाप, और मैं पालने में से उतरकर कभी एक चारपाई की तरफ जाता हूं, कभी दूसरी की तरफ···अपनी छोटी-सी हवेली से

कभी सोई हुई मां के मुंह को टटोलता हूं, कभी दूसरी चारपाई की तरफ लौट, सोये हुए बाप के मुंह को···दोनों में से कोई नहीं जागता··· और फिर एक बार जब मां की चारपाई की तरफ से लौटकर अपने बाप की चारपाई की तरफ देखता हूं···तो वहां कोई चारपाई नहीं होती···मैं बिलखकर रो उठता हूं···मां जाग पड़ती है और मुझे जल्दी से फर्श पर से उठा लेती है···

चौबीस-पच्चीस साल की उम्र तक आधी रात के इस सपने से मैं इतना वाकिफ हो चुका था कि इसे अपना 'मिडनाइट विज़न' कहकर खुद से मजाक कर रहा था···

अपनी मां और अपने बाप में हुए तलाक का कारण मुझे कभी समझ में नहीं आया था (मैं अक्सर मां के पास रहता हूं, पर कभी, जब जी चाहे, कुछ दिन बाप के पास भी रह आता हूं। दोनों में से कभी किसी ने, किसी के खिलाफ कुछ नहीं कहा। दोनों के बीच एक चुप की बर्फ जमी हुई लगती थी···) इसलिए मैंने भी धीरे-धीरे इस चुप को कबूल कर लिया था। इसके कारण को समझने का ख्याल छोड़ दिया था। सिर्फ कभी-कभी आधी रात को आने वाला यह सपना था, जिससे मैं सोच लेता था कि मेरे अवचेतन मन में अभी भी कुछ था, जिसने मेरे मां-बाप को अलहदगी को स्वीकारने से इन्कार कर रखा था···

यह जो आधी रात को कभी-कभी घटता था, सुखकर नहीं था, पर यह कोई ऐसा रहस्य भी नहीं था, जिसे मैं समझ नहीं सकता था···

पर यह अभी, कुछ दिनों से, न समझने वाला बन गया है···

इस मिडनाइट विज़न ने शक्लें बदल ली हैं···

वैसा ही एक कमरा होता है, उसी तरह उस कमरे में दो चारपाइयां और एक पालना···पर एक चारपाई पर रिक्की सोई हुई होती है, और दूसरी चारपाई पर रिक्की का पति (जिसे मैंने देखा नहीं) और पालने में रिक्की का बच्चा (जिस बच्चे को मैंने कभी नहीं देखा)···और फिर वह बच्चा पालने में से उतरकर कभी एक चारपाई की तरफ जाता है, कभी दूसरी की तरफ···और फिर अपनी छोटी-सी हथेली से कभी सोई हुई मां के मुंह को टटोलता है, कभी सोये हुए बाप के मुंह को ···दोनों में से कोई नहीं जागता···और फिर कमरे में से दोनों चारपाइयां अदृश्य हो जाती हैं···और वह बच्चा खाली कमरे में बिलखकर रो उठता है···

अजीब मिस्ट्री है···पर शायद ट्रांसपेरेंट मिस्ट्री···

सोचता हूं—रिक्की के बच्चे का मुंह सोचकर जब मैंने उसे दिलासा-सा दिया था, "मैं तुझे कुछ नहीं दे सकता, पर मैं तुमसे कुछ छीनूंगा नहीं···" क्या मैंने सचमुच उसकी किस्मत को कहीं, किसी जगह से, कुछ बचाया था ?

शायद अपने जैसा होने से बचाया था, पर क्या उसका, मेरे जैसा न होना ही, उसका बचाव है ?

क्या किसी दर्द का नाम बदल देने से दर्द दूर हो जाता है ? क्या कोई आदमी सिर्फ तभी गैरहाजिर होता है जब वह एक कमरे में से उठकर दूसरे कमरे में चला जाता है ? क्या वह उसी जगह पर, उसी तरह बैठा हुआ, गैरहाजिर नहीं होता ?

कभी-कभी कुछ बातें अजीब तरह याद आती हैं। अजीब इसलिए कि वे हूबहू उस तरह भी दिखाई देती हैं, जैसी थीं, और कुछ इस तरह भी जैसे मैं एक जानी-पहचानी चीज को किसी नये कोण से देख रहा होऊं, और उसकी खूबसूरती मुझ पर एक वह प्रभाव डाल रही हो जिससे मैं पहले परिचित नहीं था। यहां खूबसूरती शब्द जरूरी नहीं, इसे बड़ी आसानी से बदसूरती भी कहा जा सकता है।···

और यह सब कुछ एक बेतरतीबी में याद आता है···या शायद एक उस तरतीब में, जो हर बेतरतीबी की निचली तह में होती है···दिन में सिलसिलेवार घटी घटनाओं को रात को सपने में बड़ी उलट-पुलट हालत में देखने की तरह··· और या आलमारी में तहाकर और बड़े करीने से रखे हुए, उन कपड़ों की तरह, जो इस वक्त गुच्छा होकर धोबी की भट्टी में पड़े हुए हों और जहां किसी पैंट पर कोई तौलिया लिपटा हुआ हो···किसी कमीज की बांह पर जांघिया पड़ा हो···या किसी जांघिये पर कोई सिरहाने का गिलाफ···

याद आ रहा है—जिन दिनों हमारी भुतहा हवेली, यानी हमारा शांति भवन गिराया जा रहा था—उन दिनों हम हेनरी मिलर की एक किताब पढ़ रहे थे, और अजीब इत्तफाक था कि उस किताब में कुछ आर्टिस्टों के वे तंग घर गिराये जा रहे थे, जहां बैठकर वे पैंट किया करते थे, और वहां उन घरों की जगह एक खूबसूरत मार्केट बनने वाला था, जिसकी कल्पना करते हुए मिलर ने एक पंक्ति लिखी थी—

देअर विल बी नियोन-लिट शॉप विंडोज़ टू इन्स्पायर दि आर्टिस्ट टु पेंट, आर मोर लाइकली, परसुएड हिम टू कमिट सुसाइड···

उस समय यह पंक्ति, हम सबको लगा था, कि हमारे लिए है। हम तीनों को भी जो वहां रहते थे, और उन सबको भी, जिनकी वह शामगाह थी। उस वक्त किसी को किसी के हश्र का पता नहीं था, पर यह पंक्ति जैसे हवा में लटक रही थी···

मैं यह नहीं सोचता कि हवेली के हश्र के साथ किसी के भी हश्र का कोई सम्बन्ध था, फिर भी यह पंक्ति जितनी तब सच लगती थी, उससे अधिक अब सच लगती है···

शायद यह अपने अर्थों के छोटे-से घेरे में से बाहर निकल आई है, और बहुत बड़े फैलाव में दाखिल हो गई है···दुनिया के हर शहर की नई इमारतें, नई रोशन खिड़कियां और उनमें चमकने वाली रोज की नई चीजें, और आदमी का जीना

और भी मुश्किल, और भी मुश्किल, और भी मुश्किल···

—जितने नए एयरपोर्ट उतने नए पागलखाने···

आज पागल हीरू की एक बात याद आई है—एक बार हम बहुत-से लड़के एन० सी० सी० की ट्रेनिंग लेने के लिए गए हुए थे, वहां एक कैम्प के बाहर वे बाल्टियां पड़ी हुई थीं, जिन पर बड़े मोटे और लाल अक्षरों में लिखा हुआ था—फायर! हीरू ने जेब से एक सिगरेट निकालकर एक बाल्टी के अक्षरों से लगाई, कई बार सांस खींची, पर सिगरेट न जली। और हीरू हैरान होकर हम सबसे कह रहा था—अजीब बात है, यह आग अगर सिगरेट भी नहीं जला सकती, तो और क्या जलाएगी···

हम सब उसे देखकर, हंसने लगे थे···

पर आज सोचता हूं—क्या समाज का और सभ्यता का यह सारा फैलाव, आग की असली लपट की जगह, सिर्फ मोटे और लाल रंग में लिखे हुए आग के अक्षर की तरह नहीं, जिससे छुआकर हम कुछ भी नहीं जला सकते ?

हीरू अजीब फनी क्रिएचर था— उन दिनों देश के राष्ट्रपति की मृत्यु हुई थी, नये राष्ट्रपति के चुनाव में समय लगना था, इसलिए बीच के खाली दिनों को भरने के लिए कोई एक्टिंग प्रेजीडेंट बना था—अखबारों की यह ताजा खबर हीरू के दिमाग में पता नहीं कैसे छाई हुई थी कि उन्हीं दिनों जब रूबी की मां गुजर गई, हम सब दोस्त रूबी के पिता के पास अफसोस करने गए, तो जाते हुए रास्ते में बात हुई थी कि रूबी के पिता को जल्दी ही एक और विवाह करना पड़ेगा, क्योंकि उसके तीन बच्चे अभी बहुत छोटे थे, और उन्हें संभालने वाला कोई नहीं था, और हीरू ने वहां पहुंचकर, बड़ा अफसोस करने के बाद यह कह दिया—अंकल! छोटे बच्चों की खातिर आपको विवाह तो करना ही पड़ेगा, पर जब तक नहीं करते, तब तक कोई 'एक्टिंग वाइफ' रख लीजिए एक्टिंग प्रेजिडेंट की तरह···

हम सब शर्मिन्दा हो गए थे, सोच रहे थे—अगर हमें मालूम होता कि हीरू ऐसी बदतमीजी करेगा, तो हम हीरू को साथ न लाते···

पर आज यह बात याद आई है तो लगता है—हीरू ने कुछ भी गलत नहीं कहा था···

किसी का कोई रिश्ता अपनी असली शक्ल में कहां है ? अपने पूरे अधिकार से ? और अपनी पूरी आवश्यकता से ? और हमेशा के लिए सारी जगह रोककर बैठा हुआ ?

रूबी का एक कजिन था, शायद उसका नाम सुनील था। उसे अपने बाप से बहुत बड़ी शिकायत यह थी कि उसने उसकी मां के होते हुए, एक और औरत से नाजायज सम्बन्ध रखे हुए थे, पर जिस दिन उसके बाप की मौत हुई, उसी दिन

उस 'और औरत' ने जहर खा लिया था। वह कम्बखत एक दिन भी बिना उसके जिन्दा नहीं रह सकी थी, जिसके साथ उसका रिश्ता भी जायज नहीं था···यह नाजायज कैसा जायज था? हम दूर खड़े रहकर यह सब खबर सुनने वाले भी उतने ही परेशान हुए थे, जितना खुद सुनील···वह भी यह सब कुछ सोचता रह गया था··· .

यह सब कुछ—धोबी की भट्टी में गुच्छा होकर पड़े हुए कपड़ों की तरह··· पर फर्क यह है कि वे कपड़े कुछ देर के बाद भट्टी में से निकल आते हैं, और तह होकर फिर करीने से रखे जाते हैं—और यह सब कुछ पता नहीं किस भट्टी में पड़ गया है, कभी बाहर नहीं निकलता···

यह हमारा जीने का कुछ हक था, हमारे सपने—जो किसी मां ने, किसी बाप ने, किसी महबूब ने, या विवाह संस्था बनाने वाले किसी ने, या सामाजिक ढांचा बनाने वाले किसी ने, या राजनैतिक ढांचा बनाने वाले किसी ने—एक धोबी की तरह हमसे लिए थे कि वह इन्हें धो बनाकर, और हमारे गले में पहनने लायक बनाकर, हमें लौटा देगा···पर सबका सब कुछ गुच्छा होकर पता नहीं कैसी भट्टी में जा पड़ा है, जो बाहर नहीं निकलता···

और अपने सपनों के बिना हम सब ऐसे शर्मिन्दा से बैठे हुए हैं, जैसे कोई तन के कपड़ों के बिना बैठा हुआ हो···

कुछ दिन पहले शीरीन ने एक पत्र लिखा था, "कपिल! कभी लगता है कि लिखने के लिए बहुत कुछ है, पर कभी लगता है कि लिखने के लिए कुछ भी नहीं रहा···देश में रुपये की डिवैल्युएशन हो गई है, लेकिन यह अब की बात है, बहुत थोड़े दिनों की। पर मैं तुम्हें एक बहुत पुरानी बात सुनाऊं। पता नहीं कब की, पर तब की जब सपनों की डिवैल्युएशन हुई थी···ख्यालों की डिवैल्युएशन हुई थी, और इन्सान के माथे पर आने वाले पसीने की डिवैल्युएशन हुई थी···और कपिल! बहुत चीजें हैं—जिनकी डिवैल्युएशन हुई थी—पोयट्री की, पेंटिंग की, फूलों की, और होंठों की, सांसों की···"

कम्बख्त शीरीन···

शीरीन मेरी कुछ भी नहीं, पर लगता है, शीरीन मेरी दुखती रग है···और शायद सिर्फ मेरी नहीं, मेरे जैसे हर इन्सान की दुखती रग है··

हर कोई—जब छाती में बहुत-से सपने, और माथे में बहुत-से ख्याल पालकर घर से जिन्दगी खरीदने निकलता है—और जिन्दगी के बाजार में जिन्दगी की कीमत सुनता है, तो उसकी छाती में खनकते सब सिक्के बेकार हो जाते हैं··· और वह जब एक सिगरेट पीता हुआ जिन्दगी के बाजार में से खाली हाथ लौटता है, तो शीरीन, जैसे हर मोड़ पर खड़ी उससे कह रही होती है—"मैंने तुम्हें बताया था—इन सब सिक्कों की डिवैल्युएशन हो चुकी है···मैंने तुम्हें बताया

था…"

कभी-कभी चाचा जी याद आ जाते हैं—अपने कुत्ते से कह रहे होते हैं सिट डाउन…शट-अप…सिट डाउन…शट-अप…

हम में से कौन है, जिसके अन्दर कुत्ते की तरह भौंकता नहीं, और जिसके अन्दर कभी जो भी कुछ उठ खड़ा हुआ है, वह बैठता नहीं…

मुझे यकीन है—विनोद, पागलखाने की सलाखों को पकड़कर जरूर बड़े जोर से चीखता होगा…तनवीर अपने जेलखाने की कोठरी से सिर पटककर रो उठता होगा…अशोक, जरूर कभी रात को सपने में पेंट करता होगा, और दिन में अपनी कैनवस को खाली देखकर तड़प उठता होगा…शीरीन…रिक्की—मैं—सब चुप दिखाई देते हैं, पर क्या हमारी चुप भी हमारी छाती में कुत्ते की तरह भौंकती नहीं ?

हम हर खड़ाक को, और हर परछाईं को देखकर भौंकते हैं। न जाने किससे क्या कहना चाहते हैं—(शायद कहने के लिए जो कुछ थो, उसे किसी ने नहीं सुना, इसीलिए सब कुछ हमारा भौंकना बन गया है…) और जो कुछ हमारे अन्दर उठा था, अब पता है—उसे कहीं से चलकर कहीं नहीं पहुंचना—पर वह अभी भी बैठता नहीं—और जिन्दगी का पैटर्न, चाचा जी की तरह हम सबसे कह रहा है, 'सिट डाउन…शट-अप…सिट डाउन…शट-अप…'

अन्तिका

मेरी नौकरी कच्ची थी—इस हफ्ते मियाद पूरी हो गयी है—सो मैं पक्की नौकरी की तलाश में हूं—

तनवीर की नौकरी भी कच्ची थी—यानी उसे उमर कैद नहीं थी—पर इस हफ्ते पक्की हो गयी है—उसकी कैद दुगुने वर्षों में बदल गयी है—(दस वर्षों बाद जब रिहा होगा, उमर के बाकी साल कैदी-जीवन की पैनशन की तरह होंगे)…

लगता है—जो कुछ कच्चा होना चाहिए था, वह पक्का हो गया है, और जो कुछ पक्का होना चाहिए था, वह कच्चा हो गया है…

मेरा कसूर यह था कि मैंने काम में जरूरत से ज्यादा मेहनत की थी, और सरकारी अमला ऐसे आंख मलने लगा था, जैसे उसकी आंखों में तीले की तरह पड़ गया होऊं। और फिर एक के बाद एक हादसा होता गया। डैम बन रहा था, मुझे इन्सपैक्सन के लिए जाना होता था। देखता था कि सीमेंट की बोरियों की गिनती दिन-ब-दिन घटती जा रही थी और रेत की बोरियों की गिनती दिन-ब-दिन बढ़ती ज़ा रही थी, सो रिपोर्ट लिखता रहा, और फिर इस बात के पीछे पड़ गया कि रिपोर्टों वाली फाईल पर एक्शन लिया जाए—सो जिस इंजीनियर की

लम्बी बीमारी के कारण, उसकी लम्बी छुट्टी के वक्त, उसकी खाली जगह पर मैं लगा था, उसे तार देकर बुलाया गया। उसकी बाकी छुट्टी कैंसिल की गयी, कि उसके बिना काम नहीं चलता था—और मुझे 'रिलीज ऑर्डर' दिया गया।

काम चलता नहीं था, या रुकता नहीं था, इस बारे में कुछ भी कहने का कुछ अर्थ नहीं। या इसका अर्थ वह है जो किसी की पकड़ में नहीं आ सकता है, वह सिर्फ इतना—मेरे लिए रिलीज ऑर्डर···

तनवीर को रिलीज ऑर्डर की जगह 'स्टे ऑर्डर' मिला है। कम्बख्त ने जेल में एक नज्म लिख मारी, और किसी तरह जेल में से स्मगिल करवाकर, बाहर किसी अखबार तक भेज दी।

पिछले हफ्ते नज्म छप गयी। नज्म के साथ लिखा उसका नोट छप गया, और नज्म पर लिखा उसका नाम भी।

नाम तनवीर नहीं था, नहीं तो जिस वक्त नज्म छपी थी, मैं उसी वक्त हस्र समझ जाता। नाम की जगह लिखा हुआ था—कैदी नं० 689-9। मैंने अखबार में से नज्म वाला टुकड़ा काटकर, अपनी डायरी में रख लिया था। तनवीर की नज्म समझकर नहीं, किसी कैदी नं० 689-9 की नज्म समझ कर।

वैसे मैं नज्म पढ़कर भी चौंका था, और कैदी का नम्बर पढ़कर भी। लगा था—जैसे यह नम्बर मैंने पहले भी कहीं पढ़ा हो फिर उसी रात कुछ किताबें उलटते-पलटते हुए मैंने ढूंढ़ निकाला था कि यह नम्बर गोर्की की कैद के वक्त, उसका कैदी नम्बर था। सो मैंने लिखा—जिस कैदी ने यह नज्म लिखी थी, वह जरूर काफी पढ़ा-लिखा होगा (उस नज्म से भी जाहिर था)—और उसने अपना असली कैदी नम्बर देने की जगह, गोर्की के कैदी नम्बर को आइडियल बनाकर लिखा होगा—

पर आज अखबार में खबर आई है—कि नज्म के साथ लिखा हुआ कैदी नम्बर, कैदी का असली नम्बर था, इसलिए उसका असली नाम बड़ी जल्दी ढूंढ़ निकाला गया। असली नाम तनवीर है, और नज्म लिखने के अपराध में, और फिर उसे कैद में से बाहर किसी अखबार को भेजने के अपराध में, उसकी सजा दुगुनी कर दी गयी है—

नज्म को फिर से डायरी में से निकालकर पढ़ रहा हूं—उसके साथ लिखा नोट भी, और हैरान हूं—मैंने उसकी लाइनों में से तनवीर को क्यों नहीं पहचाना था···

नोट बड़ा साफ है—"आज जेल का दरोगा जब बाहर वाले बरामदे में आराम कर रहा था, उसका ट्रांजिस्टर बज रहा था—कभी आवाज आती थी सहगल का गीत सुनिए, और फिर जब सुनने वाला सहगल की आवाज में डूब रहा था, तो आवाज आती थी, हमारा नया बना साबुन प्रयोग में लाएं, उसका झाग बहुत सफेद

है—और फिर कोई गालिब की गज़ल, और फिर किसी टूथपेस्ट का विज्ञापन···
मैं कुछ भी सोचना नहीं चाहता था, कुछ भी कहना नहीं चाहता था, पर मैं, खुद से भी बागी होकर, एक नज्म लिख गया हूं···"

और इस नोट के नीचे एक नज़्म है—'कमर्शल सर्विस।' मैं इसकी एक-एक लाइन को आज बार-बार पढ़ रहा हूं—जैसे तनवीर से बातें कर रहा होऊं···

नहीं, मैं चुप हूं, सिर्फ तनवीर बोल रहा है और—मेरे हाथों में नज्म का कागज नहीं, एक ट्रांजिस्टर है—ट्रांजिस्टर जो अभी ईजाद नहीं हुआ—

और ट्रांजिस्टर में से आवाज आ रही है—पोर्टफोलियो वेब—मिनिस्टरी मीटर पोर्टफोलियो वेब—मिनिस्टरी मीटर—

नई योजना का एक नया गीत सुनिए, एक हजार नए कारखाने !

विदेशी मशीनें खरीदिए उनका परमिट मेरे बेटे के नाम है···

अब सबकी पसन्द का एक गीत सुनिए, खेती-बाड़ी की उपज तीन गुना !

ट्रैक्टर खरीदो, उनकी ब्लैक सिर्फ दो गुना हुई है···

नये सैशन का भाषण सुनिए, मेरा तन-मन देश के अर्पण !

सिर्फ धन फारेन बैंक में होता है···

अब सुनिए गालिब की गजल-सी—मांगें—हड़तालें—मुज़ाहरे—

इस पहली तारीख से सिर्फ डेढ़ गुना टैक्स बढ़ेगा···

एक जरूरी ऐलान सुनिए। आज की बहस का एजंडा था—टोटल एजुकेशन, टोटल एम्प्लाइमेंट का प्रस्ताव पास हुआ है—टोटल प्राहिबिशन। आख़िर में खबरें सुनिए। हर राज्य ने निर्णय किया है कि गाओ, गाओ, जीने वालों का क्या है मरे हुओं की बरसी मनाओ !

अब इस वक्त चुनावों का समय है, आज्ञा दें, नये इलैक्शन के बाद हम फिर आपकी सेवा में हाजिर···

तनवीर हंस रहा है और बोल रहा है—नहीं कुत्ते की तरह भौंक रहा है···

पांच साल की जगह, दस साल की कैद कोई उससे भी ऊंची आवाज में कह रहा है, और चिल्ला रहा है 'सिट डाउन···शट-अप···सिट डाउन···शट-अप···'

इसमें कुछ भी सिंबालिक नहीं। अखबार में तनवीर के केस की पूरी रिपोर्ट है। जब तनवीर को कचहरी में नज्म की जांच-पड़ताल के लिए पेश किया गया तो तनवीर ने बिल्कुल इन्कार नहीं किया कि यह नज्म उसकी नहीं थी, बल्कि गर्व के साथ उसने कहा, "गोर्की ने जेल में एक नावेल लिखा था, मैंने जेल में एक नज्म लिखी है। देखो मेरा कैदी नम्बर भी वही है जो गोर्की का था, यह नम्बर बहुत लकी है—" और कचहरी में जो आवाज सबसे ऊंची थी, वह मेज पर हाथ मार-कर चीख उठी थी—शट-अप···

जैसे वी आर आल डाग्ज···बट शैल्युट टु दि वार्किंग वन्स···

एक और अन्तिका

एक मुद्दत के बाद आज अचानक शीरीन का खत आया, लिखा है—"कपिल ! सुबह स्कूल में क्लास ले रही थी कि एक हादसा हो गया। बाहर नहीं, मेरे अन्दर। सामनें बोर्ड पर दुनिया का नक्शा लगा हुआ था—यानी दुनिया भर के रास्ते सामने बिछे हुए—और हर रास्ते के शुरू में उनका नाम गाड़ा हुआ—और मुझे लगा हर नाम जैसे एक सूली की तरह गाड़ा हुआ हो, और जिस पर हर रास्ता सूली चढ़ गया हो···और अब कहीं भी कोई जिन्दा रास्ता नहीं। सारी दुनिया में रास्तों की सिर्फ लाशें बिछी हुई हैं—कपिल ! कोई जिन्दा पांवों से मरे हुए रास्तों पर कैसे चले ? और मैंने मरे हुए रास्तों से घबराकर नहीं अपने जिन्दा पांवों से घबराकर स्कूल से छुट्टी ले ली, और घर आ गई—इस वक्त बड़ी गहरी रात है, मैं सारा दिन अपने पांवों की तरफ देखती रही हूं, और सारा दिन सोचती रही हूं कि मेरे ये पांव इतने जिन्दा क्यों हैं ? अगर पांव जिन्दा हैं, तो कोई रास्ता क्यों नहीं जिन्दा ? और अगर रास्ते मर गए हैं, तो यह पांव क्यों नहीं मर जाते ?"

आंखों के सामने शीरीन आई, रिक्की भी आई। रिक्की शायद शीरन का ही दूसरा रूप बनकर आई—

याद आया—एक दिन रिक्की ने कहा था, ह्वाई आर यू सो एलाइव ? और आज शीरीत कह रही थी, 'मैं मरे हुए रास्तों से नहीं घबराई, अपने जिन्दा पांवों से घबरा गई हूं।'

सोचता हूं, जिसके पांवों में, हाथों में, छाती में, माथे में, जो कुछ जिन्दा है, उसका वह क्या करे—

यह सब सवाल उसी जिन्दा हिस्से में उगते हैं—नहीं तो मरी हुई धरती में कब कुछ उगता है—

और जिसमें जो कुछ भी जिन्दा है, वह धीरे-धीरे सवालों का एक जंगल बन जाता है—

कुछ सपने सबके पास थे, अब भी हैं, पर वे जंगल के जानवरों की तरह हो गए हैं—

मासूम फाख्ताओं और गिटारों जैसे भी, और बड़े जहरीले, जंगल के सांपों जैसे भी, और जंगल के चीतों जैसे भी और हम—इस जंगल के वासी, भूख लगने पर फाख्ताओं और गिटारों जैसे अपने ही सपनों को भूनकर खाते हैं, और फिर हम

खुद ही वक्त-बेवक्त इन सपनों के हाथों डसे जाते हैं···

कभी-कभी—कोई 'आज' ऐसा भी होता है जब शीरीन का खत आता है, और फिर वह 'आज' कल में भी, शामिल हो जाता है, परसों में भी, चौथ में भी पंचमी में भी, छठमी में भी···और वह चलता जाता है। रोज अगले दिन को पांवों के नीचे मसलता, उससे अगले दिन की तरफ बढ़ता जाता है। और तब तक चलता रहता है, जब तक बड़ा ही थककर कहीं गिर नहीं पड़ता···

मैं आज विनोद से पागलखाने मिलने गया था। शीरीन के खत वाला 'आज' बड़े दिनों से मेरे साथ चल रहा था। मेरे साथ नहीं, समय के कैलेण्डर के साथ (यह कैलेण्डर तारीख भी बदलता था, तो इस 'आज' से मुंह छुपाकर बदलता था, और हर बार तारीख बदलते वक्त फीका-सा पड़ जाता था—शायद इस 'आज' से वह बहुत शर्मिन्दा है···)

सो आज मैं विनोद से पागलखाने में मिलने के लिए गया था। वैसे 'मिलने के लिए' शब्द नहीं कहना चाहिए, सिर्फ 'देखने के लिए' शब्द ही काफी है, क्योंकि 'मिलने' का सम्बन्ध पहचान से है, और विनोद अब किसी को नहीं पहचानता।

विनोद, विनोद था, सिर्फ मैं अजनबी था···

वह मुझसे बातें करता रहा। मुझे मैं समझकर नहीं, कोई अजनबी समझ कर।

अजनबी शब्द विनोद का दिया हुआ है, सिर्फ मुझे नहीं, हर किसी को। कोई भी उससे बात करना चाहे, वह कितनी देर उसके मुंह की तरफ देखता रहता है, फिर जब भी कुछ कहता है, कहते वक्त, उस फिकरे के साथ अजनबी शब्द जोड़ देता है—देखो अजनबी!

शायद दुनिया के सब शब्दों में से उसे यही शब्द सबसे ठीक लगा था, और उसने हर एक के लिए, यही एक शब्द चुन लिया है···

सोचता हूं—बहुत शब्द थे—दोस्त बड़ा प्यारा शब्द था, साथी बड़ा प्यारा शब्द था, कामरेड बड़ा प्यारा शब्द था, पर ये सब इन्सान के साथ कितनी दूर चल सके?

इन्सान चलता रहा, ये सब शब्द थक गए···

विनोद शायद ठीक कहता है—यह अजनबी शब्द सबसे शक्तिशाली है। जब से आदमी का वंश चला है, यही शब्द उसके साथ-साथ चला है, और आज तक चला आ रहा है···

न जाने इस शब्द की जड़ें धरती में कितनी गहरी हैं···

शायद आदमी की छाती में सवालों का जो जंगल उगता है यह शब्द उस जंगल का सबसे पुराना पेड़ है···

विनोद ने भी कभी सपने देखे थे—फाख्ताओं और गिटारों जैसे सपने। फिर

सपने—सिर्फ फाख्ताएं और गिटारें नहीं होते। समय पाकर वे सवालों के जंगल में सांप भी बन जाते हैं,···चीते भी बन जाते हैं···। ऐसे ही किसी सांप ने विनोद को डंस लिया था, और सांप के जहर से तड़पता विनोद आज पागलखाने में है···

सलाखों के पीछे वह एक दीवार के साथ लगा हुआ खड़ा था। मैंने बातें करने की कोशिश की थी, पर वह चुप, दीवार के साथ लगा, खड़ा रहा···

मुझे उसकी वह नुमाइश याद हो आई, जिसमें उसने 'रियली रियलिस्टिक पेंटिंग्ज' दीवारों पर लगाई थीं। 'पोर्ट्रेट ऑव ए माऊस' दीवार पर लिखकर, उसने एक चूहे को कील से लटकाया था, 'पोर्ट्रेट ऑव ए कैट' लिखकर एक बिल्ली को, और मैंने जब घबराकर उससे मजाक किया था, "ह्वाट अबाउट दि सैल्फ पोर्ट्रेट ? तो उसने हंसकर कहा था, "वह आखिरी आइटम होगी !"

ओ खुदाया ! आज मैंने जब विनोद को सलाखों के पीछे दीवार से सटकर खड़े देखा, मेरी आंखें कांप गयीं—सो उसने दीवार से अपने जिन्दा-मरे हुए की तस्वीर टांग ली थी—सेल्फ पोर्ट्रेट···

"पर विनोद ! तुमने तो कहा था वह आखिरी आइटम होगी ?" मैं पागलों की तरह आज उससे पूछता रहा। पूछता रहा, "तुमने कहा था कि आखिरी आइटम से पहले एक और बहुत जरूरी आइटम रहता है—पोर्ट्रेट ऑफ एन ईडियट क्रिटिक—पोर्ट्रेट ऑफ एन ईडियट सिस्टम···वह कहां है ?"

विनोद चुप था, उसे कुछ याद नहीं था। पर मैं अपनी याद का क्या करूं ? उस बहुत जरूरी बात का क्या करूं जो कहीं नहीं पहुंच सकी ?

पर यह भी एक सवाल है, सवालों के जंगल में उगा हुआ सवाल ! इसका जवाब कोई नहीं दे सकता।

मुझे तड़प-सा गया देखकर, शायद विनोद को कुछ हुआ। उसे याद कुछ नहीं आया, पर वह बोलने लगा। कहने लगा, "देखो अजनबी ! मैंने एक नज्म लिखी है, तुम सुनोगे ?" और फिर सामने शून्य में घूरते हुए उसने नज्म सुनाई—

"सूरज, सोने का कटोरा था
चांद, चांदी का कटोरा,
और धरती, मिट्टी का एक हरा फूलदान···
पर सभ्यता को चिरकाल से तपेदिक है···
और जो कुछ सामने आता है, वह पीकदान समझ लेती है
और सोने के कटोरे में वह लहू थूक रही—
चांदी के कटोरे में वह लहू थूक रही—
और हरे फूलदान में भी वह लहू थूक रही···"

रुलाई रुकती नहीं थी, इसलिए विनोद के पास से जल्दी लौट आया हूं··· लौट नहीं आया, भाग-सा आया···हूं।

विनोद के पास से आ गया था, पर अपने आपके पास से कहां जाऊं ?

कहीं नहीं जा सकता, सो खड़ा हूं···

धरती घूम रही है, मैं खड़ा हूं···

सवालों का जंगल और घना हो गया है—इतना कि सारे परिचित चेहरे इस जंगल में खो गए हैं—

और दूर कहीं, जहां कोई सवाल नहीं, वहां कोई जंगल नहीं और वहां लोग बसते हैं, अजनबी बसते हैं···

अजनबी कभी इस तरफ नहीं आते। सिर्फ वक्त जब कभी इधर से गुजरता है, तो जंगल की तरफ देखता है, उसे पता है कि यहां कुछ लोग रहते हैं—

मेरे लिए वक्त भी अजनबी है, उसे देखकर अगर मैं कभी कुत्ते की तरह भौंकता हूं, तो वह जोर से चीखता है···शट-अप···सिट डाउन···शट-अप···

और मैं कुछ वह जल्दी से सवालों के इस जंगल के पास से दूर चला जाता है—

और फिर देर ख्वाहमख्वाह एक शून्य में भौंकता रहता हूं···

उसे, वक्त को, शायद पता नहीं—कि मैं, और मेरे जैसे सब भौंकने वाले यह जान गए हैं कि उसे, जो हमारा अधिकार हमें देना था, वह हमसे छुपाकर अपनी जेब में डाल लिया है···

एक बेबसी है—कि हम उसकी जेब में से वह नहीं निकाल सकते, जो हमारा अपना है, और हम सिर्फ भौंकते हैं···

पर कितनी देर ?

आज बहुत जोर से हंसने को मन करता है···और एक बड़ी भयानक बात भी कह देने को मन करता है कि हम एक दिन अचानक चुप हो जाएंगे, बिल्कुल नहीं भौंकेंगे, पर हमारी चुप बहुत खतरनाक होगी—अपनी आवाज को हम अपने गले में से निकालकर अपने हाथों में पकड़ लेंगे—आवाज को एक कैंची बना लेंगे, और—फिर एक दिन वक्त की जेब कतर लेंगे···

इस वक्त अभी—सचमुच कुछ घट रहा है···बोला नहीं जा रहा है··· सचमुच मेरे गले में एक शिथिलता आ रही है और हाथ में एक हरकत···

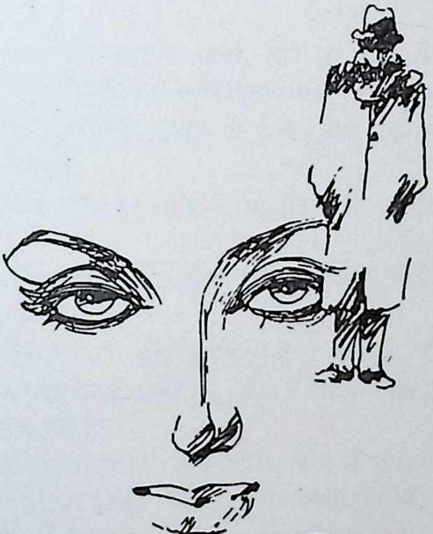

कटी पतङ्ग

1

ऐसे—जैसे कोई खिड़की के शीशे को नाखूनों से खुरचता हो···

मीना हाथ में ली हुई किताब को पढ़ती-सी इस वक्त कमरे में अकेली थी, पर उसका ध्यान किताब में नहीं था, शायद कमरे में भी नहीं था—उसने चौंककर कमरे की ओर, दरवाजे की ओर, और फिर खिड़की की ओर देखा।

उसे लगा—अभी खिड़की के शीशे के आगे एक बांह-सी दिखी थी, फिर परे हो गई थी।

उसका दिल जोर से धड़का, और वह कमरे में से दौड़ती-सी बाहर वहां रसोई में चली गई, जहां दलीप उसके लिए चाय बना रहा था।

दलीप चाय की केतली को ट्रे में रखता हुआ कहने लगा—लो मालकिन, चाय तैयार है।

मीना उखड़े हुए सांसों से भी हंस-सी दी—मेहमान को फ्रेंच में मालकिन कहते हैं?

दलीप कहने लगा—फ्रेंच पढ़ते-पढ़ते अगर कोई मेहमान से मालकिन बन जाए, तो···?

मीना ने प्याले और चमचे भी ट्रे में रख दिए, और दलीप ने ट्रे उठा ली। कमरे की मेज पर ट्रे रखते हुए दलीप ने देखा—मीना कुछ घबराकर खिड़की की तरफ देख रही है···

दलीप ने प्यालों में चाय डाली, और मीना उसके हाथ से चाय का प्याला पकड़ती हुई कुरसी पर बैठ गयी। पर उसने मुश्किल से अभी दो घूंट भरे थे—लगा जैसे कोई खिड़की के शीशे को नाखूनों से खुरचता हो··

उसका हाथ कांप-सा गया, और उसने प्याला मेज पर रखकर, पहले खिड़की की तरफ देखा, फिर दलीप की तरफ।

—क्या बात है मीनू?

जवाब में मीना ने खिड़की की तरफ हाथ किया।

दलीप ने उठकर खिड़की के पास जाकर बाहर की ओर देखा, फिर मीना की

तरफ लौटता हुआ कहने लगा—वहां तो कुछ भी नहीं।

—कोई था।

—कहां ? कब ?

—अभी जब मैं यहां अकेली बैठी हुई थी।

—कौन था ?

—किसी की बांह-सी थी, फिर परे हो गई।

दलीप हंसने लगा, और खिड़की के पास जाकर खिड़की को जरा-सा खोलकर, उसमें से अपनी बांह को बाहर निकालकर, उसने बुगनवेलिया की बेल को हाथ से इधर खिड़की के आगे करते हुए कहा—हवा से इसकी टहनी कभी ऐसे हिलती है जैसे कोई खिड़की के आगे बांह हिला रहा हो।

बुगनवेलिया के लाल और सिलकी रंग के फूल सचमुच किसी की छोटी-छोटी उंगलियों की तरह हिल रहे थे।

—नहीं, शीशे को कोई नाखूनों से खुरच रहा था···

—बेल के कांटे शीशे से रगड़ते हैं···

दलीप ने हाथ में पकड़ी हुई टहनी को छोड़ दिया। वह खिड़की के शीशे के साथ घिसटती हुई जब परे हुई, तब मीना को यकीन आ गया कि पहले भी बिलकुल यही आवाज आई थी।

वह कच्ची-सी होकर हंस पड़ी। कहने लगी—मेरा सचमुच आजकल दिमाग खराब हो गया है।

दलीप ने कुछ चिन्तित पूछा—तू आज भी साइकल पर आयी है ?

मीना ने 'हां' में सिर हिलाया।

दलीप ने कुछ गुस्से से कहा—मैंने कल भी तुझसे कहा था कि साइकल पर मत आना, बस से आ जाना। मैं वापसी पर तुझे मोटरसाइकल पर छोड़ आऊंगा।

मीना कुछ परेशान-सी दलीप की ओर देखने लगी।

दलीप ने पूछा—आज किस रास्ते से आयी थी ? पुल की तरफ से ?

—नहीं, रेलवे लाइन की तरफ से।

—फिर आज तो रास्ते में वह कार वाला नहीं होगा !

—सारे रास्ते नहीं था, पर जहां रिंग रोड मिलती है, वहां वह खड़ा था।

और साथ ही मीना हंस-सी दी—यह भी शायद मेरा भुलावा हो, उसने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। रोज वही गाड़ी देखती हूं, रास्ते में किसी न किसी जगह, कभी मेरे पीछे आती, कभी किसी जगह खड़ी हुई। शायद ऐसे ही डर गयी हूं।

दलीप हंसने लगा—तू आजकल कोई सस्पेंस नावल तो नहीं पढ़ रही ?

—नानसेंस।—और मीना घड़ी की ओर देखते हुए कहने लगी—छः बजने

वाले हैं, उठो, क्लास का वक्त हो गया है।

मीना का घर निजामुद्दीन में था। वह रोज साउथ एक्सटेंशन फ्रेंच पढ़ने आती थी। कालेज की पढ़ाई खत्म करके वह फ्रेंच का कोर्स करने लगी थी। दलीप कालकाजी के कालेज में पढ़ाता था। पर उसका घर यहां साउथ एक्सटेंशन में था—जहां फ्रेंच की क्लासें होती थीं, वहां से बिलकुल पास। और वह भी शाम के खाली वक्त में फ्रेंच का कोर्स करने लगा था। उनका यही परिचय उनकी दोस्ती बन गया था—

मीना कभी-कभी आधा घण्टा पहले आ जाती थी, दलीप के पास, और फिर दोनों चाय का प्याला पीकर फ्रेंच की क्लास के लिए चले जाते थे।

आज भी रोज की तरह छः से साढ़े सात बजे तक दोनों ने क्लास अटेंड की, पर मीना ने जब घर जाने के लिए अपनी साइकल उठायी, दलीप ने उससे कहा—साइकल यहीं रहने दे, मैं तुझे मोटरसाइकल पर छोड़ आता हूं।

—नहीं, सुबह छोटे भाई को साइकल की जरूरत होती है—मीना नहीं मानी।

—अच्छा, फिर पुल की ओर से मत जाना। इस वक्त वह रास्ता बड़ा सूना-सूना होता है।

—वैसे भी वह लम्बा पड़ता है, मैं इधर रेलवे लाइन की तरफ से जाऊंगी। यहां हर समय रौनक रहती है।

रिंग रोड मुड़ने वाली सड़क तक दलीप उसके साथ गया। दूर, जहां तक अन्दर की सड़क दिखती थी, देखा, और फिर मीना से कहने लगा—कोई हाथ का इशारा करे या रोके तो साइकल से मत उतरना।

—मेरा डर अब तुम्हें लगने लगा है?—मीना ने हंसकर कहा और साइकल पर चढ़ने लगी।

दलीप ने जल्दी से पूछा—उस कार का रंग क्या है?

—काला···

—और नम्बर?

—देखा नहीं।

—उसमें कैसा आदमी होता है?

—पतला-सा काला-सा। वह हमेशा गॉगल्स लगाए होता है···

—अकेला होता है?

—हमेशा अकेला···

दलीप ने साइकल के हैंडल पर से हाथ उठाया, फिर पूछा—उसने कभी कोई इशारा किया है?

—नहीं। ऐसा लगता है कि वह मेरी ओर ताकता रहता है। पर वह गॉगल्स

लगाए होता है, मुझे आंखें नहीं दिखतीं, शायद यूं ही लगता है···

सड़क पर दूर, जहां तक नजर जाती थी—कहीं कोई काले रंग की कार नहीं थी। दलीप कुछ देर वहां खड़ा रहा, फिर अपने घर की ओर लौट पड़ा।

मीना वह सड़क लांघ गयी, अगली भी, और फिर रेलवे लाइन वाली जगह आ गयी। फाटक बन्द था, वहां कितनी ही कारें, स्कूटर और साइकलें रुकी हुई फाटक के खुलने का इन्तजार कर रही थीं। मीना भी साइकल पर से उतरकर उस भीड़ में खड़ी हो गयी।

साइकल वाले ऊबकर कभी-कभी साइकल की घंटी बजा देते—जैसे बन्द फाटक को रास्ते से हटने के लिए कह रहे हों।

एक स्कूटर वाला कह रहा था—पांच बरस हो गए हैं सुनते हुए कि यहां पुल बनेगा···

और एक साइकल वाला जवाब दे रहा था—जनाब! यह बात तो उन्होंने इलेक्शनों के वक्त कही थी, अब फिर इलेक्शनों के वक्त कह देंगे···

एक और साइकल वाला कह रहा था—नहीं, अब वे इलेक्शनों के वक्त कागज पर इसका नक्शा बनाएंगे और फिर उससे अगले इलेक्शनों में नींव खुदवाएंगे।

मीना को भी सबकी हंसी के साथ कुछ हंसी-सी आ गई, पर इसी वक्त दूर से आती हुई गाड़ी की आवाज सुनायी दी, और सबका ध्यान गाड़ी की तरफ हो गया कि इस वक्त यहां से गुजरने वाली गाड़ी सवारी गाड़ी थी या माल गाड़ी। माल गाड़ी अक्सर बड़ी लम्बी होती थी और बहुत धीमी चाल से गुजरती थी।

—मिस शर्मा!

मीना को कन्धे के पास एक लड़की की धीमी-सी आवाज सुनायी दी। उसके एक तरफ खड़ी, उसी की उम्र की एक लड़की उसकी ओर देखते हुए कह रही थी—मिस मीना शर्मा! भीड़ से जरा-सा इधर आ जाओ। मुझे तुमसे एक बात करनी है।

मीना ने हैरान उसकी ओर देखा—क्या बात है?

गाड़ी अब लाइन पर से गुजर रही थी, और उसकी आवाज में किसी पास खड़े हुए की भी आवाज सुनायी नहीं दे रही थी। खड़ी कार वालों ने कारों की चाबियां घुमा ली थीं, और चाहे अभी कारें वहीं की वहीं खड़ी थीं, पर उनके इंजनों की आवाज सड़क पर फैल गयी थी।

वह अजनबी लड़की कुछ कह रही थी—पर मीना को सिर्फ उसके हिलते होंठ नजर आ रहे थे, आवाज सुनायी नहीं दे रही थी।

उस लड़की ने एक दोस्ताना-सी अदा से मीना की साइकल का हैंडल हाथ से पकड़कर जरा-सा परे चलने का इशारा किया—जहां भीड़ कम थी।

मीना ने साइकल नहीं मोड़ी, पर वह गौर से उस लड़की की ओर देख रही

थी। लड़की चुस्त और पढ़ी-लिखी लग रही थी—किसी हद तक खूबसूरत भी।

मीना को बिलकुल याद नहीं आया कि उसने पहले भी कभी उसे देखा हो, पर वह एक परिचित की तरह अब उसे मिस मीना शर्मा के बजाय मीनाजी कहकर बुला रही थी।

गेट शायद खुलने वाला था—गाड़ी की आवाज अब परे जा रही थी, पर मोटरों और स्कूटरों की और ऊंची हो गयी थी। कुछ गाड़ियां अपनी जगह से चल पड़ी थीं—और पीछे खड़ी साइकलें भी बाढ़ के पानी की तरह आगे बढ़ने लगी थीं—मीना को पीठ की तरफ से धक्का-सा लगा, और वह साइकल को संभालती, साइकल पर चढ़ने के लिए एक तरफ हो गयी।

उस अजनबी लड़की ने साइकल के हैंडल को कसकर पकड़ लिया—मीनाजी, एक मिनट मेरी बात सुन लीजिए।

मीना ने कुछ खीझकर उस लड़की की ओर देखा और कहा—मेरे घर आ जाना, मैं यहां नजदीक ही निजामद्दीन में रहती हूं।

लफ्ज मुंह से निकल गए, पर मीना को लगा कि उसे यह नहीं बताना चाहिए था कि उसका घर कहां है।

पर मीना का यह पछतावा, पछतावा न रहा, वह लड़की कह रही थी—मुझे पता है, घर का नम्बर भी पता है—सी-बाइस, पर बाद में तुम कहोगी कि मुझे तुम्हारे घर आकर यह बात नहीं बतानी चाहिए थी।

—नानसेंस।—मीना के मुंह से गुस्से में निकला और वह लड़की का हाथ हैंडल से परे करती हुई कहने लगी—अच्छा, वहां आ जाना जहां मैं पढ़ने जाती हूं।

—नहीं, वहां भी नहीं, और प्रोफेसर दलीप के घर भी नहीं।—लड़की ने जल्दी से कहा।

मीना कुछ हैरान उसके मुंह की ओर देखती रह गयी। वह कह रही थी—मुझे पता है तुम रोज फ्रेंच पढ़ने जाती हो। मिस्टर दलीप के घर भी जाती हो। पर फिर बाद में तुम कहोगी कि मुझे यह बात किसी के सामने नहीं करनी चाहिए थी।

—क्या बात है? मीना ने खीझकर पूछा।

—बात बड़ी दर्दनाक है···किस तरह बताऊं? यहां सड़क पर ही बता दूं?

फाटक खुल चुका था। बहुत-सी कारें और स्कूटर गुजर चुके थे—इधर की सड़क खाली होती जा रही थी, पर अभी दूसरी ओर ट्रैफिक रुका हुआ था, जिसे अभी इस सड़क पर से गुजरना था—सो सड़क अभी वीरान नहीं थी। मीना ने जल्दी से पूछा—हां बताओ, जल्दी।

उस अजनबी लड़की ने कहा—तुम्हारे पिताजी का नाम मिस्टर हरबंसलाल

शर्मा है ना ?

—हां, फिर ?

—पर वह तुम्हारे असली पिता नहीं, असली पिता मिस्टर डी० आर० मलिक हैं।···और वह बहुत बीमार हैं, तुमसे एक बार मिलना चाहते हैं···

—नानसेंस!—मीना के मुंह से जल्दी से निकला और उसने साइकल के पैडल पर पैर रखते हुए उस लड़की से कहा—न मैं तुझे जानती हूं, न किसी डी० आर० मलिक को।

उस लड़की ने फिर जल्दी से हैंडल पर हाथ रखते हुए कहा—मेरा नाम सोफिया है, मैं उनकी सेक्रेटरी हूं। तुम किसी बहाने से अपनी मां से पूछना कि मिस्टर डी० आर० मलिक···मेरा मतलब है, मिस्टर देसराज मलिक को वह जानती थीं ?···

मीना उसके हाथ को फिर साइकल के हैंडल से परे कर रही थी कि सोफिया ने जल्दी से कहा—वह बहुत बीमार हैं, एक बार अपनी बेटी को देखना चाहते हैं···इस वक्त यहां अशोका होटल में आए हुए हैं—वैसे बम्बई रहते हैं···

मीना ने देखा—अचानक एक कार उसके एक ओर आकर खड़ी हो गयी थी। और फिर चौंककर देखा—वही काले रंग की कार थी, और वही पतला-सा काला-सा आदमी ड्राइव कर रहा था।

लड़की ने कार की ओर देखा, कहा—यह बेचारा ड्राइवर छः-सात दिन से तुम्हें यही बताने के लिए तुम्हारे पीछे फिर रहा है···

मीना को घबराहट भी हुई, हैरानी भी, पर देखा—उस लड़की ने साइकल का हैंडल छोड़ दिया था, और परे कार की ओर जाती हुई कह रही थी—मीनाजी ! तुम घबराओ नहीं। अच्छी तरह सोच लो, फिर जी करे तो कल अशोका होटल आ जाना। आखिर वह तुम्हारे पिता हैं···पता नहीं कितने दिन और जिएंगे···

और वह लड़की परे जाकर कार में बैठ गयी। पर ड्राइवर कार में से उतरा, उसने मीना के आगे हाथ जोड़े, कहा—मेरा नाम राबर्ट है।—और फिर अदब से मीना के आगे सर झुकाया और कार में बैठकर कार चला दी।

कार चली गयी। मीना साइकल को चलाती साइकल के हैंडल की ओर ऐसे ताक रही थी—जैसे उसके दोनों हाथों से वह फिसल रहा हो···

2

एक रात में जैसे कई रातें गुंथी हुई हों, और सूरज को देखे हुए जैसे कई बरस बीत गए हों···

मीना की यह रात खत्म होने में नहीं आ रही थी। देसराज नाम उसने घर में सुन रखा था। अक्सर नहीं, पर कभी-कभार।

और मीना को याद आया—उसके जन्मदिन के दिन किसी न किसी बात पर उसकी मां जरूर यह नाम लिया करती थी···

याद आया—उसकी पुरानी एलबम में उसके पहले जन्मदिन की एक तसवीर थी, जिसमें उसने सितारों-जड़ा फ्राक पहना हुआ था। मां ने उसे गोद में उठा रखा था और घर की पुरानी नौकरानी राधा उसे एक रबड़ का खिलौना दिखाकर हंसा रही थी, और पास ही पापा खड़े हुए थे···पापा···हरबंस शर्मा···

मीना के माथे में तेज पीड़ा की लकीरें-सी खिचीं—पापा···देसराज···पर वह कहां थे?···तसवीर में क्यों नहीं?···

वह फ्राक?—मीना को याद था कि उसे वह तसवीर दिखाते हुए मां ने कहा था कि यह फ्राक तेरे देसराज मामाजी ने बनवाया था···

देसराज मामाजी···यह लफ्ज 'मामाजी' मीना के माथे की नाड़ी की तरह उभरकर दुखने लगा···

मां ने किस खयाल से यह लफ्ज़ उनके नाम के साथ जोड़ दिया? और मीना ने होंठों को भींचकर एक बार कहना चाहा—देसराज पापाजी···पर दोनों लफ्ज़ 'मामाजी' और 'पापाजी' उसकी कनपटियों की तरह दुखने लगे।

पता नहीं—कब नींद आयी, कितनी-सी, मीना की आंखें खुलीं तो सूरज ऊंचा चढ़ आया था।

उठकर रसोई में गयी। मां ने उसे देखकर चूल्हे पर चाय का पानी रखते हुए कहा—आज तुझे क्या हुआ है? मैंने तुझे कितनी आवाजें दीं, तू तो घोड़े बेचकर सो गयी थी···

मीना के मन में आया—मैं तो घोड़े बेचकर सोई थी या खरीदकर, पर मां, तुमने कैसे घोड़े बेचे थे कि सारी उम्र तुम्हें किसी का ध्यान ही न रहा—

मां ने उसे चुप देखकर कहा—रात बहुत देर तक पढ़ती रही थी?

मीना ने इसका जवाब भी मन में दिया—हां, बड़ी देर तक किस्मत की लकीरें पढ़ती रही—

फिर मां के हाथ से चाय का प्याला पकड़ते हुए, बड़े गौर से मां के मुंह की ओर देखा, बोली—रात मुझे अजीब से सपने आते रहे—एक कोई आदमी था, मैंने कभी देखा नहीं, पर वह कह रहा था, मेरा नाम देसराज है—

मां के हाथ से चीनी का चम्मच गिर गया—

मीना हंस-सी दी—कोई बात नहीं, चीनी का क्या है, लोग कहते हैं, हाथ से नमक नहीं गिरना चाहिए—नहीं तो अगले जन्म में आंखों की पलकों से उठाना पड़ता है—

मां का ध्यान न गिरी हुई चीनी की ओर था, न नमक की बात की ओर, कहने लगी—हैं, सचमुच—उसने तुझसे क्या कहा—

मीना ने फीकी चाय का घूंट भरते हुए कहा—कुछ कहा था, पर अब याद नहीं रहा—

मां कहने लगी—निगोड़ा ऐसा गया जैसे दीन-दुनिया से ही चला गया हो—

मीना कहने लगी—बड़ा ही लम्बा सपना था, पर कुछ याद ही नहीं आ रहा है—

मीना ने देखा, मां का मन भर आया था, पूछने लगी—कुछ मेरे बारे में भी कह रहा था?

मीना ने 'नहीं' में सिर हिलाते हुए कहा—बस इतना याद है, कहा था, मैं बड़ा बीमार हूं—

—हाय मैं मर गयी!—मां के मुंह से निकला, तो मीना को लगा, उसको रोना आ जाएगा—

मां एक विलाप की तरह कह रही थी—तुझे, पैदा होते ही उसने अपनी गोद में ले लिया था···अब बीस बरस बाद तेरे ही सपने में आया है···तुझसे तो पता नहीं उसका पिछले जन्म का क्या रिश्ता था!—मीना का मन भारी हो आया—पिछले जन्म का तो पता नहीं, पर इस जन्म का क्या बना···

फिर मन को संभालकर बोली—मां, तुमने मुझे वह जन्मदिन की तसवीर दिखायी थी न···

मां की आंखें नम थीं। कहने लगी—निरी तसवीर काहे की, मैंने तो वह सितारों-जड़ा फ्राक भी अभी तक संभालकर रखा हुआ है—उसकी निशानी···

मीना से और न झेला गया। उठकर अपने कमरे में चली गयी। कमरे की कुंडी अन्दर से बन्द करके वह अपनी चारपाई पर बैठकर ऐसे रोने लगी—जैसे मां के हिस्से का रोना भी उसकी आंखों में भरा हुआ हो।

फिर लगा, कोई दरवाजे को खटखटा रहा था, शायद मां थी। मीना ने उठकर गुसलखाने में अच्छी तरह मुंह धोया, फिर दरवाजा खोला।

राधा घर की नौकरानी थी, पर इतनी पुरानी कि मीना और मीना का भाई उसे राधा चाची कहते थे। वह चाय का प्याला लिए खड़ी थी।

—राधा चाची, मैं तो अभी चाय पीकर आयी हूं। फिर क्यों बना दी?

—तेरी मां कह रही है, उसके हाथ से चीनी गिर गयी, और तू फीकी चाय के घूंट भरकर ही आ गयी···

मीना ने चाय का प्याला पकड़ लिया। पीछे लौटने लगी तो राधा चाची ने उसकी बांह टटोलते हुए कहा—बिटिया, तेरा तो बदन गर्म है···आंखें भी कैसी चढ़ी-चढ़ी-सी हो रही हैं···

—रात अच्छी तरह नींद नहीं आयी थी···

मीना दरवाजा बन्द करने लगी तो देखा, मां उसके कमरे की ओर आते हुए बड़ी चिन्तित-सी कह रही थी—यह सपना तुझे किस वक्त आया? सुबह-सवेरे आया था या आधी रात को?

मीना को कोई जवाब नहीं सूझ रहा था। लगता था, मां खुद ही कह रही है और खुद ही सुन रही है—सुबह-सवेरे का सपना अच्छा नहीं होता···

मां कमरे में आ गयी तो उसके पीछे राधा चाची भी आयी, बोली—यूं ही बहम न कर, सुबह-सवेरे के सपने सच्चे नहीं होते···

मां मीना की खटिया पर बैठते हुए राधा चाची से कहने लगी—है री राधा! बीस बरसों बाद उसने लड़की को झलक दिखा दी—पर कहती है, वह बीमार था ···क्या पता वह सचमुच बीमार हो···

मीना को लगा, जो कुछ भी था, राधा चाची से छुपा नहीं था। मां कितनी निर्भीकता से उससे बातें कर रही थी। और मीना को राधा पर गुस्सा-सा आ गया।

गुस्से का कोई कारण नहीं था। अगर राधा को सब कुछ पता था तो इसमें राधा का कोई कसूर नहीं था। पर उसे यह पता होना मीना को अच्छा नहीं लगा। उसने कुछ खीझकर राधा की ओर देखा।

राधा मानो अपने से ही कह रही थी—सवेरे का सपना उलटा होता है, मेरी तो आज सुबह बाईं आंख फड़क रही थी, क्या पता निगोड़ा कहीं से आ टपके···

—काहे को—मां उतरे हुए मुंह से कह रही थी—बस, एक बार उसका मन टूट गया, फिर उसने पलटकर इस दरवाजे की ओर देखा ही नहीं···

मीना नहीं चाहती थी, पर पूछ बैठी—वह पापा का दोस्त था ना?

—सगे भाइयों से भी ज्यादा, एक-दूसरे के सांसों में घुले-से—मां ने कहा, तो राधा चाची भी बोल पड़ी—बस, लोगों की नजर लग गयी। मुझे तो जुड़वां भाई सरीखे लगते थे···

मीना ऐसी बातें राधा के सामने कहना नहीं चाहती थी, पर लगा कि जिन्दगी में ऐसी कोई जगह नहीं थी जो राधा ने न देखी हो। इसलिए पूछा—फिर राधा चाची! हो क्या गया था?

—तुझे बताया जो है बिटिया, कि लोगों की नजर खा गयी। दोनों सुन्दर जंचते। और एक यह तेरी परी जैसी मां···उस उम्र में तो इसकी ताब झेली नहीं जाती थी···बस, जहां जाएं तीनों··· लोग दांतों तले उंगलियां दबा लेते थे···बस, लोगों ने ही तेरे बाप को उलटी पट्टी पढ़ा दी···

राधा कहे जा रही थी कि मीना के मन में आया, पूछे—बाप को या मां को? पर खामोश, मां के मुंह की ओर देखने लगी।

मां अपने में खो-सी गई, कहने लगी—किस्मत की बात होती है! नहीं तो लोगों के कहने पर कोई कुएं में छलांग मार देता है? जब तक दोनों मिलकर करते रहे—काम में भी बरकत थी···

मीना मां की बातों से कुछ व्यग्र-सा होकर पूछने लगी—पर कोई तो बात होगी ना···

—बात तो कोई भी नहीं थी—मां कहने लगी—तेरी पहली बरस-गांठ थी, वह बड़े चाव से तेरा सितारों-जड़ा फ्राक सिलवाकर लाया, उधर तेरी दादी ने भी शगुन के कपड़े भेजे। मैंने उसका लाया हुआ फ्राक तुझे पहना दिया तो तेरे बाप ने बुरा मनाया। और वह बड़ा स्वाभिमानी था···फिर कभी दरवाजे पर नहीं आया।

राधा चाची बड़े दुख से कहने लगी—उसने अपने हाथों मिठाइयां खरीदीं, मैं ही उठाकर लाई थी। कहता था, राधा, आज तुझे नया जोड़ा लेकर दूंगा, और खुद बिना खाए उठ गया···भला तेरी मां ने क्या बुरा किया? उसका दिल रखने के लिए जो कपड़ा लाया था—तुझे पहना दिया···

मीना को लगा—राधा चाची को या तो असली बात पता नहीं है, या उसने भी मां का रहस्य मां की तरह छुपाया हुआ है।

3

मीना ने एस्प्रो की गोली खाई, सोने की कोशिश की, पर बड़ी उखड़ती-सी नींद में खटिया पर पड़ी रही। सो नहीं सकी।

जी में आया, दलीप को फोन करें, वह इस वक्त कालेज में होगा। पर साथ ही मीना तड़प उठी—यह बात उसे कैसे बताऊंगी? यह मेरी नहीं मां की इज्जत की बात है···

और मीना को लगा—उसकी जबान का एक टुकड़ा हमेशा के लिए गूंगा हो गया था···

फिर कानों में कोई शब्द चुभने लगे—'आखिर वह तुम्हारे पिता हैं, पता नहीं वह और कितने दिन जिएंगे···'

मीना के घर फोन नहीं था, पर सोचा, वहां जाने से पहले अगर फोन करूं?

खयाल आया, उसे कमरे का नम्बर तो पता नहीं था। न उसने पूछा था, न उस लड़की ने बताया था। पर साथ ही सोचा—उसकी जरूरत नहीं थी, सिर्फ नाम काफी था, होटल वाले सिर्फ नाम पर फोन मिला देंगे···

एक बार मन में आया—अगर मां को सारी बात बता दूं···जितने बरस बीत गए सो बीत गए···क्या पता वह भी एक घड़ी—आखिरी घड़ी···

और मीना ने अपनी जीभ दांतों तले दबा ली। नहीं, उससे यह नहीं हो सकता। यह बहुत मुश्किल है। मां शायद बिछोह को झेल सकती है, पर कोई शर्मिन्दगी न झेली जाएगी···

पड़ोस में फोन था। मीना कुछ बुखार से, पर ज्यादा अपने खयालों से, कांपती सी पड़ोसी के घर चली गई।

डायरेक्टरी में होटल का नम्बर देखा, पर डायल करते वक्त हाथ रुक गए··· खयाल आया···जिसे उम्र के बीस बरस नहीं जाना, अब आज अचानक उसे कैसे जान पाऊंगी···

मन में एक उबाल-सा भी आया—उसे क्या हक था कि ऐसे अचानक मेरे मन का सुकून छीन लेता···

उंगलियां शायद डायल पर घूमती रही थीं, मीना के कान फोन के दूसरी तरफ से आती हुई आवाज से चौंक-से गए—अशोका होटल···

प्लीज़ गेट मी मिस्टर देसराज मलिक—यह अपनी आवाज भी मीना को अजीब-सी लगी।

फिर एक खामोशी के बाद एक लड़की की, शायद उसी सेक्रेटरी की आवाज के बाद, एक धीमी पर मर्दानी आवाज आई, और जवाब में जब मीना ने कहा—मैं···मीना—तो लगा जैसे ये दोनों लफ्ज कहीं बहुत दूर से, बहुत परे से सुनाई दे रहे हों—उसके अपने होंठों में से नहीं।

दूसरी ओर की मर्दानी आवाज, जो शायद बीमारी के कारण कमजोर-सी थी, एकाएक भर आई—मीना बेटी···मीना बेटी !

मीना को लगा—यह उस दुनिया की आवाज थी, जिसे वह जानती नहीं थी। यह अजनबी दुनिया उससे बहुत दूर थी···उससे बीस बरस दूर···कानून से भी दूर···रिश्ते से भी दूर···पहचान से भी दूर···

यह पहला सम्बन्ध था जो एक पतले-से तार में से गुजरकर कहीं परे जुड़ रहा था, और जो अभी एक झटके से तोड़ा जा सकता था—मीना यह सोचती हुई कुछ देर फोन की ओर देखती रही, फिर कानों में कुछ जलने-पिघलने लगा। आवाज आई—मीना बेटी···एक बार आ जा···एक बार···

—कब ?

मीना का माथा गर्म भी था, पर सुन्न-सा भी। उसे अपनी आवाज भी ऐसे दूर से सुनाई दे रही थी, जैसे दूसरे की हो। उसने अपने-आपको कहते सुना—आज ? ···नहीं···शायद कल···शायद आज···

फोन करके मीना घर लौटी, पर खटिया पर लेटते हुए उसे लगा—अब

उससे आज···खटिया पर से उठा नहीं जाएगा···

दोपहर को मीना ने फिर एक बार चाय पी, मां ने चिन्तित होकर माथा छुआ, बदन पर पतली चादर की जगह कम्बल ओढ़ाया और राधा से कहने लगी—यह अचानक लड़की को हो क्या गया ?

राधा ने कम्बल में हाथ डालकर मीना के पांवों को छुआ, दबाया और तलवों को मसला, कहा—इसकी तो खैर है, थोड़ा-सा बुखार है—पर—अभी मेरी दाईं आंख फड़क रही थी···

मां ने राधा के कंधे को ऐसे झिझोड़ा, जैसे वह उस ओर की कोई खबर बताएगी। राधा कह रही थी—शरीर का क्या पता होता है, शायद उसने कोई आखिरी दर्शन-मेला करना हो—नहीं तो लड़की के सपने में क्यों दिखाई देता···

मीना के बदन में से एक जलती हुई-सी लकीर गुजर गई, जी में आया, चीख-कर कहे—मां, अगर तुम्हें अन्तिम दर्शन करने हैं तो अभी—अभी जाओ, यहां से मुश्किल से दो-चार मील···

पर मीना के गले से निकलने वाली आवाज को उसके माथे में से निकलती एक और आवाज ने रोक लिया—पहले उन्होंने मुझे बुलाया है, मैं एक बार उन्हें देख लूं···फिर अगर वह कहेंगे

अंग-अंग में थकी हुई मीना को नींद-सी आने लगी। मां की और राधा की कुछ मिली-जुली आवाजें उसके कानों में पड़ती रहीं—उनसे कहूं···कहीं से पता करें···पर न पता न ठिकाना···लड़की में उसकी ममता थी···उस जैसे लोग आज के जमाने में नहीं होते···

ये आवाजें कुछ देर तक टूटती-जुड़ती मीना के कानों में आती रहीं। फिर शायद उसे नींद आ गई थी, जब जागी—गहरी सांझ उतर आई थी—

मीना चौंककर उठी। उसे खयाल आया, दलीप उसके बारे में परेशान होगा, सोचता होगा, आज रास्ते में कोई बात न हो गई हो, और उसे एक ही उपाय सूझा कि दलीप के घर तो फोन नहीं था, पर जहां फ्रेंच की क्लास होती थी, वहां फोन था। अगर वह वहां दलीप को फोन कर दे···

उठी, मुंह धोया, पर कमरे से बाहर जाने लगी तो मां जल्दी से आई, उसकी बांह को छुआ और कहने लगी—अब तो बुखार नहीं लगता···

—मैं एक फोन कर आऊं ?

—कहां ? जहां पढ़ने जाती है ?

मीना ने 'हां' में सिर हिलाया तो मां ने कहा—वहां से कोई तुझे पूछने आया था, मैंने बता दिया, तुझे बुखार है। तुझे जगाने लगी थी, पर उसने कहा, रहने दो, बस खबर ही लेनी थी···

मीना फिर खटिया पर लेटते हुए पसीने से भीग-सी गई। जी में आया—दौड़कर दलीप के पास जाए···सब कुछ बता दे···उसके पास बैठकर खूब रोए···और उसे साथ लेकर एक बार उस आदमी को देख आए जो उसका बदनसीब बाप···

इस आखिरी लफ्ज़ 'बाप' से उसके खयाल अटक गए, जैसे सामने एक बड़ी-सी पत्थर की दीवार आ गई हो···

दूसरे दिन सुबह कोई ग्यारह बजे मीना ने मां को बताया कि अब वह बिलकुल ठीक है, और उसे लाइब्रेरी जाना है।

लाइब्रेरी लफ्ज़ को चाहे मीना ने मन में नया अर्थ दे दिया—'जिन्दगी की एक बन्द किताब को आज खोलकर देखूंगी।'—पर तो भी मीना ने मां की तरफ नहीं देखा, उसे झूठ बोलने की आदत नहीं थी।

साइकल निकाली, बदन में एक झुरझुरी-सी दौड़ गई। साइकल वहीं रख दी। पैदल चली, और कुछ दूर जाकर मोड़ से एक स्कूटर ले लिया, कहा—अशोका होटल।

रेसकोर्स के मैदान में कुछ अंगरेज़ बच्चों को हंसते-खेलते देखा, खयाल आया···कि उसका अपना बचपन शायद कहीं बहुत ही उदास और रीता-सा था, पर याद करते हुए भी कोई खास तरह की उदासी और रीतापन याद नहीं आया···वह हैरान-सी ऊंचे-ऊंचे पेड़ों वाली सड़क को देखती रही···

पत्थर की एक बहुत बड़ी इमारत में जाते हुए मीना का दिल इतना धड़कने लगा कि स्कूटर के खड़े हो जाने पर भी उतरा न गया। मन में आया, स्कूटर वाले को पैसे देने की बजाय कहे—चलो वापस, चलो।

अचानक देखा, राबर्ट स्कूटर वाले के पास आकर उसे पैसे दे रहा था···

मीना स्कूटर में से उतरी। राबर्ट हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर मीना को नमस्कार कर रहा था।

शीशों के बड़े-से दरवाजे में से लांघकर जब मीना ने भीतर के बहुत मोटे कालीन पर पांव रखा तो लगा, उसके पैर नीचे धरती में, और धरती से भी नीचे जैसे पाताल में धंसते जा रहे हों···

रिसेप्शन से कमरे का नम्बर पूछने की जरूरत नहीं थी, राबर्ट उसके आगे-आगे चलता राह दिखा रहा था। लिफ्ट में जाते हुए—चाहे अन्दर पूरी रोशनी थी—मीना को लगा, जैसे वह एक गुफा में से गुजर रही हो···

लिफ्ट का दरवाजा खुला, सामने सजी हुई पर खाली बैठने की जगह थी, शायद मिलने वालों के लिए, इन्तजार करने वालों के लिए! राबर्ट ने मीना से बैठने के लिए कहा, और खुद बाईं ओर बने कमरों के आगे से गुजरता हुआ परे किसी कमरे में इत्तला देने चला गया।

मीना सोफ़े के बाजू से लगकर उसीकी लकड़ी की तरह सिकुड़कर बैठ गई। कुछ देर बाद वही परसों वाली अजनबी लड़की आई—सोफिया, जिसने आज काली स्लैक्स और नीले रंग का पतला-सा स्वेटर पहन रखा था। मीना को पह· चानने में जरा दिक्कत हुई, पर उसकी परसों वाली नरम-सी आवाज ने जब उससे कहा—'मानाजी !' तो मीना पहचान गई।

वह मीना के पास बैठती हुई कहने लगी—तुम्हें मुबारक हो मीनाजी ! तुम्हारे पापाजी की बीमारी कल से, जब से उन्होंने तुम्हारी आवाज सुनी है, जाने कहां चली गई है···बहुत फर्क पड़ गया है···

सोफिया उठकर, मीना को भी उठाती हुई बायें हाथ की ओर कई कमरों को लांघती, एक कमरे के आगे खड़ी हो गई और हाथ से बन्द दरवाजे को खोलकर मीना को अन्दर जाने के लिए कह खुद बाहर खड़ी रह गई···

मीना दरवाजे के पास भीतर जा ज़रा रुक गई···

पीछे सोफिया ने दरवाजा बन्द कर दिया था, सामने शीशे की बड़ी-सी खिड़की थी, जिसके खुले हुए परदे में से आती धूप आंखों को चौंधिया रही थी। धूप की चमक से मीना की आंखों के आगे एक अन्धेरा-सा आ गया, पर आंखों को मूंदते और खोलते हुए उसने खिड़की से नजर हटाकर कमरे में देखा···

एक बड़े-से पलंग पर कोई था, मीना को देखकर, कोहनी के सहारे सिर को उठाता कहने लगा—मीना, मेरी बेटी···

मीना कांपती-सी, जैसे उस आवाज का हाथ थामकर पलंग के पास चली गई···पर आंखें भरी हुई-सी थीं—कोई अच्छी तरह दिखाई नहीं देता था—सिर्फ इतना लगा—एक हाथ उसके हाथ को पकड़कर अपने पास करता हुआ अपनी छाती पर रख रहा था। फिर एक आवाज कानों में पड़ी—मीना !

मीना निढाल-सी पलंग की पट्टी पर बैठ गई···

पलंग पर से धीरे-धीरे एक आवाज ऊपर उठती और फिर पलंग पर गिर-सी पड़ती लगती थी—लगता था, तुझे देखे बिना ही मर जाऊंगा···कई बार सोचा था···पर तू छोटी थी···तुझे कैसे बताता···क्या बताता···पर इस बार मेरी बीमारी ने मेरा हौसला तोड़ दिया···तू आ गयी···मैं अच्छा हो जाऊंगा···

और उसने तकिये के नीचे से एक तसवीर निकालकर मीना को दिखायी, बोला—बस, इसे रोज देख भर लेता था···उस दिन तेरा पहला जन्मदिन था···यह मैंने तेरा सितारों-जड़ा फ्राक बड़े शौक से खरीदा था···

मीना को यह सब पता था, वही जो मां ने बताया था। आंखें भर आईं, मुंह से धीरे से निकला—पापा !

—बस, इसी आवाज को सुनने के लिए मैं जिन्दा था···

उसने पलंग के साथ लगे हुए एक बटन को दबाया और कुछ देर बाद अन्दर

आकर उसकी सेक्रेटरी पूछ रही थी—जी सर !—और वह कह रहा था—मेरी बेटी के लिए चाय लाओ···नहीं, चाय नहीं···ऐपिल जूस···

—नहीं, कुछ नहीं···

पर मीना की आवाज उसकी आवाज से दब-सी गई थी। वह कह रहा था—मैं अपनी बेटी को कुछ भी नहीं दे सका, कुछ भी नहीं···बस, मुझे एक ही इकरार दो मीना ! कि कभी-कभी जब मैं दिल्ली आऊं···तो तुम आ जाओगी—

मीना ने धीरे से सिर हिलाकर 'हां' की। उसने फिर, कुछ सांस-सा रोककर कहा—दम्मो का क्या हाल है ?

मीना के पैरों तक कंपकंपी उतर गई। उसकी मां का नाम दमयन्ती था, और उसके वह पापा भी उसको कई बार दम्मो कहकर आवाज दिया करते थे—

—ठीक है—मीना ने धीमे से अपने होंठ को काटते हुए कहा।

—पर मुझसे इकरार करो—उसने मीना का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—मां से कुछ न कहना, मैं—मैं उसकी बीती हुई जिन्दगी का प्रेत हूं···

मां की कल की हालत, मीना का जी किया, बता दे। पर लगा, अपने मुंह से मां की बात नहीं की जा सकेगी।

बैरा दो गिलास ऐपिल जूस ट्रे में में रखकर ले आया था। पलंग के पास छोटी मेज पर रखवाते हुए, सोफिया ने बिल पर दस्तखत किए, और एक गिलास मीना को देकर, दूसरा पलंग के पास खड़े होकर आगे करते हुए कहा—सर ! आप भी ले लें। इसमें कोई हर्ज नहीं। डाक्टर से पूछ लिया है।

सोफिया के जाने के बाद उसने मीना से कहा—बहुत अच्छी लड़की है, मेरा बड़ा ध्यान रखती है—बहुत ट्रेवेल करना पड़ता है, हमेशा मेरे साथ रहती है—

और अचानक मीना से पूछा—वह प्रोफेसर दलीप अच्छा लड़का है न ?

मीना ने कुछ हैरानी से सामने देखा, फिर कहा—हां।

—तुम उसके साथ ब्याह करना चाहोगी ?

मीना ने सिर झुका-सा लिया—

—कब ?

—अभी पता नहीं।

वह कुछ देर चुप रहा, सोचता रहा, फिर कहने लगा—सामने अंगीठी पर एक दवाई की शीशी रखी है, मुझे उसमें से एक गोली दे दो।

मीना ने उठकर सामने अंगीठी पर से दवा की एक शीशी उठाई—वहां एक ही शीशी थी इसलिए पूछने की जरूरत नहीं थी—उसमें से उन्नावी-से रंग की एक गोली निकाली और दे दी।

उसने ऐपिल जूस के घूंट के साथ वह गोली खाते हुए कहा—अपने दलीप से

मेरी बात न करना। मुझे तो कोई डर नहीं, पर वह तुम्हारी मां के बारे में क्या सोचेगा ?···और क्या पता—फिर वह तुमसे ब्याह करे न करे—

मीना को दलीप में अपना भविष्य कहीं टूटता-सा लगा। कल से ही मन कुछ सहमा हुआ-सा था कि जब यह सब कुछ दलीप को मालूम होगा, उसकी आंखों में वह पहली-सी मीना नहीं रहेगी--

मीना घबराई-सी उठकर खड़ी हो गई। कहने लगी—अब मैं जाऊं ?

—पर फिर आओगी न ?

मीना ने 'हां' में सिर हिलाया।

उसने तकिये के नीचे से सौ-सौ के कुछ नोट निकाले और मीना से कहा—मैं तमाम जिन्दगी तुझे कुछ नहीं दे सका···

मीना ने हाथ को छू रहे, नोटों से हाथ परे कर लिया। मुंह से कुछ घबराहट में निकला—नहीं···नहीं···

नोटों वाला हाथ उदास-सा पीछे हो गया, पर मीना के कानों में एक आवाज जैसे तड़प उठी—ठीक है, न मैं दम्मो का कुछ लगता हूं, न तुम्हारा—

मीना का हाथ कुछ घबराकर आगे हुआ, पर उसकी 'हां' जैसे हवा में लटक-कर रह गई। न हाथ से नोट पकड़े जा रहे थे, न हाथ पीछे किया जा रहा था।

—जी करता था, उस फ्राक की तरह आज तुम मेरी खरीदी हुई कोई साड़ी पहनतीं—

मीना ने जवाब में हाथ आगे करके नोटों में से एक नोट ले लिया—यह काफी है।

उस आदमी ने पलंग के पास लगे हुए बटन को फिर दबाया। सोफिया दर-वाजा खोलकर अन्दर आई तो उसने कहा—राबर्ट से कहो, मेरी बेटी को छोड़ आए। एकदम घर तक न जाए, बाहर की सड़क तक छोड़ आए।

—अच्छा, सर !—सोफिया ने कहा, और मीना उसके पीछे चलती हुई होटल के बाहर आ गई—

4

किसी एक घटना का, चाहे किसी दूसरी घटना से बिलकुल कोई सम्बन्ध नहीं होता, पर कभी वह किसी एक जगह से इस तरह जुड़ जाती है कि उनके खोफ-नाक रंग एक-से लगने लगते हैं।

मीना ने अखबार में एक खबर पढ़ी कि एक सुखी विवाह अचानक एक दिन

में ही इसलिए टूट गया कि बीवी अपने खाविंद की चोरी से कभी-कभी कहीं जाया करती थी और एक दिन उसका पीछा करने पर खाविंद को पता चला कि उसकी बीबी का कोई पहला बच्चा भी था, जिससे मिलने वह आश्रम जाया करती थी—

मीना को अपना भविष्य दलीप से इसी तरह टूटता-सा लगा। उसने कल्पना करके देखा···कि उसका और दलीप का व्याह हो चुका था। दलीप उसे बड़ा प्यार करता था, वह दलीप को। पर कभी-कभी उसे अशोका या किसी और होटल से सन्देशा आता था और वह दलीप से चोरी वहां जाती थी, और एक दिन दलीप ने पीछा करके जान लिया कि उसकी बीवी का कोई एक पहला बाप भी था—जिससे मिलने वह किसी होटल में जाती थी···

और मीना भयभीत सोचने लगी—क्या गैरकानूनी बच्चे की तरह गैर-कानूनी बाप भी होता है···

मीना रोज फ्रेंच की क्लास के लिए जाती थी, पर इन दिनों में चाहकर भी दलीप के घर नहीं जा सकी थी। न सच बोला जा सकता था न झूठ, और वह घबराई-सी बहुत दिन तक दलीप से मिलने का समय टालती रही।

मीना जानती थी—अब उसे आते-जाते रास्ते में किसी काली कार का खतरा नहीं था, अब कोई उसका पीछा नहीं कर रहा था, पर वह दलीप को कुछ बता नहीं सकती थी। वह रोज अन्धेरा होने पर साइकल पर घर जाने लगती तो दलीप चिन्तित होता, पर मीना उससे कुछ भी न कह पाती।

पांचवें दिन—रात को घर लौटते हुए, मीना को रेलवे लाइन के पास राबर्ट मिला और दूसरे दिन सबेरे ग्यारह बजे होटल में आने का सन्देशा देकर चला गया।

दूसरे दिन मीना गई, पर इस बार वह ज्यादा घबराई नहीं थी, इसलिए साइकल ले ली। पर उसकी साइकल मुश्किल से सड़क के मोड़ के पास पहुंची थी कि राबर्ट वहां कार लिए उसकी प्रतीक्षा करता हुआ मिला। मीना ने अपनी साइकल एक परिचित लड़की के घर रख दी और राबर्ट के साथ कार में चली गई।

आज मिस्टर मलिक बाहर होटल के लॉन में उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मीना पहुंची तो राबर्ट गाड़ी से उतर गया, मिस्टर मलिक गाड़ी को खुद ड्राइव करते हुए कहने लगे—मेरी तबीयत अब बहुत ठीक है, शायद दिल्ली से जल्दी चला जाऊं। सोचा, जाने से पहले अपनी बेटी के साथ एक छोटी-सी ड्राइव पर हो आऊं···

जब राबर्ट गाड़ी चला रहा था, मीना पिछली सीट पर बैठी थी, पर अब जब मिस्टर मलिक खुद गाड़ी चला रहे थे, मीना उनके साथ अगली सीट पर बैठ

गई थी।

--तुम्हें ड्राइविंग सिखाऊं?—मिस्टर मलिक ने एयरपोर्ट वाली सड़क पर जाते हुए रास्ते में कहा।

--मुझे? मैं सीखकर क्या करूंगी?

—क्यों? मेरी बेटी गाड़ी नहीं चलाएगी?

—गाड़ी?···पर मेरे पास गाड़ी···मीना का वाक्य अधूरा सा रह गया, पर उसका अर्थ अधूरा नहीं था।

मिस्टर मलिक ने कहा---मुझे यही दुख है मीना कि मेरी गाड़ियां, मेरा पैसा तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता। पर मेरी सारी जायदाद पर सिर्फ तुम्हारा हक है—पता नहीं चलता, तुम्हें कब, किस तरह दूंगा···शायद तुम्हारे ब्याह के बाद···शायद वह लड़का समझदार हो---तुम्हें भी प्यार करे, मुझे भी···मैं सब कुछ तुम दोनों को दे दूंगा।

और मिस्टर मलिक ने गहरी सोच में पड़ी मीना से कहा—पर अभी ब्याह की जल्दी मत करना। इस दलीप को अच्छी तरह देख लें। नहीं तो मैं जो हूं, उससे भी अच्छा लड़का ढूंढ़ दूंगा···यह तो सिर्फ एक लेक्चरर है···मुश्किल से पांच-छ: सौ कमाता होगा।

मीना को पिछले कई महीनों से अपनी समूची दुनिया दलीप में दिखाई देने लगी थी। दूर जहां तक देखती थी, उसे दलीप दिखता था और उससे परे कुछ भी नहीं। पर इस वक्त पापा के मुंह से 'कोई उससे भी अच्छा लड़का' सुनकर उसके मन में एक टीस-सी हुई पर कुछ भी कहने से अपनी जबान रोक ली।

पापा ने कहा—खैर, तुम ड्राइविंग सीखो। जब मैं दिल्ली आया करूंगा, मैं आराम से गाड़ी में बैठूंगा, तुम ड्राइव किया करना। राबर्ट है, पर जब हम बाप-बेटी सैर करने जाएं, उस वक्त एक गैर आदमी को अपने साथ रखना अच्छा नहीं लगता।

मीना, सोच रही थी---अगर ऐसे ही कभी गाड़ी में बैठे, या ड्राइव करते दलीप ने मुझे देख लिया, या छोटे भाई ने, या उस पापा ने···

और मीना ने घबराकर इस पापा की ओर देखा। वह कह रहे थे—मेरा तो जी करता है—मैं अगले ट्रिप में तुम्हें अपने साथ लंदन ले जाऊं···चाहे सिर्फ चार-पांच दिन के लिए। तुम्हें लंदन दिखाऊं, पेरिस दिखाऊं···यह हो सकता है, अगर तुम पांच-सात दिन किसी सहेली के पास जाने की बात कह सको···तुम्हारी कोई सहेली नहीं है बम्बई, अमृतसर या कहीं भी?

मीना को सब कुछ एक परी-कथा-सा लग रहा था—सम्भव भी, असम्भव भी···

एक जगह गाड़ी रोककर मिस्टर मलिक ने गाड़ी में रखा हुआ सैंडविचेज का

पैकेट निकाला। चाय से भरा थरमस भी था। इर्द-गिर्द, दोनों ओर खेत थे, और जहां तक नजर जाती थी—हरियाली थी

और परे दूर दिल्ली के खण्डहर दिखाई दे रहे थे।

5

मीना रोज ड्राइविंग सीखने लगी। कभी मिस्टर मलिक से, कभी राबर्ट से। रोज घर से जाते वक्त 'लाइब्रेरी' जाती थी, पर बाहर के मोड़ से या ओबेराय होटल के मोड़ से राबर्ट के साथ कार में बैठते हुए, वह अपने मन में कह लेती थी—क्या इन्सानी रिश्ते की किताब को पढ़ना लाइब्रेरी की किताब पढ़ने की तरह नहीं है…?

मन में कभी-कभी ख्यालों की भीड़ हो जाती, और हार्न की तरह कानों में किसी खतरे की सूचना भी बजती—ऐसे कब तक चलेगा? कभी न कभी मुझे कोई इस कार में जरूर देख लेगा…

पर खतरे के सामने से जल्दी से परे होती हुई वह अपने-आपको तसल्ली देती—तो मां को सब कुछ बता दूंगी। इसमें जो कुछ छुपाव करना है वह मां को करना है, मुझे नहीं। मुझसे तो नौकर-चाकर भी अदब से मिलते हैं, अदब से बात करते हैं…

सिर्फ सोफिया मीना को ज्यादा अच्छी नहीं लगती थी, इसलिए नहीं कि वह मीना को अपने बॉस की बेटी होने के नाते पूरा अदब नहीं देती थी, सिर्फ इसलिए कि पापा के सामने वह जितनी चुप रहती थी, राबर्ट के सामने बातें करती हुई वह उतनी ही शोख-सी हो जाती थी। मीना को अच्छा नहीं लगता था।

पर छोटे काम वाले लोगों का अखलाक और होता है, मुझे उसकी निजी बातों से क्या?—मीना ने अपने-आपसे यह कह लिया था। पर परसों जब वह पापा के कमरे में गई थी, पापा गुसलखाने में थे, और भिड़काए दरवाजे को खोलकर वह जब कमरे में आई थी, उसका पैर ऐसे अटक गया था जैसे वह गलत कमरे में आ गई हो।

सामने पापा के पलंग पर सोफिया अलसाई-सी लेटी हुई थी।

मीना से भी ज्यादा घबराकर सोफिया पलंग पर से उठी थी—जैसे वह पापा की चोरी से वहां लेटी हो।

उस दिन सोफिया ने मीना से दोस्ती करने का कुछ खास यत्न किया था, पर मीना का मन उकताया हुआ था, उसने सोफिया का हाथ झटक-सा दिया।

सोफिया अपने पर्स में से पेरिस के सेण्ट की एक शीशी निकालकर मीना को

जैसे जबरदस्ती दे रही थी, पर मीना ने नहीं ली।

'रिश्वत' सरीखा एक शब्द मीना के माथे में टूटता और जुड़ता रहा···

पापा जब गुसलखाने से आ गए, सोफिया कमरे से चली गई, तो पापा ने दो फार्मों पर मीना से दस्तखत करवाते हुए कहा—यह एक तुम्हारा ड्राईविंग लाइसेंस बनवाने के लिए, और दूसरा तुम्हारा पासपोर्ट बनवाने के लिए···

मीना हैरान घबराई-सी पापा के मुंह की ओर देखने लगी···

पापा खुश भी थे पर उदास भी ! कह रहे थे—इन फार्मों पर अपने हाथ से तुम्हारे बाप का नाम—किसी और का नाम लिखूंगा·· कोई हरबंस शर्मा···इसका मुझे बड़ा दुख है। काश, मैं यहां अपना नाम लिख सकता ··

मीना के मन में भी कुछ उदासी उतर गयी। सोच रही थी—अपनी बेटी को जब बेटी न कहा जा सके ··इसका दर्द वही जान सकता है जिसने भुगता हो··· और उसका मन उस आदमी के लिए कुछ छलक-सा आया···

पर पापा खुश भी थे, कह रहे थे—फुलिश सेंटीमेंट···मैं तुम्हें देख सकता हूं, क्या यह काफी नहीं ? पांच-सात दिन तुम्हें पेरिस-लंदन अपने साथ रख सकूंगा, क्या यह काफी नहीं ?

और मीना के मन में पेरिस या लंदन जाने के नाम पर जो घबराहट हुई थी, वह पापा की खुशी के सामने छोटी हो गई···

उसने सिर्फ एक बार कहा—पर घर से क्या कहकर जाऊंगी ?—और पापा ने तसल्ली-सी दी—तुम कहती थीं, बम्बई में तुम्हारी एक सहेली रहती है। पांच-सात दिन उससे मिलने जाने के नाम पर कुछ कह देना···

मीना को तसल्ली नहीं हुई, पर एक और बात भी मन में आई, कहने लगी—सोफिया भी साथ जाएगी ?

पता था, वह पापा की सेक्रेटरी है, हर जगह हर वक्त साथ रहती है, पर पापा कह रहे थे—बिलकुल नहीं। मुझे बिजनेस का कुछ काम जरूर है, पर इस बार मैं चाहता हूं···पांच-सात दिन सिर्फ मैं होऊं, और मेरी बेटी···

और मीना उस तरफ से निश्चिन्त-सी हो गई···

आज उसने पापा को बताया हुआ था कि वह नहीं आएगी, आज उसने फ्रेंच की क्लास से भी छुट्टी ले ली थी, आज उसे दलीप के साथ दिल्ली से कोई बीस मील गुड़गांव से कुछ दूर, वहां जाना था, जहां दलीप के पिता का फार्म था।

दलीप के साथ उसकी मोटरसाइकल पर उसके फार्म पर जाने की इजाजत उसने मां से भी ले ली थी, और अपने उस पापा से भी।

"यह पापा, वह पापा", जब ये दो लफ्ज इकट्ठे उसके मन में आ जाते थे···

टकरा जाते थे···

वह सोचने लगी—दोनों में से कोई लफ्ज़ भी कहीं से टूटता नहीं, सिर्फ वह खुद ही कहीं एक जगह से कुछ टूट जाती है···

परसों पापा ने बड़े दुख से कहा था—तुम मेरे हाथ का खरीदा हुआ कुछ भी नहीं पहनोगी?—और उसने परसों शाम, पुराने संभालकर रखे हुए उस सौ के नोट को किताब में से निकाल लिया था, जो पहले दिन उसने पापा से लिया था।

परसों शाम उसने एक सिल्क की साड़ी खरीदी थी—हरे कांच के रंग की। और कल पापा को खुश करने के लिए वही साड़ी पहनकर पापा से मिलने गई थी···

मेरी सब्जपरी-सी बिटिया···कहते हुए पापा ने उसका गाल चूम लिया था।

उस दिन नहीं, पर आज, रात के चौथे पहर अपनी खटिया पर सोती-जागती-सी मीना को खयाल आया—पापा की जिन्दगी कितनी प्यासी थी···और साथ ही उस दिन सोफिया को पापा के पलंग पर लेटे हुए देखकर, जो गुस्सा-सा आया था, वह ढलने लगा।

सोचने लगी—इतनी रीती जिन्दगी पापा ने किस तरह बिताई होगी···सिर्फ मन की नहीं, तन की जरूरतें भी होती हैं। कभी ब्याह नहीं किया—कोई मुंह देखने को सामने कुछ भी नहीं—अगर वही सेक्रेटरी उन्हें कभी कोई सुख देती है तो इसमें उसका क्या कसूर···पापा का भी क्या कसूर···

मन पिघल-सा गया, साथ ही मन में कुछ तन-सा भी गया—पर वह राबर्ट के साथ भी बहुत खुली हुई है···अगर उसे पापा जैसा संजीदा आदमी मिल गया है तो वह उस राबर्ट के साथ क्यों?···मालिक और ड्राइवर के बीच जो एक अन्तर होता है, उस अन्तर की तमीज तो उसे होनी चाहिए थी···

और साथ ही एक गलीज-सा खयाल आया—राबर्ट जवान है···पापा जवान नहीं···और मीना का मन इन विचारों से भी कुछ घिनिया-सा गया।

भोर का उजियारा हलकी-सी लौ बन रहा था। मीना अपने विचारों से छूटने के लिए खटिया पर से उठ बैठी। उसने विचारों को बदन पर ओढ़े हुए कम्बल की तरह परे किया, और गुसलखाने में जाकर नहाने लगी।

अब रसोई में से भी खटखटाहट आने लगी थी—शायद मां सबके लिए सुबह की चाय बना रही थी।

मीना ने खिड़की से बाहर देखा—दलीप ने कहा था—वह बिलकुल सुबह आ जाएगा, ताकि वे बिलकुल सुबह, सड़कों पर, दिन की भीड़ से भी पहले, दिल्ली से निकल सकें, और सांझ को समय से वापस लौट आएं।

मीना ने जल्दी से कपड़े पहनकर तैयार हो जाना चाहा। अलमारी खोली।

सामने कल पहली बार पहनी हुई साड़ी पड़ी थी, जिसे देखकर पापा ने कहा था—मेरी सब्जपरी-सी बेटी···

वह दलीप की आंखों में भी आज हरी सब्जपरी की तरह लगना चाहती थी। इसलिए वही साड़ी निकालकर पहनने लगी।

शीशे के आगे खड़े होकर साड़ी पहनते हुए उसे खयाल आया, आज वह दलीप के पिताजी से पहली बार मिलेगी। चाहे अभी दलीप ने उन्हें इस तरह की कोई बात नहीं बताई थी, पर फिर भी वह इस तरह की बात को कुछ समझ जाएंगे, उसे गौर से देखेंगे, मन में कुछ परखेंगे भी···और शायद वह भी हंसकर कुछ इस तरह कह दें—मेरी हरी सब्जपरी-सी बेटी···

मीना ने वह साड़ी पहन ली। दलीप अभी आया नहीं था। उसे चाय की कुछ तलब-सी लगी, रसोई में मां के पास चाय का प्याला पीने चली गई।

—वह भी आ गया है?—मां ने केतली से चाय उंडेलते हुए पूछा।

—अभी नहीं, जब आएगा तब और गर्म चाय पी लूंगी।

मां हंस रही थी—पानी की मछली तो होती है, तू चाय की मच्छी है···

—यह चाय की मछली आज कहां चली है?—पीछे से रसोई की ओर आते हुए पापा की आवाज आई।

मीना ने प्याले में से चाय का घूंट भरते हुए, पापा की ओर देखा, कहा—आपसे पहले पूछ तो लिया था। भूल गए?

पापा ने वही फिकरा दोहराया, जो मीना के पहली बार पूछने पर कहा था—अच्छा-शरीफ लड़का है न?

मीना की जगह मां ने जवाब दिया—शरीफ है तभी तो अपने बाप के पास ले जा रहा है···

पापा शायद मीना की साड़ी की ओर देख रहे थे, देखकर कहने लगे—यह तूने कब खरीदी? क्या मां ने खरीद दी है?

मीना ने कल शाम फ्रेंच की क्लास के समय भी वही साड़ी पहनी थी, दलीप ने भी यही बात पूछी थी, पर उस वक्त मीना ने दलीप से जो कहा था, उसे पापा से नहीं कह सकती थी। उस वक्त मीना ने कहा था—हां, मां ने ही खरीद दी है, और कौन खरीदेगा···पर इस वक्त मां सामने बैठी थी, इसलिए यह बात वह पापा से नहीं कह सकी थी। सो कहा—उसने···दलीप ने···

इस वक्त दलीप लफ्ज़ झूठ से जुड़ा हुआ था, इसलिए मीना के गले में अटक-सा गया। कल सुबह मां ने भी जब नई रेशमी साड़ी देखकर पूछा था, तो मीना ने उसे भी यही जवाब दिया था, और उस वक्त भी यह उसके गले में अटक-सा गया था।

पर जिस तरह मां ने उसके गले में अटके हुए लफ्ज को उसकी शर्म समझा

था, इस वक्त पापा ने भी वही समझा। पर मां ने सुनकर कुछ नहीं कहा था, पापा कहने लगे--रिश्ते की बात पक्की हो जाए तो और बात है, पर मीनू ! तुझे यूंही किसी से चीजें नहीं लेनी चाहिए।

मीना को पापा की बात बुरी नहीं लगी—उसने सचमुच दलीप से या किसी से भी कभी कुछ लेना कबूल नहीं किया था। पर इस वक्त वह पापा की नजरों में वह नहीं दिख रही थी जो वह थी।

मीना को अपना-आप कसूरवार-सा लगा, कोई कसूर नहीं था तो भी कसूरवार।

नजर भरकर पापा की ओर देखा—पापा का वही संजीदा और सादा चेहरा था। हमेशा की तरह।

सिर्फ उसका अपना मुंह ही अपनी नजरों में कुछ भटकता-सा लग रहा था···

पापा कह रहे थे—तू आज उसके साथ चली जा, शायद वह अपने बाप को दिखाना चाहता हो···पर फिर उसके साथ इस तरह मत जाया करना···या वह कोई फैसला करे, सीधी तरह ब्याह का फैसला करे।

पापा के लफ्ज़ साफ थे, सीधे थे, और उस फिक्र से जुड़े हुए, जो एक जवान बेटी के बाप को होती है।

और पापा कह रहे थे—मुझे ज्यादा अमीरी नहीं चाहिए, बस लड़का गुजारे लायक कमाता हो और शरीफ हो।

मीना को अचानक उस पापा के लफ्ज़ याद आए—अभी ब्याह की जल्दी मत करना···यह तो सिर्फ लेक्चरार है, मुश्किल से पांच-छः सौ कमाता होगा···

'यह पापा'—'वह पापा' दोनों लफ्ज फिर मीना के अन्दर टकरा गए और उसे अपने अन्दर फिर कुछ टूटता-सा लगा···

वह पापा बहुत अमीर हैं···दलीप की पांच-छः सौ तनख्वाह उनकी नजर में कुछ भी नहीं, इसलिए दलीप भी कुछ नहीं···यह सोचकर मीना के अन्दर जो कुछ टूटा था, उसकी मिट्टी की तरह वह खुद बिखरने लगी।

दलीप उसे उन हद से परे तक अच्छा लगता था, जहां उसकी तनखवाह या किसी जायदाद की गिनती-विनती बहुत पीछे रह जाती थी···और उसे लगा—उस पापा की गिनती-विनती उसे कहीं से दलीप से तोड़ रही थी···

'और यह पापा' मीना उनके सीधे-सादे लफ्ज़ों को मन में दोहराती हुई सोच रही थी—सिर्फ उसकी शराफत को देखना चाहते हैं।

पैसा एक हद तक आकर रुक जाता है···मीना चाय के गर्म घूंट की तरह अपने खयालों को पीती रही—इसलिए अगर इन्सान की पहचान सिर्फ पैसे से करनी हो, तो यह पहचान भी उतनी ही होगी जितना उसका पैसा। पर अगर··· उसकी पहचान उसकी अच्छाई से करनी हो, उसकी शराफत से, तो जैसे इन

चीजों का अन्त नहीं होता, इन्सान का भी नहीं। वह दूर वहां तक दिख सकता है, जहां तक मुहब्बत उसे देखना चाहे···

और मीना को, सामने मूढ़े पर बैठे चाय पीते, 'यह पापा' बहुत अच्छे लगे। यह कमजोर-से साधारण-से पापा—जिनकी जेब में न सौ-सौ के नोटों की साधारण कागजों की तरह गड्डियां थीं न दरवाजे पर खड़ी कार और ड्राइवर था, न अपने कामों के लिए रखी कोई सेक्रेटरी थी···

और मीना को यह पापा, साधारण घर की उस छत जैसे लगे, जो अपने जिस्म के मांस की तरह अपनी होती है। उसका सुख भी अपना होता है, उसकी पीड़ा भी।

और मीना को 'उस पापा' की शान-शौकत—उन तंग चमकीले सितारों-जड़े कपड़ों की तरह लगी जिन्हें पहनकर कोई सो जाए, तो वे सारी रात बदन पर चुभते रहें··

पता नहीं कहां पढ़ा था, किसने लिखा था, मीना को लिखने वाले का नाम याद नहीं आया, पर याद आया कि उसने अपनी जिन्दगी की बातें लिखते हुए लिखा था—मैंने सब कुछ जिन्दगी में अपनी मर्जी से चुना है, सिर्फ मां-बाप अपनी मर्जी से नहीं चुन सकता था···और मीना को एक रुलाई जैसी हंसी आ गई—यह इन्सान की कैसी मजबूरी है! हर इन्सान की, मेरी भी···

पर मीना के मन में एक हसरत-सी आयी—अगर यह चुनाव भी मेरे बस में होता, तो मैं उस पापा को नहीं, इस पापा को चुनती···

और मीना को मां पर एक गुस्सा-सा आ गया···लगा—अभी नहीं पर किसी दिन मां से खूब लड़ूंगी, रोऊंगी, लड़ूंगी···

बाहर मोटर साइकल की आवाज आयी, और मीना ने अपने छोटे भाई को दरवाजा खोलते और कहते सुना—दलीप भैया, मुझे भी मोटरसाइकल की सैर करवाओ···

और फिर दोबारा मोटरसाइकल के चलने की आवाज से पहले दलीप की आवाज सुनाई दी—चल, तुझे एक राउंड लगवा दूं।

मां ने चूल्हे पर चाय का और पानी रखा। पापा कह रहे थे—मीनू, उसके बाप का नाम-पता अच्छी तरह पूछ आना। मैं जरा उसके घर-खानदान का पता लगाऊंगा।

और मीना ने जिस विचार को कुछ दिनों से टाला हुआ था, वह उसके सामने आ खड़ा हुआ—पर मेरा घर-खानदान···?

6

दलीप मीना के छोटे भाई को मोटरसाइकल की एक छोटी-सी सैर करवाकर लौटा। मां ने सबको चाय दी, और एक-एक परांठा भी।

मीना को भूख नहीं थी, पर मां कह रही थी—थोड़ा खा ले। वहां पहुंचते-पहुंचते देर हो जाएगी, रास्ते में क्या खाएगी?

दलीप ने परांठे का ग्रास तोड़ते हुए कहा—मां! यह परांठा कैसा है? मैंने तो कभी ऐसा परांठा नहीं खाया, मुझे तो एक और खिला दो!

मां परांठे की तरह नर्म-सी होकर कहने लगी—यहां पता नहीं इसे क्या कहते हैं। हमारी तरफ तो इसे 'चिकड़ी' कहते थे ··

—चिकड़ी? दलीप सचमुच स्वाद से खा रहा था। मां बता रही थी—आटे में घी गूंथकर, और बेलकर एक बार तवे पर डाल देते हैं, फिर धीमी-धीमी आंच पर सेंककर उसे नीचे उतार लिया जाता है और फिर उसमें और घी डालकर, गूंधकर और बेलकर फिर तवे पर डाल देते हैं, फिर धीमी-धीमी आंच पर सेंकते हैं, फिर नीचे उतारकर फिर और घी डालकर···।

और दलीप ने स्वाद में खाते हुए, मां से धीरे ने कहा—यह मीनू को सिखा दीजिएगा···

मां हंस सी दी, लाड़ से कहने लगी—इसे तो बस किताबें पढ़नी आती हैं, और खाक भी नहीं आता···।

और मीना ने देखा, उसके पापाजी वहीं रसोई में बैठे कुछ प्यार से दलीप की ओर देख रहे हैं···

मीना के मन में कुछ घिर आया—यह एक सुख-सा था, जिसमें कुछ महंगा नहीं था, पर तो भी···पर तो भी शायद यह रहेगा नहीं···

मोटरसाइकल पर बैठने से हवा के कारण बाल बिखर जाते, इसलिए मीना ने अलमारी से एक स्कार्फ निकालकर सिर पर बांध लिया।

स्कार्फ लाल रंग का था। बाहर निकलकर जब मीना मोटरसाइकल के पीछे बैठने लगी, दलीप ने एक बार उसकी ओर देखा, फिर हंसकर धीमे से कहा—लाल परी, जरा साड़ी को संभालकर बैठना।

और मोटरसाइकल की आवाज की तरह मीना के सिर में कुछ जोर से चलने लगा—जिन्दगी का पता नहीं, क्या कुछ इस जिस्म से कसकर लपेटकर चलना पड़ेगा···

मीना का एक हाथ दलीप के कन्धे पर था। मोटरसाइकल की आवाज में न उसकी आवाज दलीप को सुनाई दे रही थी, न दलीप की उसे, पर इसके बिना भी

हाथ को कन्धे का पूरा सहारा था और पैरों के नीचे रास्ता कट रहा था।

मीना के खयाल स्कार्फ की गांठ की उड़ती हुई किनारी की तरह हवा में तैरने लगे—क्या इस तरह जिंदगी की राह नहीं चली जा सकती? न मैं कुछ दलीप को बताऊं, न वह मुझसे कुछ पूछे, सिर्फ अपना हाथ उसके कन्धे पर रखकर हमेशा उसके साथ चलती जाऊं···सारी जिंदगी···

पर यह रात सिर्फ बीस मील की थी···

···और गुड़गांव से थोड़ा-सा आगे जाकर दलीप ने सड़क से दायें हाथ मोटर-साइकल को जब धीमी चाल से मोड़ा, मीना ने सामने कच्ची सड़क से परे एक छोटा-सा बोर्ड लगा हुआ पढ़ा—मलिक फार्म। कच्ची सड़क पर पड़े हुए मोटर-साइकल की तरह मीना को एक धक्का-सा लगा—इस लफ्ज़ 'मलिक' को वह आज याद नहीं करना चाहती थी, पर कुदरत अजीब थी। वह उसे कुछ भी भूलने का वक्त नहीं दे रही थी···

दलीप ने अभी मोटरसाइकल एक जगह रोकी ही थी और मीना अभी पिछली सीट से उतरने ही लगी थी, देखा—सामने एक सौम्य-सा आदमी बड़े प्यार से उसे देख रहा था।

—पिताजी!—दलीप के होंठों पर था, जब पिताजी ने आगे बढ़कर मीना के सिर पर हाथ फेरकर कहा—आओ बेटी!

मीना के ख़्याल हवा में उड़ते स्कार्फ की कन्नी की तरह थम गए और शांत-से हो गए।

यह मार्च का महीना था—पुराने पत्ते झड़ रहे थे, नए निकल रहे थे। दलीप कभी दाईं ओर, कभी बाईं ओर हाथ करके मीना को दिखा रहा था—यह गेहूं के खेत···यह अंगूरों का बगीचा है, पर आजकल इसके पत्ते झड़े हुए हैं, जब इन पर नए पत्ते आएंगे···

पिताजी पूछ रहे थे—बेटी! पहले चाय पिओगी या खाना ही खाओगी···

मीना ने देखा—वहां जरा-सा परे, दो पक्के कमरे थे, जहां एक बरामदे में जल रही चूल्हे की आग किसी छोटे-से शान्त घर की तरह चमक रही थी।

—मेरी मां मुझे चाय की मछली कहा करती है—मीना ने हंसकर बताया और कहने लगी—पिताजी! आज मैं चाय बनाती हूं, रोटी भी मैं पकाऊंगी···

—किसलिए बिट्टो!—वह कह रहे थे—मैंने तुम्हारे लिए चावल पकाए हुए हैं, मटर-पनीर बना रखे हैं···पिछली फसल के मटर हैं बड़े नर्म-नर्म···तुम लोग महीना एक पहले आते तो मैं तुम्हें सरसों का साग खिलाता···।

वह पीछे कमरों की ओर मुड़े तो मीना उनके पीछे खिची-सी चलने लगी। दलीप के दिल में था—पहले खेतों की मेंड़ पर चलते हुए वे दोनों कुछ टहल आएं, पर मीना पिताजी के पीछे चल रही थी, इसलिए दलीप भी पीछे चलता मीना को

चिढ़ाने लगा—चाय की मछली···

पिताजी ने चूल्हे पर चाय के लिए पानी रखकर, और फिर गर्म पानी से धुले हुए गिलासों को फिर से धोते हुए कहा—अब तो तुम दोनों को फ्रेंच काफी आ गई होगी ?

मीना ने कुछ हंसकर दलीप की ओर देखते हुए जवाब दिया—नहीं, पिताजी ! फ्रांस जाए बिना यह जबान नहीं आ सकती, अच्छी तरह नहीं आ सकती।

पिताजी हंसने लगे—जिस तरह हमारे वक्त में जब हम अंगरेजी हांकते थे तो हमारे मां-बाप को जरा भी समझ में नहीं आता था, अब तुम लोग इतनी तो सीख ही गए होगे कि जब फ्रेंच की गिटपिट करोगे—हम लोगों के खाक भी पल्ले नहीं पड़ेगा !

मीना का ध्यान इतना फ्रेंच सीखने या बोलने की बात की ओर नहीं था जितना पिताजी की इस बात की ओर—'तुम लोग जब'—और इसमें वह हमेशा के लिए मीना को और दलीप को जोड़कर बात कहते लगते थे।

मीना को मन में किसी जगह एक सुख हुआ, पर किसी जगह सुख खोता-सा भी लगा—जब···जब वह बात इन सबको पता चलेगी···।

'वह बात' अब हमेशा मीना के साथ चलती थी, साथ सोती थी, साथ जागती थी, और मीना को लगा, वह उससे बहुत थक गई थी···

थकी-सी ने पीठ को दीवार का सहारा दिया।

दलीप पिताजी से चाय का गिलास लेकर उसके आगे करता हुआ बोला—चाय की मछली, जल्दी चाय पी और चल, फिर सारे खेतों का एक चक्कर लगाकर आएं।

पिताजी शायद रह-रहकर उसकी ओर देख रहे थे। मीना के थके हुए मुंह पर गुस्सा-सा आ गया। वह अपने-आपको हंसाती-सी दलीप से कहने लगी—मैं तो सब खेतों को धीरे-धीरे देखूंगी, तुझे शहर जाने की जल्दी है, आज चले जाना, मैं तो यहां पांच-सात दिन रहूंगी—पिताजी के पास···

और साथ ही मीना को एक और बात याद हो आई, जो परसों किसी ने उससे कही थी—पांच-सात दिन सिर्फ मैं होऊं और मेरी बिटिया···

वे पांच-सात दिन···जो किसी ने उसके साथ लन्दन में और पेरिस में गुजारने के लिए कहे थे, और ये पांच-सात दिन···जो उसने यहां खेतों में किसी के साथ गुजारने की बात की थी···मीना का दिल और जोर से धड़कने लगा, और यह पांच-सात दिन की गिनती उसके कानों में बजने लगी···

सामने बैठे दलीप के पिताजी ने कुछ पूछा था, पर मीना को शायद सुनाई नहीं दिया, वह उसी तरह चुप थी, इसलिए उसने अपनी जगह दलीप को जवाब देते सुना—मीना के पापाजी का नाम ? इसके पापाजी का नाम हरबंसलाल है···

और मीना ने देखा—वह एकटक मीना के मुंह की ओर देख रहे थे···

उसका दिल एकाएक घबरा गया। सोचने लगी—यह लोग भी मलिक हैं, वह पापा भी मलिक, जाने इन्हें पहले ही कुछ पता हो · सुना-सुनाया···

और मीना घबराकर उठ बैठी।

दलीप उसके उठने के इन्तजार में था, जल्दी से उठकर कहने लगा—हम खेतों का एक चक्कर लगा आएं···

मीना ने चाय पीते हुए सोचा था कि पिताजी को उनके जूठे गिलास न धोने पड़ें, वह सारे गिलास धोकर जाएगी, पर इस वक्त उन गिलासों की बात भूल चुकी थी—वह जल्दी से खेतों की ओर चल दी।

काफी दूर चली गई, तब उसे लगा दलीप साथ नहीं आया था, अब भी अपने पिताजी के पास खड़ा बात कर रहा था···

उन्होंने दलीप को रोक लिया होगा···मीना झड़े हुए पत्तों वाली अंगूर की बेल की तरह कांपने लगी, "और वह दलीप को बता रहे होंगे···"

पर दलीप दौड़कर उसके पास आ गया, कहने लगा—तुझे यह जगह अच्छी लगी है न, यह 'मलिक फार्म', अब मैं तुझे मीना की जगह मलकी कहा करूंगा··· मलिक फार्म की मालिक मलकी···

और मीना को टूटे हुए पत्ते जैसी एक हंसी आ गई।

7

मीना जब अशोका होटल पहुंची, पापा के कमरे में, पापा की मेज पर मीना का ड्राइविंग लाइसेंस और पासपोर्ट पड़े हुए थे···

मीना हैरान उनकी ओर देखती रह गई···

मलिक साहब हंस रहे थे···

—पर मैंने तो अभी ड्राइविंग का टेस्ट ही नहीं दिया, यह लाइसेंस किस तरह मिल गया? मैं तो टेस्ट से डर रही थी···

—मेरे होते हुए तुम्हें कोई डर नहीं, टेस्ट देने का भी नहीं···

—पर इस तरह···इस तरह कैसे मिल जाता है?

—खरीदकर···

मीना हैरान थी—क्या दुनिया में हर चीज खरीदी जा सकती है?

पापा कह रहे थे—मीना, तुम सचमुच बहुत भोली हो, ड्राइविंग लाइसेंस से लेकर असेम्बली की सीट तक, सब कुछ बिकता है, सिर्फ खरीदने की ताकत चाहिए···

मीना ने हैरान होकर पापा की ताकत की ओर देखा, फिर पूछा—और यह पासपोर्ट ?

—यह भी···

—मैं तो डरती थी···सुना था कि पासपोर्ट के लिए एप्लाई करो, तो वे लोग तहकीकात करने के लिए घर आते हैं।

—मैंने यह बात पहले सोच ली थी, इसलिए तुम्हारे घर कोई तहकीकात करने के लिए नहीं गया, न ही जाने दिया।

मीना दुनिया की इस ताकत के आगे छोटी-सी चीज की तरह चुप कुर्सी पर बैठ गई···

—कोई मिलने आया है, मैं उसे कमरे में नहीं लाना चाहता। मैं नहीं चाहता, तुम्हें कोई भी देखे, इसलिए तुम यहां बैठो, मैं उससे बाहर ही मिल आऊं··

मिस्टर मलिक जाने लगे, तो मीना ने पासपोर्ट की काली ज़िल्द की ओर देखकर घबराते हुए कहा—पर मुझे इतनी दूर, लन्दन या कहीं भी जाते डर लगता है···

—मेरे होते हुए तुम्हें काहे का डर है ?

—वहां नहीं, पर यहां···जो यहां किसी को पता लग गया ?

—लग ही नहीं सकता··'

'लग ही नहीं सकता' बन्द किले जैसे शब्द थे, जो हर खतरे की पहुच से दूर था, पर मीना का मन डूब-सा रहा था—आखिर किलों के भी रास्ते होते हैं, वे किले कहीं से टूट भी सकते हैं···

पापा पूछ रहे थे—तुमने घर में बम्बई जाने की बात तो कर दी थी न ?

—की थी, पर मुझे पता है कि···

'कि' के आगे वह कहने लगी थी 'पापा', पर यह लफ्ज़ हमेशा की तरह गले में अटक गया था, और उसने उसकी जगह 'वह' कहकर चला लिया था—वह नहीं मानेंगे···

—बेटियां कभी जिद भी पकड़ लेती हैं···

मिस्टर मलिक यह कहकर चले गए, पर यह सलाह मीना की आंखों में कुनकुना-सा पानी बन गई—बेटियों की तरह किससे जिद करूं ? एक पापा को कहती हूं, पर वह जानती हूं वह पापा नहीं, दूसरे को ऊंची आवाज से पापा भी नहीं कह सकती।

कमरे में टेलीफोन की घंटी बजी···

मीना ने आवाज सुनी, पर टेलीफोन उठाया नहीं। वह अभी भी पासपोर्ट की जिल्द की ओर ऐसे देख रही थी जैसे वह उसके अन्दर लिखे हुए लफ्ज़ 'लन्दन' में हो, इस कमरे से बहुत दूर।

टेलीफोन की घंटी बजे जा रही थी···

चेतना को एक झटका-सा लगा, मीना ने टेलीफोन उठा लिया, कहा—हैलो !

आवाज आई—कामिल दिस साइड, गेट मी राणाजी।

—रौंग नम्बर—मीना ने कहा तो फिर आवाज आई—इज़ दिस फाइव नाइन ?

मीना ने कमरे का नम्बर याद किया, कहा—हां, फाइव नाइन।

उधर से फिर आवाज आई—गेट मी राणाजी, दिस इज़ अर्जेंट।

मीना ने कुछ खीझकर जवाब दिला—देअर इज़ नो राणाजी, रौंग नम्बर।

उस तरफ कुछ खामोशी-सी छा गई, फिर धीमी-सी आवाज आई—आई सी···यू आर ए न्यू बर्ड—और टेलीफोन बन्द हो गया।

लोग टेलीफोन पर कैसे 'टीज़' करते हैं, मीना को और खीझ हुई। याद आया, उसकी एक सहेली बताया करती थीं कि रात को रोज कोई बारह-एक बजे टेलीफोन करके उससे कहा करता था—अजी एक गाना तो सुना दीजिए···

बैरा कमरे में आकर ऐपिल जूस का गिलास रख गया, नीचे से शायद पापा ने भिजवाया था। मीना को इस नई खीझ से सचमुच प्यास-सी लग आई थी। वह कुछ आराम से कुर्सी पर बैठकर ऐपिल जूस पीने लगी···

8

नौ तारीख···नौ तारीख···

मीना को लगता, जैसे चीनी लोग बर्फ के पानी की एक-एक बूंद लगातार किसी के सिर पर डालकर उसे कुछ दिनों में मार देते हैं—यह नौ तारीख भी लगातार टिप-टिप उसके सिर पर बज रही थी, और वह उसके नीचे धीरे-धीरे मर रही थी···

पापा ने कहा था—हम नौ तारीख की सुबह हवाई जहाज से लन्दन चलेंगे···

मीना ने लन्दन के म्यूज़ियम और पेरिस की आर्ट गैलरियों के बारे में जो कुछ पढ़ा या सुना था, उसकी कल्पना करके खुश होना चाहा, पर मन में पल-भर के लिए आई खुशी भी मन में टिकती नहीं थी···

उसने घर मां से, कई दिन पहले कहा था कि वह कुछ दिनों के लिए बम्बई अपनी सहेली के पास जाएगी, और मां ने उसकी बात नहीं मानी थी, पर आजकल उसकी दादी गांव से आई हुई थी और उसके कहने पर कि लड़की अब सयानी है,

जाने भी दे अगर इसका जी करता है—मां कुछ मान-सी गई थी।

पर मीना से अपना झूठ अपने कानों से नहीं सुना जा रहा था···

हरबंसलाल पापाजी ने 'नहीं' जैसी 'हां' कर दी थी, पर वह खुश नहीं थे···

वैसे वह इन दिनों एक बात से बड़े खुश थे कि दलीप ने उनके दफ्तर आकर, अकेले में उनके पास बैठकर, उनसे उनकी बेटी का हाथ मांगा था और कहा था कि कुछ दिनों में उसके पिताजी खुद आकर उनसे मिलेंगे।

देसराज पापाजी इन दिनों बहुत खुश थे कि आखिर उनकी बेटी कुछ दिनों उनके पास रहेगी, चाहे सिर्फ कुछ दिन।

—तुम्हें वहां गर्म कपड़ों की जरूरत होगी—उन्होंने खुद ही पूछा था।

यह खयाल मीना को भी था, और उसने कहा था—पर बम्बई जाने के नाम पर तो मैं घर से गर्म कपड़े नहीं ला सकती।

उन्होंने मीना के लिए गर्म कपड़े यहां बाजार से खरीद लिए थे, और उसके लिए एक नया सूटकेस लेकर वे कपड़े वहीं होटल में रख लिए थे, और कहा था—बाकी मैं तुम्हें लंदन पहुंचते ही खरीद दूंगा। वैसे तो वहीं खरीदूंगा, ये तो यूंही रास्ते के लिए हैं।

यह सब कुछ एक सपने जैसा था, पर मीना हर बात पर एक गहरे सोच में पड़ जाती थी, कपड़ों के बारे में भी—वापस वे घर कैसे लाऊंगी, क्या बताऊंगी, कहां से लाई हूं?

पहले सिर्फ एक साड़ी थी—उसके बारे में कह दिया था कि दलीप ने लेकर दी है, पर अब···

सोचें खत्म नहीं होती थीं, पर नौ तारीख में जितने दिन रह गए थे, वे खत्म हो रहे थे।

एक बार फिर घबराकर मीना ने देसराज पापा से कहा था—आप अकेले चले जाइए। मेरा जी घबराता है।

पर उन्होंने जब कहा था—अच्छा, मुझे तो जाना ही पड़ेगा, कुछ काम है, मैंने सोचा था···मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती, तुम साथ होगी तो मेरा खयाल रखोगी···वैसे भी मुझे इतनी खुशी होगी कि शायद मैं बीमार ही न होऊं—तो मीना को उनकी उदासी के सामने अपनी घबराहट बड़ी छोटी लगने लगी थी।

उसने घर से—बम्बई जाने के नाम पर एक छोटा-सा सूटकेस तैयार कर लिया था, पर अब उसके सामने एक और चिन्ता थी—उसका छोटा भाई संदीप कह रहा था कि वह स्टेशन जाकर उसे गाड़ी में बिठा आएगा।

देसराज पापा ने घर में दिखाने के लिए उसे बम्बई का एक टिकट खरीद दिया था, पर स्टेशन पर जाने के लिए जो उसके भाई की जिद थी, उसको टालने की सूरत नजर नहीं आ रही थी।

मीना ने कसैले-से मुंह से एक और झूठ बोला—किसीको स्टेशन पर जाने की जरूरत नहीं, दलीप उसे खुद जाकर गाड़ी में बिठा आएगा।

फ्रेंच क्लास से कुछ दिन की छुट्टी लेते हुए उसने दलीप से भी बम्बई जाने की बात कही थी, पर उसकी ओर से उसे आजकल कोई फिक्र नहीं थी, क्योंकि पापा ने उससे खुद कहा था कि आजकल वह घर न आए। आजकल दादी आई हुई थी। ब्याह से पहले लड़के का इस तरह घर आना उसे पसन्द नहीं था।

सो मीना भाई और मां से यह कहकर निश्चित हो गई कि वह स्कूटर से दलीप के पास चली जाएगी और आगे वह स्वयं जाकर उसे गाड़ी में बिठा देगा···

देसराज पापा कितने दूरन्देश हैं—मीना को कुछ फिक्रों की ओर से तसल्ली-सी हो गई, तो खयाल आया—डीलक्स शाम को साढ़े चार बजे जाती है, पर उन्हें बम्बई का फ्रन्टियर मेल का टिकट लेकर दिखाने के लिए दिया था, जो सवेरे नौ बजे जाती है—उसी समय जब लन्दन वाला प्लेन जाता है···

सिर्फ जिस दिन सवेरे सात बजे घर से जाना था, उससे पहली रात एक बात की उसे कुछ हैरानी-सी हुई, पर यह सोचकर कि कल रास्ते में देसराज पापाजी से पूछ लूंगी, उसने बात पर बहुत ध्यान नहीं दिया।

रात को खाने के बाद जब राधा अभी चौके को संभाल रही थी, और मां अभी चौके में बैठी हुई थी, दादी भी वहां थी, न जाने किस तरह पुराने बीते हुए समय की बातें छिड़ गईं।

मीना पहले से ही कुछ सोचती हुई-सी बैठी थी, क्योंकि मां उसके लिए कल गाड़ी में सफर के लिए खाने का प्रबन्ध करने में लगी थी और आलू उबालते हुए कह रही थी—लड़की ऐसे ही रास्ते में जाने कैसा खाना खाएगी, मैं आलू के परांठे बनाकर साथ रख दूंगी, ये सूखते नहीं—और मीना को मां की इस चिन्ता के आगे अपना झूठ अच्छा नहीं लग रहा था···

फिर मां और दादी की बातों में न जाने किस तरह—किस समय—देसराज का नाम आ गया।

मीना को दादी के मुंह से यह नाम सुनने की कभी आशा नहीं थी, पर वह कह रही थी—मुझे तो यह पेट का जाया-सा लगता था, निगोड़े ने आकर सूरत भी नहीं दिखाई···

और मां कह रही थी—बस, इस लड़की को एक बार ही सपने में दिखाई दिया है, और किसीको तो उसका नाम-निशान भी मालूम नहीं है।

—हमारे समय में लोग कौल निभाते थे—दादी कह रही थी—यह मेरा वसा कुछ तेज मिजाज का था। मैं कभी दुखी होती थी तो देसू कहता—मां, तुम फिक्र मत करो, तुम्हारे एक नहीं दो बेटे हैं। वह तुम्हारी सेवा नहीं करेगा तो मैं जो हूं···

खैर, ये बातें मीना के लिए नई नहीं थीं, उसकी अच्छाई की बातें, पहले मां भी किया करती थी, राधा भी, पर जो नया था, वह यह कि दादी कह रही थी—एक बरस का फोहे जैसा बालक छोड़कर जब उसकी औरत गुजर गई थी, वह तो जैसे तन-मन से साधु ही हो गया था···

सो, देसराज पापा ने पहले कभी ब्याह भी किया था और उनका कोई पहला बच्चा भी था···न जाने लड़की या लड़का···और मीना हैरान थी कि यह बात उन्होंने कभी नहीं बताई थी, न और किसी लड़के या लड़की का जिक्र किया था।

शायद वह बच्चा जीता न रहा हो···मीना को कुछ ऐसा भी खयाल आया, पर उसने सोचा—कल रास्ते में उनसे पूछूंगी।

एक यह खयाल भी आया—शायद मेरी कोई बहन या भाई कहीं जीता ही हो, पर पापा ने सिर्फ इसलिए बात न की हो कि वह मेरा सगा भाई या बहन नहीं था···और उसे हंसी-सी भी आई, जो भी है, अगर जीता है तो मेरा आधा भाई तो हुआ ही, या आधी बहन, जैसे यह मेरा आधा भाई संदीप···

और मीना सवेरे के सफर के बारे में सोचते हुए रसोई से उठकर चली गई।

9

मीना सवेरे घर से होटल, और वहां से एयरपोर्ट ऐसे गई, जैसे अपनी आंखों से अपना बदन चुराया हो।

घर से एयरपोर्ट तक सारे रास्ते पहचाने हुए लग रहे थे, सिर्फ अपना-आप अपने से पहचाना नहीं जा रहा था···

पापा ने उसके लिए एक जीन्स और स्वेटर खरीदा था, जो उसने होटल में, पहने हुए कपड़े बदलकर, पतली-सी साड़ी की जगह, पहन लिया था। शायद इसलिए भी सब कुछ नया और अजीब लग रहा था···

एयरपोर्ट की भीड़ में, दायें-बायें दूर परे कई बार उसे भुलावा-सा हुआ—जैसे दलीप खड़ा हो। ध्यान से देखने पर भुलावा दूर हो जाता था, पर हर बार वह कांपकर रह जाती थी।

उसे लगा—उसका कुछ था, उसके तन-बदन का कुछ, जो वहां—एयरपोर्ट के बाहर—इसी शहर में रह गया था···और दलीप, जो उसके साथ नहीं था, वहीं से थोड़ा-सा उसके साथ जा रहा था···

यह एक बिलकुल नया एहसास था, जो यहां एयरपोर्ट पर खड़े हुए मीना को हुआ। लगा—वह दलीप को अपने अन्तरतम से ऐसा प्यार करती थी कि वही उसकी जिन्दगी का सबसे बड़ा सच लगता था।

और इस एहसास के साथ ही उसे पहली बार एक बहुत बड़े गुनाह का एहसास हुआ कि वह सबसे बड़े सच के साथ एक सबसे बड़ा झूठ बोल रही है···

अन्दर कस्टम से होकर जाने का समय आ गया।

पूछा गया—सामान में, या पर्स में, या बक्स में कोई कीमती चीज है? कोई जेवर, घड़ी, कैमरा?

मीना की उंगली में एक सोने की अंगूठी थी, और हाथ में एक सोने की चूड़ी, वह लिखा दी, पर मन में कुछ और भी आया—एक रिश्ता है, बड़ा कीमती, बाप और बेटी का, जो अपने साथ लिए जा रही हूं, पर किसीको बता नहीं सकती, कानून को भी नहीं···

उसके पासपोर्ट पर लिखा हुआ उसके पापा का नाम हरबंसलाल इस समय, मीना के विचार में, शर्मिन्दा-सा हो रहा था···

हवाई जहाज में उसकी सीट पापा के बिल्कुल पास थी, पर खिड़की की तरफ नहीं थी। खिड़की के पास की सीट पापा की थी। वह अपनी सीट पर बैठने लगी तो पापा ने अपनी खिड़की वाली सीट उसे दे दी।

हवाई जहाज ने उड़ान भरी तो खिड़की वाली सीट पर बैठे हुए खिड़की से बाहर देखकर मीना को धरती अपने से बहुत दूर छूटती जान पड़ी···

हवाई जहाज में पहला एहसास हमेशा अकेलेपन का होता है—मीना को किसी किताब के ये शब्द याद हो आए···

और साथ ही याद आया कि उसे पापा से वह रात वाली बात पूछनी थी···

पूछा—पापा! आपने कभी···मां से मिलने से पहले ब्याह किया था?

पापा, उदास, खिड़की के बाहर, घिरते और बिखरते हुए बादलों को देखने लगे···

—सॉरी पापा! मुझे मालूम है आपके एक बच्चा भी था, और उसकी मां भी, पर वह जवानी में ही मर गई थी···मैं सिर्फ उसके बारे में पूछना चाहती थी—अपने भाई के बारे में···

—वह भी···पापा ने सिर्फ इतना ही कहा और चुप हो गए।

मीना को लगा—उसने पापा के किसी गहरे घाव पर हाथ रख दिया था··· उनका ध्यान दूसरी तरफ करना चाहा, पर कुछ भी सूझ नहीं रहा था।

फिर शायद पापा ने स्वयं ही उसके मन की तकलीफ को समझ लिया, अपने बैग से एक एलबम-सी निकाली और मीना को लन्दन की तस्वीरें दिखाने लगे—यह हाउस ऑफ पार्लियामेंट के उत्तर की तरफ क्लाक टावर···यह थेम्ज नदी का दृश्य···यह पूरे लन्दन का एरियल व्यू···यह बर्कले चौक···यह ब्रिटिश म्यूजियम

की गैलरी···यह रोमन वाल का हिस्सा···यह बकिंघम पैलेस का पूर्वी हिस्सा··· यह सेंट पाल का कैथेड्रल···

एयर होस्टेस नाश्ता देते हुए पूछने लगी—चाय या कॉफी? तो पापा ने अपने बैग में से एक छोटा-सा पैकेट निकालकर उसे देते हुए कहा—चाकलेट प्लीज!

और वह मीना को बताने लगे—सेण्ट्रल और दक्षिणी अमेरिका में, कहते हैं, कोका का पेड़ चालीस फुट ऊंचा होता है। कोलम्बस अपनी यात्रा में, 1502 में, इसके दाने स्पेन ले गया था, जहां इसकी ड्रिंक तैयार की गई थी। यह ड्रिंक तैयार करने का नुस्खा स्पेन वालों ने कई सौ साल तक छुपाए रखा, पर फिर धीरे-धीरे यूरोप में यह मालूम हो गया। कहते हैं 1657 में फ्रांस के किसी आदमी ने पहली बार लन्दन में इसकी दुकान खोली, पर यह इतनी महंगी होती थी कि बहुत अमीर आदमी ही इसे पी सकते थे।

एयर होस्टेस नाश्ता ले आई थी और दो गिलास चाकलेट भी। चाकलेट का घूंट भरते हुए पापा कहने लगे—फिर अमीर शहरों में चाकलेट हाउस खुले और चाकलेट क्लब भी। 1700 में अंग्रेजों ने इसमें दूध मिलाकर इसे और स्वादिष्ट बना दिया, पर इम्पोर्ट ड्यूटी इतनी लगाई हुई थी कि यह बहुत ही महंगी थी··· यह तो 1853 में ड्यूटी कम हुई, तो सस्ती हुई···

मीना चाकलेट पीते हुए चाकलेट का इतिहास सुनती रही, पर साथ ही, भीतर ही भीतर, एक विचार बड़ी दूर तक चला गया—एक दिन आएगा, न जाने कब, शायद बहुत बरस बाद, जब वह दलीप के पास बैठकर उसे होले-होले सुनाएगी—मैं जब इक्कीस बरस की थी, एक बार लन्दन गई थी···

हवाई जहाज को कुछ हिचकोले-से लगे, ऐलान हुआ—मौसम खराब है, इसलिए सेफ्टी-बेल्ट बांध ली जाए।

मीना ने सबकी तरह सेफ्टी-बेल्ट बांध ली, पर कुछ देर बाद मन को भी कुछ हिचकोले-से आने लगे—अगर हवाई जहाज गिर पड़े···सबकी लाशें न जाने कहां-कहां पड़ी होंगी···मेरी भी···सवेरे अखबार में खबर छपेगी, पर कोई भी इस खबर को पढ़कर नहीं सोचेगा कि मैं मर गई···सब लोग बम्बई से मेरे आने का इन्तजार करते रहेंगे···

और मीना के अन्दर कुछ बादलों की तरह घिरने लगा—कुछ दिन इन्तजार करेंगे···फिर घबराएंगे···फिर ढूंढ़ेंगे···और फिर···फिर न जाने क्या सोचेंगे···

कुछ देर बाद ऐलान हुआ—अब मौसम ठीक है, सेफ्टी-बेल्ट खोल लें।

दिल्ली में, होटल से चलते हुए, पापा ने एक दवा 'जेवरल' उसे दी थी, और कहा था—मुझे खाना याद नहीं रहता, पर डाक्टर ने कहा है, दिन में तीन बार इसे जरूर खाना है, हर खाने के बाद। अब ठीक वक्त से खिलाना तुम्हारा जिम्मा है···

मीना ने अब नाश्ता खत्म होने पर याद से वह शीशी अपने पर्श से निकाली, और उसमें से लाख के रंग की एक गोली निकालकर पापा को दी।

पापा ने गोली खा ली, फिर अचानक हंसने लगे, कहने लगे—तुम्हें एक बात बताना तो भूले ही जा रहा था···

—क्या ?

—मैंने दिल्ली में तुम्हें किसी दोस्त से इण्ट्रोड्यूस नहीं कराया, सोचता था, फिजूल में बात फैल जाएगी···

—पर सोफिया और राबर्ट जानते हैं···

—उनकी और बात है, वे मेरे नौकर हैं···पर यहां लन्दन में शायद तुम्हें एक दोस्त से इण्ट्रोड्यूस कराऊं···शायद हम उसके घर भी जाएं, वहां कहीं गलती से अपना नाम मीना शर्मा न बता देना···

—क्यों ?—मीना कुछ हैरान हो गई।

मिस्टर मलिक फिर हंसने लगे—मैं मलिक, तो तुम मेरी बेटी शर्मा किस तरह हो गईं ?

मीना को खुद भी हंसी आ गई, कहने लगी—वैसे तो मैं अपना नाम मीना ही लिखती हूं, साथ कुछ भी नहीं लिखती या कहती, फिर भी ध्यान रखूंगी···

—बस, सिर्फ मीना या मीना मलिक। ध्यान रखना।

मीना को पासपोर्ट पर लिखे हुए नाम का ध्यान आया, वहां मिस मीना शर्मा लिखा हुआ था, कहने लगी—पर पासपोर्ट पर लिखा हुआ है···

—हां—मिस्टर मलिक कहने लगे—जी तो करता था वहां भी बदलवा दूं, पर साथ ही तस्वीर होती है न, बाद में अगर कभी वैरीफाई करे तो तुम्हें कोई तकलीफ न हो···पर पासपोर्ट की कोई बात नहीं, वह कोई दोस्तों को दिखाना है ?

और मीना ने धीरे से अपने होंठों में अपना नया नाम दुहराया—मिस मीना मलिक !

10

लन्दन के हवाई अड्डे पर मीना ने देखा, पापा का एक दोस्त उन्हें लेने के लिए आया हुआ है।

—यह मेरी बेटी, इकलौती बेटी मीना !—पापा ने जब मीना को उससे परिचित कराया तो वह अपने जेहन में अपने नाम के साथ शर्मा शब्द हटाकर मलिक शब्द जोड़ रही थी। शायद इसलिए उसकी आंखें इतना बाहर की ओर

नहीं देख सकीं, जितना अन्दर की ओर, और उसका मुंह कुछ उतरा हुआ लगता था।

पापा मीना की ओर देखते हुए कह रहे थे---यह मेरा सबसे अजीज दोस्त है राजिन्दर गिल।--पर वह राजिन्दर गिल मीना से हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कह रहा था—बड़ी प्यारी लड़की है, पर सफर में थक गई है---ऐसा लगता है···

बाहर राजिन्दर गिल की गाड़ी खड़ी थी। मीना और पापा जब अपना सूटकेस रखवाकर गाड़ी में बैठ गए तो पापा ने पूछा—क्यों भई गिल, कौन-सा होटल ठीक करोगे?—और साथ ही कहने लगे—यह होटल शब्द पुरानी फ्रेंच के 'ओस्टल' शब्द से आता है, गिल! मैंने शायद तुम्हें नहीं बताया कि मेरी बेटी फ्रेंच भी जानती है।

—बहुत खूब! --गिल ने गाड़ी ड्राइव करते हुए कहा, और गाड़ी के शीशे में से, पिछली सीट पर बैठी हुई मीना की ओर देखते हुए कहने लगा—मैं तो मीना का चाचा हुआ न?—और बराबर की सीट पर बैठे मलिक साहब से कहने लगा---जनाब, आपको होटल में रहना है तो आप रहें, पर हमारी बेटी होटलों में नहीं रहेगी। लन्दन में चाचा का घर हो और बेटी होटलों में रहे? नहीं, यह नहीं हो सकता।—गिल कह रहा था कि मीना घबरा-सी गई, सोचने लगी---नहीं, जहां पापा रहेंगे, मैं वहीं रहूंगी। पर गिल कह रहा था—पहले सीधे घर ही चलिए। घर पर तो इसकी चाची और बहनें इसका इन्तजार कर रही हैं।

मीना के मन को कुछ तसल्ली-सी हुई। वह कार के शीशे में से बाहर लन्दन की सड़कों को देखने लगी।

पापा भी उन सड़कों की ओर देखते रहे, फिर पीछे की ओर, पिछली सीट पर बैठी हुई मीना की ओर देखकर कहने लगे—पुराने ब्रिटेन में रोमन सड़कों पर सिर्फ सराएं होती थीं---इन्ज। तुम्हें मालूम है न कि यह 'इन' शब्द भी साधारण आई-एन इन से बना है—मतलब था भीतर जाने से। बाद में आई-डबल एन हो गया।—और गिल की ओर देखते हुए कहने लगे—न जाने क्यों, मुझे सरायों का युग बहुत आकर्षित करता है। काश, मैं उस युग में पैदा हुआ होता---मुझे ये कारें-शारें फिजूल लगती हैं, घोड़ों पर चढ़कर सफर करता, तब कुछ बात भी थी···

गिल हंसने लगा---हुजूर, आप अब भी बादशाह हैं, उस समय भी होते तो न जाने क्या होते···

घर पहुंचे तो पत्नी से परिचय कराते हुए गिल ने मीना से कहा---यह तुम्हारी चाची है—और अपनी पत्नी से कहने लगा—यह मेरे सबसे प्रिय मित्र हैं मलिक साहब, और यह इनकी बेटी—घर में दो छोटी लड़कियां थीं, पर एक बड़ी भी थी, मीना से कुछ ही छोटी। वह सुरिन्दर थी, जिसे सब प्यार से सुरा पुकारते थे।

वह मिनटों में मीना से हिल-मिल गई।

चाय का प्याला पीते हुए गिल की पत्नी ने मीना से पूछा—परसों तुम्हारे पापा का फोन आया था, हमें यह तो पता था कि तुम आओगी, पर तुम्हारी माताजी नहीं आयीं ? उन्हें भी साथ ले आते···

मीना ने कुछ परेशान-सी होकर पापा की ओर देखा, और उसकी जगह मलिक साहब ने ही जवाब दे दिया—इस बार इसे सैर करा दूं, उसे फिर कभी सही···

गिल की पत्नी सीधी-सादी साधारण औरत मालूम पड़ती थी, जवाब में कहने लगी—बस, यही आप मर्दों की अजीब बात है, खुद सारी दुनिया घूम आएंगे और सोचेंगे कि घरवाली घर के बाहर न जाए—और अपने पति की ओर देखते हुए कहने लगी—यह भी हमें यहां कहां बुलाते थे ! चाहते थे, मैं लड़कियों को लेकर वहां गांव में ही बैठी रहूं···मैं तो एक बरस हुआ लड़-भिड़कर आ गई हूं, अब बताओ, इन्हें क्या तकलीफ है ?

वह शायद और भी दुख-सुख की बातें करती, पर मलिक साहब कुरसी से उठ खड़े हुए, कहने लगे—चलो भई गिल, अब हमें किसी अच्छे-से होटल में पहुंचा दो।

मीना भी उठने लगी तो सुरा ने मीना का हाथ पकड़कर कहा—तुम यहां रह जाओ, हमारे पास, मैं तुम्हें बड़ी सैर कराऊंगी।

मीना ने पापा की ओर देखा, वह कह रहे थे—तुम्हारी मर्जी है, मीना !

गिल की पत्नी मीना की बांह पकड़कर बोली—लो, अपना घर जो है, जवान-जहान लड़की होटलों में क्यों रहे ! तुम यहीं रहो जी।

मीना ने फिर पापा की ओर देखा, वह कहने लगे—रह लो दो दिन, मैं कुछ काम-काज खतम कर लूं, फिर खाली होकर तुम्हें सैर कराऊंगा···

और मीना कुछ चुप-सी फिर उसी कुर्सी पर बैठ गई जिस पर से उठी थी।

गिल की पत्नी उससे बैठते समय पूछने लगी—सुनाओ, तुम्हारे कितने भाई-बहन हैं ?

मीना का मन परेशान हो गया। उसे संदीप याद आया और उसके होते उसके मुंह से यह नहीं निकल सकता था कि उसके कोई भाई-बहन नहीं हैं। इसलिए कुछ परेशान-सी हाथ में लिए हुए पर्स को खोलकर उसमें ऐसे देखने लगी जैसे कुछ ढूंढ़ रही हो।

गिल से परिचय कराते समय पापा ने कहा था—मेरी इकलौती बेटी।—उनके मुंह से यह ठीक था, पर मीना सोच रही थी, मेरे मुंह से यह नहीं निकल सकता कि मेरे कोई भाई नहीं···

गिल, मलिक साहब से कह रहा था—जरा देर बैठिए, मैं फोन से पता कर

लूं कि किस होटल में अच्छा कमरा मिल सकता है—पर उसने शायद अपनी पत्नी की वात भी सुन ली थी, कहने लगा—अभी तुम्हें बताया जो था कि यह मलिक साहब की इकलौती लड़की है···

मीना जवाब देने से बच गई। गिल बराबर के कमरे में फोन करने चला गया तो मीना को पर्स में टटोलने से दवा की वह शीशी मिल गई जो उसे याद से पापा को दिन में तीन बार एक-एक गोली खिलानी थी। शीशी को पर्स से निकालकर उसने पापा को देते हुए कहा—पापा, यह आपकी दवा।

पापा को भी कुछ याद आ गया, उन्होंने जेब में से बटुआ निकालकर तीस पाउड मीना को दिए। कहा—यह अभी रखो; फिर बैंक से निकलवाकर तुम्हें और दे दूंगा।

मीना ने नोट ले लिए, पर उन्हें पर्स में रखते हुए सोचने लगी—मैं क्या खरीदूंगी ? जो कुछ भी खरीदूंगी, उसे घर किस तरह ले जाऊंगी···

11

उस दिन दोपहर बाद सुरा मीना को शहर ले गई—आक्सफोर्ड स्ट्रीट की दुकानें मीना को चकाचौंध करती रहीं। सुरा ने 'मार्क एण्ड स्पेन्सर' के अन्दर जाकर कुछ नई तरह के स्वेटर और स्लैक्स मीना को दिखाए, पर मीना ने खरीदा कुछ नहीं। उसे एक अजीव बेवसी का एहसास हो रहा था—जिन्दगी में पहली बार यूरोप आई हूं, शायद आखिरी बार—पर किसी के लिए एक छोटी-सी निशानी तक भी नहीं ले जा सकती···

एक दुकान में अजीवोगरीब तस्वीरें थीं। और उनमें एक कैलेंडर था, जिसमें एक सुन्दर स्त्री इस तरह बैठी हुई थी—घुटनों के बल—कि उसके एक पैर का तलवा भी सामने की ओर था, और सारी पीठ नंगी थी। तलवे पर साल लिखा हुआ था, और सारी पीठ पर साल की तारीखें। मीना से रहा न गया, उसने दलीप के लिए एक पाउंड का वह कैलेंडर खरीद लिया।

सोचा—चाहे यही कहना पड़े कि यह कैलेंडर उसने बम्बई में खरीदा था, पर वह इसे खरीदेगी अवश्य। और साथ ही उसे खयाल आया कि इसी तरह मैं संदीप के लिए, अपने लिए, मां के लिए कुछ तो खरीद ही सकती हूं। कह दूंगी, सब कुछ बम्बई से खरीदा है। सुना हुआ है कि बम्बई में स्मगलिंग की इतनी चीजें मिलती हैं कि दुनिया का कुछ भी खरीद लो···

और मीना ने सुरा के साथ लौटकर कुछ दुकानों में जाकर कुछ स्वेटर, स्लैक्स और मफलर खरीदे।

दूसरे दिन गिल चाचा से पापा के होटल का नम्बर लेकर फोन किया। वह कह रहे थे कि दो दिन वह बहुत व्यस्त रहेंगे। पर मीना अब सुरा के साथ खुश थी, इसलिए वह ब्रिटिश म्यूजियम देखने चली गई।

उस दिन ब्रिटिश म्यूजियम भी देखा, और शाम को सुरा के साथ एक फिल्म भी देखी, अगले दिन आर्ट गैलरी देखी, चार्ल्स डिकेन्स का म्यूजियम देखा, और शाम को पापा को फोन किया। वह कह रहे थे कल वह जरूर आएंगे और उसे वह जगह दिखाएंगे जहां शेर खुले रखे जाते हैं।

अगले दिन पापा आए। उस दिन गिल ने काम पर से छुट्टी ले ली थी। वह मीना, सुरा और छोटी दोनों लड़कियों को लेकर वह जगह देखने के लिए गए जहां शेर खुले फिरते थे।

मीना के लिए वह सबसे अजीब अनुभव था --ऊंचे लोहे के तारों की जालियां अवश्य थीं, पर अन्दर एक पूरा जंगल फैला हुआ था, जिसमें कई शेर खुले फिर रहे थे।

यहां केवल एक आदेश था कि कार किसी जगह खड़ी न की जाए, धीमी भले ही कर ली जाए, और कार के सारे शीशे बिलकुल बन्द रखे जाएं।

मीना को हंसी-सी आ गई—शेर खुले फिर रहे हैं, सिर्फ मनुष्य कारों के पिंजड़ों में बन्द हैं···

एक शेर धीरे-धीरे चलता हुआ जब धीमी गति से चल रही कार के शीशे के पास आ गया---शीशा चाहे बन्द था, पर शेर की दहशत, शेर की दहशत होती है—मीना ने, जो पिछली सीट पर बैठी हुई थी, अगली सीट पर बैठे हुए पापा के कन्धे को कसकर पकड़ लिया।

पापा हंस पड़े। दाहिने कन्धे पर पड़े मीना के हाथ को उन्होंने अपने बाएं हाथ से दुलारते हुए कहा—माई इन्नोसेंट बर्ड।

मीना ने कुछ चौंककर अपना हाथ पापा के कन्धे पर से उठा लिया।

कानों में एक खड़का-सा हुआ---वहां दिल्ली में, पापा के होटल में जब एक फोन आया था, गलत नम्बर था, पर उस फोन करने वाले ने फोन बन्द करने से पहले कहा था—न्यू बर्ड···

न्यू बर्ड···इन्नोसेंट बर्ड···

मीना को किसी अपरिचित व्यक्ति से सुने हुए ये शब्द इतने बुरे नहीं लगे थे, जितने पापा के मुंह से।

वापसी पर सारे रास्ते मीना कुछ चुप-सी रही। पर गिल के घर जब गिल और पापा, मीना, सुरा और छोटी लड़कियों को उतारने लगे तो मीना ने एक ओर को होकर पापा से कहा—मैं यहां बहुत दिन नहीं रहूंगी, मेरा जी घबराता है।

—तुम्हें होटल में कमरा ले दूं?—पापा ने पूछा।

—नहीं, मैं वापस जाऊंगी···

—अभी तो मुझे तुमको पेरिस दिखाना है···

—नहीं, मैं वापस जाऊंगी···

पापा कुछ देर सोचते रहे, फिर कहने लगे—अच्छा, जैसा तुम चाहो।—और बटुए में से बीस पाउंड निकालकर मीना के पर्स में डाल दिए। कहा—कुछ शॉपिंग कर लेना।

मीना कुछ आश्वस्त-सी, अन्दर, सुरा के कमरे में चली गई। गिल के इस मकान में नीचे दो कमरे थे—एक बैठक, एक सोने का कमरा, और लकड़ी की छोटी-सी सीढ़ियां चढ़कर दो कमरे ऊपर की मंजिल पर थे, एक सुरा का, एक दोनों छोटी लड़कियों का। मीना सुरा के कमरे में रहती थी।

सुरा शायद गुसलखाने में थी। मीना अकेली कमरे में खड़ी, कमरे की पिछली खिड़की में से, मकानों के पिछवाड़े के बगीचे देखने लगी।

बरावर के मकान के बगीचे में एक छोटा-सा बच्चा फूलों से खेल रहा था, पर शाम की ठण्ड उतर आयी थी, और उसकी मां उसे एक स्वेटर पहनाते हुए, जबर-दस्ती उठाकर अन्दर कमरे में ले जा रही थी।

न जाने क्यों, मीना को कमरे में खड़े हुए भी बड़ी ठण्ड लगने लगी···

12

आर्ट गैलरी बहुत बड़ी थी, पिछली बार मीना पूरी नहीं देख सकी थी। आज उसके कहने से सुरा उसे फिर वहां ले गई।

बाहर वह चौक था जहां लोग कबूतरों को हथेली पर चुगा चुगवाते हैं। मीना और सुरा भी कितनी ही देर तक इस चौक में खड़ी रहीं। देखा—एक छोटी-सी दुकान से लोग बाजरे के दाने जैसा कुछ खरीद रहे हैं और फिर उसके कुछ दाने हथेलियों पर रखकर खड़े हो जाते हैं। कबूतर उड़ते हुए आते हैं, हथेलियों पर पंजे टिकाकर हथेलियों पर से दाने चुगते हैं, और कई कबूतर उड़ते-उड़ते लोगों के सिर पर भी बैठ जाते हैं।

वहां फोटो खींचने के लिए कुछ फोटोग्राफर भी खड़े हुए थे, जिनसे लोग कबूतरों को हथेलियों पर चुगा चुगवाते हुए अपनी तस्वीरें खिचवा रहे थे। मीना का जी किया कि वह ये दाने खरीदे, कबूतरों को चुगा चुगवाए और एक यादगारी तस्वीर भी खिचवाए।

एक विचार हमेशा उसके सामने रहता था—क्या फायदा? किसे दिखाऊंगी?

इस समय भी आया, पर जी नहीं माना। उसने दाने खरीदे, सुरा को भी दिए, अपनी हथेलियों पर भी रखे और जब कबूतरों के झुरमुट ने घेर लिया, उसने अपनी तस्वीर खिचवाई।

कबूतरों के पंजों का कुछ खुरदरा-सा स्पर्श और उनके पंखों का कोमल-सा स्पर्श उसकी हथेलियों में अभी भी एक झनझनाहट की तरह अनुभव हो रहा था—उस समय भी, जब उसने तस्वीर में अपनी हथेलियों को देखा।

—इन्हें इस तरह हथेलियों पर बैठते हुए डर नहीं लगता!—मीना हंसते हुए और तस्वीर को देखते हुए सुरा से बोली।

—इन्हें पकड़ना मना है, इसलिए कोई नहीं पकड़ता। इसीलिए अब इन्हें डर नहीं लगता—वेरी इन्नोसेंट बर्ड्ज़।—सुरा ने जवाब दिया तो मीना का ध्यान उसके जवाब से हटकर केवल अन्तिम शब्दों पर टिक गया—इन्नोसेंट बर्ड्ज़···

अर्थों की तरह शब्द भी मासूम-से थे, पर मीना की समझ में नहीं आ रहा था कि ये शब्द उसके अन्दर कुछ घबराहट क्यों पैदा कर रहे थे···

वह अपने-आपको समझाती रही—कल सिर्फ पापा के मुंह से यह बात निकली होती तो कोई बात नहीं थी, यह केवल इसलिए···खामखाह···अजीब लग रही, है, क्योंकि उस दिन किसी शरारती आदमी ने उसे फोन पर 'न्यू बर्ड' कहा था···

पर कहीं कुछ था, जो पकड़ में नहीं आ रहा था। ये दोनों आवाजें—एक 'न्यू बर्ड' कहने वाली, और एक 'इन्नोसेंट बर्ड' कहने वाली, कहीं, किसी तरह जुड़ती हुई-सी थीं···

पर मीना को वह जगह कहीं दिखाई नहीं दे रही थी जहां वे आवाजें जुड़ती थीं···

उस शाम मीना ने घर जाकर पापा के होटल में फोन किया, पर पापा होटल में नहीं थे।

सुरा की मां नीचे रसोई में रात का खाना पका रही थी, छोटी लड़कियां ऊपर अपने कमरे में स्कूल की किताबें पढ़ रही थीं, बैठक में सुरा आराम से बैठी हुई टेलीविजन देख रही थी, उसके पापा का अभी-अभी फोन आया था कि वह रात को कुछ देर से आएंगे, पर आते समय फल और मछली लेते आएंगे···और उस छोटे-से घर में वह छोटा-सा परिवार बड़ा खुश दिखाई दे रहा था···

मीना को लगा, जैसे अपने घर से आए हुए बरसों हो गए हों···

सुरा ने उसे कुछ उदास-सा देखा, कहा—चलो, एक फिलम देख आएं, साथ ही मैं तुम्हें ट्यूब में नहीं लेकर गई हूं, चलो, तुम्हें वह भी दिखाऊं।

—ट्यूब?

—जमीन के नीचे चलने वाली रेल। कार में या बस में जाना और बात होती है, पर जमीन के नीचे चलने वाली रेल में सफर करना और बात होती है···

और सुरा मां से कहकर, जब मीना को लेकर पास के स्टेशन गई, मीना ने कहा—सुरा, फिल्म बाद में देखेंगे, पहले तुम मुझे पापा के होटल ले चलो।

—चलो, होटल भी पिकैडिली में है, बाद में वहीं फिल्म भी देख लेंगे—सुरा ने कहा, और पिकैडिली के टिकट लेकर दोनों जमीन के नीचे चलने वाली रेल में बैठ गयीं।

पिकैडिली की रौनक ने मीना का कुछ ध्यान अपनी तरफ लगाए रखा, पर सिर्फ थोड़ी देर के लिए, जितनी देर होटल ढूंढ़ने में लगी।

अन्दर रिसेप्शन से पता किया, पर पता लगा, कमरे की चाभी वहां रिसेप्शन में ही टंगी हुई है। रिसेप्शनिस्ट कह रहा था—मैसेज लिखकर रख दीजिए। राणाजी आज सवेरे से बाहर गए हुए हैं।

'राणाजी'···शब्दों के साथ ही मीना के सिर में चक्कर-सा आ गया।

सुरा कह रही थी—चलो, पहले फिल्म देखें। शायद उतनी देर में अंकल आ जाएंगे···

पर मीना का ध्यान न फिल्म की ओर था, न और किसी चीज की तरफ। उसे दिल्ली में होटल के कमरे में आया हुआ रांग नम्बर याद आ गया था—दिस इज अर्जेण्ट, गेट मी राणाजी।

सुरा उसकी बांह को खींचते हुए होटल के बाहर आ गई। मीना ने कुछ संभलकर सोचा—मैं भी पागल हूं, उस फोन की बात तो मैंने पापा से की ही नहीं, क्या मालूम उन्हें कुछ लोग मलिक साहब की जगह राणाजी कहते हों—और मैंने ऐसे ही 'रांग नम्बर' कहकर फोन बन्द कर दिया था···

पर साथ ही मीना को खयाल आया—अगर वह फोन पापा के किसी दोस्त का था तो उसने उसे 'न्यू बर्ड' क्यों कहा था!

मीना का फिल्म देखने को जी नहीं किया। दोनों कुछ समय वैसे ही पिकैडिली में घूमती रहीं। फिर होटल में आकर पता किया, पर पापा अभी नहीं आए थे। सो, दोनों वापस साउथाल चली गयीं।

रात को कोई दस बजे के बाद पापा का फोन आया—मीना, तुम यहां आई थीं? क्या बात है बेटी?

—कुछ नहीं—पहले मीना के मुंह से निकला। फिर वह अपनी खामोशी तोड़ते हुए कहने लगी—हम वापस कब जाएंगे?

पापा जरा-सा चुप रहे, फिर कहने लगे—तुम वापस जाना चाहती हो?

—हां, जितनी जल्दी हो सके।

पापा कहने लगे—पर, मैंने सोचा था, यहां डाक्टर बहुत अच्छे हैं, मैं अपना चेक-अप भी करवा लूं।

मीना को यह कहना भी, और सोचना भी, बुरा लगा कि पापा उसकी खातिर

अपना इलाज भी न करवाएं और वापस चलें, इसलिए कुछ देर सोचती-सी रही, फिर कहने लगी—आप चेक-अप करवा लीजिए, शायद बहुत दिन लगेंगे, पर मैं··· मैं चली जाऊं ?

मीना ने यह बात कह दी, पर लगा, ठीक नहीं कहा। मन में आया—पापा क्या सोचेंगे, उन्होंने मुझे लंदन दिखाने के लिए इतना खर्च किया, और मैं उन्हें अकेला बीमार छोड़कर वापस जाना चाहती हूं···

पर फोन में से पापा की जो आवाज सुनाई दी, वह इस तरह सोचती हुई नहीं लगती थी। वह कह रहे थे—अगर तुम माइंड न करो, अकेली चली जाओ; तो मैं परसों के लिए सीट की बुकिंग करा दूं ?

मीना के मन को एक चैन-सा आ गया। आवाज खुश-सी हो गई—हां, पापा, परसों की सीट करवा दीजिए।—और फिर हंसते हुए कहने लगी—पापा ! लोग आपको राणाजी भी कहते हैं, आपने मुझे बताया क्यों नहीं ?

उधर से पापा की भी हंसती हुई-सी आवाज आई—लोग मुझे कई नामों से पुकारते हैं—हुजूर, सर, राणाजी···इसमें खास बात क्या है ?

और उस रात सोने से पहले मीना सुरा से कितनी ही देर तक दलीप की बातें करती रही। आज उसका मन चैन से और दलीप से भरा हुआ था।

दूसरे दिन मीना खुश थी, इसलिए सुरा उसे एक फिलम दिखाने ले गई।

रास्ते में सुरा पूछने लगी—यहां एक फ्रेंच फिलम चल रही है, जिसमें वह···। और सुरा ने हंसते-हंसते मीना के कान में कुछ कहा।

मीना हंस पड़ी, पर कहने लगी—मैं वैसी फिलम नहीं देखूंगी, देखते हुए मुझे शरम आएगी—और सुरा से पूछने लगी—तुमने पहले देखी है ?

सुरा हंसने लगी—एक बार एक लड़की के साथ चोरी से देखने गई थी, घर पर मां को नहीं बताया था—और सुरा का मुंह गुलाबी-सा हो गया। कहने लगी—पहले तो आदमियों को नंगे देखकर मेरी चीख निकलने को हो गई थी··· सचमुच वह···।— और सुरा ने फिर मीना के कान में कुछ कहा।

मीना का जी घिनिया-सा गया। कहने लगी—नहीं, मैं वह नहीं देखूंगी। पर मैंने सुना है कि स्कैंडिनेविया की फिल्में बहुत अच्छी होती हैं। अगर कोई चल रही हो तो देखें।

—पर हमारी समझ में वह फिलम कैसे आएगी, वह जबान तो हम नहीं समझते।

—अगर उसके टाइटिल अंग्रेजी में लिखे हों, या वह अंग्रेजी में डब हो, तो समझ में आ जाएगी।

दोनों लड़कियों ने पूछताछ कर एक स्वीडिश फिल्म का पता चला लिया और फिलम देखने लगीं।

ये फिल्में, कई जगहों पर, लगातार चलती रहती हैं। जब किसी की मर्जी हो हॉल से उठकर चला जाए, और जब मर्जी हो फिर आ जाए। फिल्म खतम होने पर फिर शुरू हो जाती है, इसलिए कोई चाहे तो कई घंटे उस फिल्म को बार-बार देख सकता है।

यह फिल्म अखबार में छपी एक घटना पर बनाई गई थी। खबर थी एक फौजी और एक सरकस में काम करने वाली लड़की, दोनों भाग गए हैं, और पुलिस उनका पीछा कर रही है।

फौजी किसी और देश का है और विवाहित है। इसलिए न फौज की नौकरी छोड़ सकता है और न घर की बीवी को छोड़कर कहीं जा सकता है। जब वह सरकस की उस लड़की को लेकर भाग जाता है जिसे वह प्यार करता है, तो पुलिस उसका पीछा करने लगती है। बस जितने दिन वे दोनों दुनिया से भागे हुए इस दुनिया में जीते हैं, फिल्म सिर्फ उन्हीं दिनों के विवरण की थी।

मीना की आंखें भर-भर आईं, जिस समय फौजी के एक दोस्त ने उन दोनों को ढूंढ़ लिया, और लड़की को समझाया कि तुम्हारी खातिर इसने अपने देश के साथ गद्दारी की है, तुम इसे वापस इसके देश जाने दो, तो लड़की ने अपनी हथेली उसके आगे रखकर कहा—देखो, मेरी हथेली पर सारी दुनिया का नक्शा है। मेरी मां जर्मन थी, पिता डेनिश, मां की मां अमरीकन, और पिता का पिता बरतानवी। और मेरे दोस्त-मित्र इतालवी भी, फ्रांसीसी भी। सारी सरहदें मेरी हथेली पर बिछी हुई हैं। और मुझे सारी हथेली की जरूरत है, सारे हाथ की। मैं उसे कहां जाने दूं?

मीना को लगा—सारी दुनिया उस लड़की की हथेली के नीचे आ गई थी···

और मीना को यह फिल्म देखते हुए फिल्म वाले जवान फौजी की जगह सारे समय दलीप का मुंह दिखाई देता रहा। सोचती रही—मेरी हथेली में भी दिल्ली की, बम्बई की, और लन्दन की सारी हदें-सरहदें, लकीरों की तरह पड़ी हुई हैं··· ये सारे शहर और सारे देश मेरे हैं—अगर पापा लन्दन हैं तो लन्दन मेरा है, अगर दलीप दिल्ली है तो दिल्ली मेरी है···

दूर देशों की घटनाएं भी कब किसी जगह पर और कैसे रिल-मिल जाती हैं! मीना जिन्दगी की हैरानी को सामने पर्दे पर भी देखती रही और भीतर अपने मन में भी। लगा—वे दोनों भी आगे-आगे दौड़ रहे हैं, और कानून पीछे-पीछे। मैं भी दिल्ली से कितनी दूर यहां लन्दन आ गई हूं, और एक कानून मेरे पीछे लगा हुआ है···जिसे पापा कह रही हूं, कानून उसे पापा नहीं कहने देता···

और मीना को जो यकीन आज तक नहीं आया था, वह आ गया—अगर दलीप सचमुच मुझे प्यार करता है तो मेरे मन की हालत जरूर समझ जाएगा। मैंने उससे जितना भी झूठ बोला है, उसे वह झूठ नहीं समझेगा।

13

और उसके अगले दिन मुंह अंधेरे पापा आए। उनके हाथ में मीना का वापसी टिकट था।

—सीट बुक हो गई ?—मीना हैरान भी थी, खुश भी।

—मेरी बेटी ने चाहा और सीट न मिले, यह किस तरह हो सकता है !

मीना को अपना-आप पापा के सामने अनजान-सी बच्ची की तरह लगा। पापा को इस तरह भगदड़ में डालने के कारण वह कुछ शरमिन्दा-सी भी हुई। धीरे से मुंह से निकला—सॉरी पापा !

पापा ने उसके कंधे पर हाथ रखकर तसल्ली-सी दी—आई अंडरस्टैंड···

मीना को लगा, जैसे उसका अपना-आप और छोटा हो गया हो।

पापा कह रहे थे—मैं आज किसी समय राबर्ट को फोन कर दूंगा, वह तुम्हें दिल्ली एयरपोर्ट से ले जाएगा। बाहर जहां गाड़ियों की पार्किंग है, वहां उसे ढूंढ़ लेना।

—अच्छा।—मीना ने धीरे से कहा। पापा उसका कितना खयाल रख रहे हैं, इस बात के नीचे उसकी आवाज कुछ दबती-सी जा रही थी।

—हां, सच !—पापा ने कुछ याद करते हुए कहा—अगर पासपोर्ट अपने पास रखने में तुम्हें परेशानी हो, तो वहां राबर्ट को दे देना, वह संभालकर रख लेगा।

—अच्छा !

—फिर उठो, जल्दी तैयार हो जाओ, एयरपोर्ट जाने का समय हो गया है।

मीना के पास दो सूटकेस थे, एक जो घर से लेकर आई थी, और दूसरा जो वहां पापा ने खरीदकर और सब गर्म कपड़े उसमें डालकर उसके लिए लाकर दिया था। मीना ने जल्दी से, जो थोड़ा कुछ बिखरा हुआ था, वह पैक किया।

पापा ने दोनों सूटकेस गिल की कार में रखवाते हुए और घड़ी की ओर देखते हुए मीना से कहा—सॉरी ! मेरा डाक्टर से एपायण्टमेण्ट है, मैं एयरपोर्ट नहीं जा सकूंगा··· गिल तुम्हें छोड़ आएगा, और यह तुम्हारी सहेली तुम्हारे साथ जाएगी।

सुरा रूठी हुई-सी खड़ी थी, कहने लगी—अंकल, मैं आपसे नहीं बोलती, आपने इतनी जल्दी क्यों मीना की सीट बुक करवाई है ?

मीना प्यार से सुरा के गले से लिपट गई, और उसकी बांह खींचते हुए उसे कार में बिठाते हुए कहने लगी—अब तुम जब दिल्ली आओगी, मेरे पास बहुत सारे दिन रहना।

साथ ही मीना के मन में आया—अगर कभी सुरा सचमुच दिल्ली आ गई तो

फिर क्या होगा ? पर वह अभी दूर की चिन्ता थी, पास की नहीं। सो मीना सुरा को हंसाते हुए आप भी हंसने लगी। साथ ही खयाल आया—मेरा एड्रेस तो सुरा को मालूम नहीं है, वह आएगी किस तरह...

गिल चाचा गाड़ी चलाने लगे तो मीना ने कार से उतरकर पापा के कंधे के पास सिर रखकर कहा—आप जल्दी आ जाएंगे न ?

—हां, जल्दी ही।—और पापा ने मीना के कान में धीरे से कहा—फिर तुम मेरे पास बम्बई आना, तुमने वहां का अपना घर तो देखा ही नहीं।

मीना हंसते हुए जब गाड़ी में बैठने लगी तो पापा ने कहा—हां, सच, तुम्हारे सूटकेस तो बड़े हलके-से होंगे, मुश्किल से पन्द्रह-सोलह किलो... मेरे पास आते समय बहुत सामान हो जाएगा, यह एक किताब बड़ी भारी है—साइकॉलॉजी की, इसे तुम ले जाओ, वहां जाकर राबर्ट को दे देना। वह संभालकर रख लेगा।

मीना ने किताब ले ली और पापा को चलती हुई कार में से हाथ हिलाकर, क्षमा-सी मांगती हुई विदा कही।

14

लन्दन एयरपोर्ट से मीना ने कुछ किताबें खरीदीं।

इनमें सबसे बड़ी किताब 'वर्ल्ड माइथॉलॉजी' थी, पर दो छोटी किताबें एरिक हाफर की 'ट्रू बिलीवर' और हेनरी मिलर की 'विज्ड्म ऑफ हार्ट' ऐसी किताबें थीं जो दलीप मुद्दत से खोज रहा था और उसे दिल्ली में कहीं भी नहीं मिल रही थीं।

कल जब से उसने स्वीडिश फिलम 'ऐलवरा' देखी थी, उसका अपने में और दलीप में गहरा विश्वास हो गया था। अब अपना सब कुछ दलीप को बता देना उसे कठिन नहीं लग रहा था। लग रहा था—वह मां की जिन्दगी का भेद भी उसे आसानी से बता सकती थी, और अपना यह लन्दन का सफर भी...

जिन्दगी की घटनाओं को देखने की एक नज़र थी जो मीना को लग रहा था कि सचमुच बहुत विस्तृत हो गई थी।

हवाई जहाज में खिड़की वाली सीट पर बैठते हुए मीना को किसी किताब में पढ़ा हुआ यह वाक्य याद आ गया—कोई भी मनुष्य इस काबिल नहीं है कि उसके लिए रोया जाए। अगर आपका महबूब अच्छा है तो वह आपको कभी रुलाएगा नहीं, और अगर वह रुलाता है, तो वह अच्छा नहीं है, इसलिए रोने के काबिल नहीं है। और मीना को लगा—इस वाक्य को उसने जैसे आज समझा है, पहले वह इसे ऐसे नहीं समझी थी। दलीप बहुत अच्छा है, वह मुझे कभी नहीं रुलाएगा। और

अगर रुलाएगा तो मैं रोऊंगी नहीं, क्योंकि वह रोने के क़ाबिल नहीं होगा।

और मीना खुश-सी, अपने साथ एक फ़ैसला-सा करती हुई, खिड़की से बाहर बादलों के दृश्य देखने लगी।

लगा—आते हुए, ये बादल मेरे मन में घिरते हुए मालूम होते थे, पर अब जाते हुए, ये मेरे मन की तरह हवा में तैरते हुए मालूम होते हैं।

मां से अचानक उसे सहानुभूति हो आई। पहले जब भी उसने मां के जीवन की इस घटना के बारे में सोचा था, उसे मां पर गुस्सा आया था। उसने सोचा था—एक दिन मां से खूब लड़ूंगी। पर आज मीना मां के दर्द से भीग-सी गई।—एक बिचारी औरत, जो सारी उम्र मुंह से नहीं बोल सकी···कौन जाने रात के अंधेरे में उसे क्या-क्या याद आता होगा और उसके दिल को क्या-क्या होता होगा···

देसराज पापा से भी अधिक उसे हरबंसलाल पापा के लिए अचानक एक मोह-सा हो आया—जिसे मालूम हो कि यह लड़की मेरी नहीं है, पर सारी उम्र उसे बेटी की तरह प्यार करता रहा हो···मीना का मन, मोह में भीगा हुआ, अपने शहर की और अपने घर की दहलीजों को देखने के लिए व्याकुल हो उठा···

पहले भी उसे लौटने की जल्दी थी, पर एक भय-सा भी उसके भीतर घिर रहा था, इस समय एक मोह उसके भीतर घिर आया था।

जब लंच दिया गया, मीना ने खिड़की की तरफ से ध्यान हटाया, तो पास की सीट पर बैठी हुई एक पंजाबी औरत उससे बातें करने लगी—बेटी, अकेली हिन्दुस्तान जा रही हो?

मीना ने हंसकर 'हां' में सिर हिलाया।

—क्या नाम है तुम्हारा?

—मिस मलिक।

मीना को आप ही अपने ऊपर आश्चर्य हुआ कि उसके स्वर में इस समय कोई झिझक नहीं थी। भले ही सामने उसके पर्स में पड़े हुए उसके पासपोर्ट में मिस शर्मा लिखा हुआ था, तो भी उसने अपना नाम बताते हुए मिस मलिक कहा था। इस समय जिस पापा ने उसे प्यार से इस तरह दुनिया दिखाई थी, उसकी जात से जुड़े रहना उसे अपना फर्ज जान पड़ा था।

पास की सीट पर बैठी हुई वह औरत पूछ रही थी—तुम्हारे पिता विलायत में होंगे न, और मां वहां हिन्दुस्तान में?

मीना ने हंसकर 'हां' में सिर हिला दिया।

औरत कह रही थी—और हिन्दुस्तान ब्याह कराने जा रही हो?

मीना ने फिर हंसकर 'हां' में सिर हिलाया।

वह कह रही थी—लड़का क्या करता है?

—कालिज में लेक्चरर है—मीना ने कहा।

उसने फिर पूछा—बहन-भाई कितने हैं?

—एक भाई—मीना ने कहा, और उसकी बातों से आकुल-सी होते हुए मन में सोचने लगी—लोग गिनती के रिश्तों को ही पूछकर सोचते हैं, बस इन्सान को जान लिया···उम्र देख ली, शक्ल देख ली, तनख्वाह पूछ ली, और कुछ रिश्तेदार गिन लिए···बस···

और मीना लंच के बाद 'वर्ल्ड माइथॉलॉजी' पढ़ने लगी।

15

—हवाई जहाज दिल्ली उतरने वाला है—जब एनाउन्स हुआ तो लोग सेफ्टी-बेल्ट बांधने लगे।

फिर एक रस्मी धन्यवाद-सा भी हुआ, आगे भी कभी इस प्रकार यात्रा करने की आशा-सी भी व्यक्त की गई, पर मीना सब कुछ इस तरह अचरज से देख रही थी मानो उसे यह अचरज पहली और अन्तिम बार देखना हो।

हवाई जहाज से उतरकर कस्टम में रुकना था। मीना खड़ी रही, पर इस समय वह केवल यह सोच रही थी कि यह समय बम्बई से किसी गाड़ी के आने का है या नहीं···

एक बात उसने ध्यान से सोच ली कि बाहर जाकर सबसे पहला काम यह करूंगी कि सूटकेस से बंधे हुए वह टैग उतार दूंगी जिनपर 'लन्दन-दिल्ली' लिखा हुआ है, और साथ ही बाहर जाकर अपना स्वेटर भी उतार दूंगी।

कस्टम वाले मुसाफिरों के सूटकेस खोल-खोलकर देख रहे थे, इसलिए बहुत देर लग रही थी। पर मीना ने दोनों की चाभियां हाथ में लेकर इस तरह तैयार रखी हुई थी कि जब उसकी बारी आए, उसकी तरफ से देर न हो।

बारी आई, मीना ने दोनों सूटकेस खोले, कस्टम वालों ने दो नये स्वेटर, एक स्लैक्स और दो मफलर देखकर पूछा—इन कपड़ों और इन किताबों के अलावा कोई कैमरा, ट्रान्जिस्टर, टेपरिकार्डर या टेलीविजन···?

मीना के पास ऐसी कोई चीज नहीं थी, इसलिए जल्दी ही उसके सूटकेसों पर मार्किंग हो गई, और वह दोनों हाथों में सूटकेस लिए हुए बाहर आकर राबर्ट को ढूंढ़ने लगी।

राबर्ट कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। वह टैक्सी लेने ही वाली थी कि खयाल आया—पापा ने कहा था, जहां कारों की पार्किंग होती है वहां राबर्ट को ढूंढ़ लेना।

मीना दोनों सूटकेस उठाकर उधर चल दी जहां कारों की पार्किंग थी। वहां सचमुच उसका इन्तजार करते हुए राबर्ट मिल गया, और मीना ने अपने सूटकेस कार में रखते हुए, याद से, उनपर से दोनों टैग उतार लिए।

कार जब बाहर सड़क पर आ गई तो मीना ने पूछा—सोफिया कहां है ?

—वह तो उसी दिन बम्बई चली गई थी, जिस दिन सवेरे आप लन्दन गई थीं। साहब उससे उसी दिन डीलक्स से बम्बई जाने के लिए कह गए थे—राबर्ट ने बताया और साथ ही यह भी बताया—कल साहब का फोन आया था कि मैं एयरपोर्ट से आपको ले जाऊं।

—हां, मुझे मालूम है।

—पर आज सवेरे साहब का फोन आया है कि वह भी वापस आ रहे हैं दिल्ली नहीं उतरेंगे, सीधे बम्बई जाएंगे। और उन्होंने कहा है कि आप यह कार लेकर सीधे बम्बई आ जाइए।

—कौन, मैं ?—मीना ने हैरान होकर पूछा।

—मुझे उन्होंने अभी दिल्ली रहने के लिए कहा है, यहां कुछ काम हैं, पर आप चली जाइए, कार ले जाइए।

मीना को यह सब बात अजीब-सी लगी, कहने लगी—पर, कल तो उनका चेक-अप था, उनको अभी और कुछ दिन वहां रहना है···

राबर्ट बताने लगा—वह कह रहे थे, चेक-अप हो गया है। वह शायद आज ही वहां से चल देंगे, कल सवेरे बम्बई पहुंच जाएंगे। आप आज ही दिल्ली से चलें तो परसों बम्बई पहुंचेंगी।

—मैं ! मैं कैसे जा सकती हूं ?—मीना परेशान-सी हो गई।

—क्यों ? आपको ड्राईविंग आती है, आपका ड्राईविंग लाईसेंस भी मैं ले आया हूं, यहीं मेरे पास है—और राबर्ट ने मीना का ड्राईविंग लाइसेंस उसे दे दिया।

—पर मैं अकेली ?—मीना के गले में उसका सांस सूखने लगा···

—आप कहें तो मैं अपने छोटे भाई को आपके साथ भेज देता हूं। रास्ते में एक ही रात आती है। पर बहुत आहिस्ता जाएं तो दो आ जाएंगी, एक ग्वालियर और एक इन्दौर···

मीना घबराई हुई-सी कहने लगी—पापा को गाड़ी की जरूरत है तो उसे, अपने भाई से, कहो कि बम्बई जाकर गाड़ी छोड़ आए।

पर राबर्ट कहने लगा—उसे ड्राईविंग नहीं आती।

—नहीं, मैं नहीं जाऊंगी—मीना ने फैसले की तरह कहा।

—अगर आज थकी हुई हैं तो कल सही—राबर्ट ने पहले यह कहा, फिर आप ही कहने लगा—कल बहुत मुश्किल हो जाएगा। एक बार घर चली जाएंगी

तो फिर घर में जाना मुश्किल हो जाएगा।

इस समय अकबर होटल के पास आकर राबर्ट ने कार रोक ली थी। कह रहा था—अगर आज आराम करना चाहें तो एक रात यहीं रह लें। साहब ने यहां आपके लिए कमरा बुक करने के लिए कहा हुआ है···

मीना कार से उतरी डिक्की में रखे हुए दोनों सूटकेस निकाले। फिर एक सूटकेस को खोलकर वह किताब निकाली जो पापा ने राबर्ट को देने के लिए कहा था! और पास खड़ी हुई टैक्सी में दोनों सूटकेस रखते हुए, राबर्ट से कहने लगी—मैं बम्बई नहीं जा सकती, किसी और आदमी के हाथ गाड़ी भेज दो या खुद जाकर छोड़ आओ।

मीना टैक्सी में बैठी ही थी कि राबर्ट ने खिड़की के बन्द शीशे को खटखटाकर इल्तिजा की तरह कहा—पर साहब का हुक्म है···

मीना ने टैक्सी वाले से चलने के लिए कहा। उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी, तो गाड़ी की आवाज में मीना को राबर्ट के आगे के शब्द सुनाई नहीं दिए। केवल उसके अपने शब्द उसे और टैक्सी वाले को सुनाई दिए—निजामुद्दीन चलो।

लन्दन की ठंड के बाद दिल्ली की धूप से शायद दिल घबरा रहा था। कुछ दूर जाकर, मीना ने गाड़ी का शीशा कुछ नीचा किया, और साथ ही अपनी बांह की ओर उसकी नजर पड़ी, वह अभी भी पूरी बांहों वाला स्वेटर पहने हुए थी।

मीना ने जल्दी से स्वेटर उतारा, पर सूटकेस पीछे गाड़ी की डिक्की में रखे हुए थे। मीना ने हाथ के पर्स की तरफ देखा, पर्स काफी बड़ा था, पर उसमें स्वेटर नहीं आ सकता था। उसने स्वेटर को अपने बराबर सीट पर रख दिया कि गाड़ी से सामान उतारते वक्त वह इसे सूटकेस में रख लेगी। पर स्वेटर उतारकर भी मीना का दिल इस तरह घबरा रहा था जैसे वह किसी रेगिस्तान में आ गई हो।

वह हैरान थी—सफर वाला, हवाई जहाज के सफर वाला वह चैन और विश्वास न जाने कहां चला गया था!

टैक्सी निजामुद्दीन के पास पहुंचने वाली थी, पर मीना का जी किया कि वह सीधी घर न जाए, वह पहले दलीप के घर चली जाए। शायद दलीप से मिलकर उसकी घबराहट कम हो जाए, पर उसने दुविधा में पड़े हुए टैक्सी वाले से कुछ भी नहीं कहा। टैक्सी बिल्कुल उसके घर के बाहर वाली सड़क पर पहुंच गई थी, मीना ने ड्राइवर से रुकने के लिए कहा।

साथ ही खयाल आया, इस समय तो दलीप कालिज गया होगा, मैं वहां किस तरह जा सकती हूं?

मीना ने ड्राइवर को पैसे दिए, एक सूटकेस खोलकर स्वेटर उसके अन्दर रखा, और फिर दोनों सूटकेस हाथों में लेकर घर की ओर चल दी।

घर अपना था—पर उसके पांवों में कुछ चोरों की सी झिझक थी, सोच रही थी, पापा अभी घर में ही होंगे कि चले गए होंगे ?

और घर का दरवाजा पार करते हुए जान लिया कि पापा दफ्तर और संदीप स्कूल जा चुके थे।

मीना को कुछ सांस-सा आया। इस समय घर में केवल मां थीं और दादी, और उनकी उसे चिन्ता नहीं थी।

16

मीना की कच्ची उम्र, मीना को लगा, जिन्दगी की कच्ची राहों पर चलती जा रही थी। चारों ओर धूल दिखाई देती थी।

—वह जो सूरज की चौंध के सामने मुझमें विश्वास आया था, वह कहां गया ?—मीना चुपचाप चारपाई पर लेटे हुए सोचती रही।

घर में सब कुछ ठीक था। मां ने स्वाभाविक तौर पर बम्बई की बातें पूछी थीं; दादी ने भी, और किसी को कोई शक-शुबहा नहीं हुआ था, ऐसा लगता था। मीना ने रात को एक स्वेटर छोटे संदीप को बम्बई के तोहफे के तौर पर दिया था और एक दलीप के लिए अलमारी में रख दिया था। पापा को भी एक स्कार्फ दिया था और साधारण बातों के सिवा कोई बात नहीं हुई थी। बातों-बातों में यह भी मालूम कर लिया था कि उसके पीछे दलीप उसके घर नहीं आया था, इसलिए रेल पर सवार करवाने वाली बात वैसे ही ठीक थी जैसे वह कहकर गई थी। पर न कल उससे फ्रेंच की क्लास के लिए जाया गया था, न आज जाया जा रहा था।

क्लास की कोई बात नहीं थी, लेकिन वहां दलीप से मिलना था, और अभी उससे दलीप का सामना नहीं किया जा रहा था।

रात को दादी कह रही थी—हैं री, कहते हैं, बम्बई में साड़ियां बड़ी सुन्दर मिलती हैं, तू अपने ब्याह के लिए दो-चार साड़ियां ही ले आती···

और मां उसे अपने-आप ही जवाब दे रही थी—इतने पैसे कहां ले गई थी, आप ब्याह की तारीख पक्की कीजिए, साड़ियां बहुतेरी···

और मीना के मन का झूठ उसके मन में चुभने लगा था···

आज सवेरे से ही दादी कहे जा रही थी—और अब बुलाओ लड़के को, कहो कि अपने बाप को बुलाए और बात पक्की करे। मैं भी आंखों से यह दिन देख जाऊं।

और पापा दफ्तर जाते समय हंसते हुए कह गए थे—अपनी लड़की को वह रोज मिलता है, कहना उससे कि आज बुला लाए।

पर आज ···आज भी उससे दलीप का सामना नहीं हो रहा था···

सोच में पड़े-पड़े अगला दिन चढ़ आया। पर आज उसने मन पक्का कर लिया था कि शाम को दलीप से भी जरूर मिलूंगी और फ्रेंच की क्लास के लिए भी जरूर जाऊंगी।

उसने तड़के ही नहाकर, चाय पीकर, अपने कितने ही दिनों से बेतरतीब पड़े हुए अलमरी के कपड़े ठीक किए, फिर दलीप के लिए लाए हुए कैलेंडर को खोलकर देखते हुए मन में कुछ हिम्मत महसूस करने लगी। कैलेंडर वाली औरत के तलवे पर लिखे हुए साल को देखकर उसे लगा—अगर इन्सान मजबूत हो तो वक्त को पांव के तलवे के नीचे रखकर आगे बढ़ सकता है···

पर साथ ही कैलेंडर वाली औरत की पीठ की ओर देखते हुए सोचने लगी—पर कुछ दिन, वार और तारीखें ऐसी होती हैं जो हमेशा के लिए आदमी की पीठ पर लिख जाती हैं—

पर आज उसे एक अजीब चेतना का एहसास हुआ—आजकल मुझे क्या हो गया है, जैसे मेरा कुछ भी मेरा न रह गया हो···न मन की खुशी मेरी, न उदासी मेरी···जैसी चीज देखती हूं वैसे ही सोचने लगती हूं···

और मीना ने अपने ऊपर खीझकर, पहले कुछ पढ़ने के लिए एक किताब निकाली, फिर उसे भी रखकर, अखबार लेकर चारपाई पर लेट गई।

उसने सरसरी नजर से अखबार पढ़ते हुए, जब पहले के बाद दूसरा, और दूसरे के बाद तीसरा पन्ना पलटा, तो मोटे अक्षरों में छपा हुआ एक शीर्षक सामने आया—'किताब की जिल्द से पचास लाख के हीरे बरामद।'

नीचे खबर थी—आज बम्बई में दाखिल होने वाली एक कार पर पुलिस ने छापा मारकर एक किताब पकड़ी, जिसकी पुश्त में से पचास लाख के हीरे निकले। पुलिस का खयाल है, उन्होंने स्मगलिंग के बहुत बड़े रैकेट का पता लगा लिया है। पर अभी तक कार के ड्राइवर राबर्ट के सिवा कोई गिरफ्तार नहीं किया गया है।

मीना को अपनी चारपाई, कमरे के फर्श समेत, जमीन के नीचे किसी पाताल में गिरती हुई लगी—

लगा, उसका दिल कुछ बार बहुत जोर-जोर से धड़का, और फिर शायद धड़कना भूल गया—

वह कितनी ही देर तक एक लाश की तरह चारपाई पर पड़ी रही···

वक्त एक जगह पर आकर, उसकी आंखों में ठहर गया मालूम होता था··

और वह पत्थर जैसी आंखों से वक्त को देखती रही—न आंखें हिलती थीं, न वक्त···

कुछ देर बाद, न जाने कितनी देर बाद, एक बड़ा भयानक दृश्य उसके सामने आया कि वह कार को चला रही है, दिल्ली से बम्बई जा रही है, कार में वही

किताब पड़ी हुई है जो दो दिन पहले—उसके सूटकेस में रखी हुई थी, और फिर एक जगह पहुंचने पर पुलिस ने उसकी कार को चारों तरफ से घेर लिया है···

और उसे लगा, अखबार में राबर्ट की जगह मीना शर्मा लिखा हुआ था···

मीना ने कांपकर इस भयानक दृश्य की ओर से आंखें मीच लीं—

—ओ भगवान ! तुम कहीं नहीं···?—उसके होंठों से कई बार सिसकी की तरह निकला, और फिर वह कांपते हुए चारपाई से उठ गई।

पता नहीं दिन का कौन-सा समय था ! कितना दिन गुजर गया था और कितना बाकी था, मीना को कुछ खबर नहीं थी।

वह कांपती हुई-सी बराबर के घर में गई, होंठों में दलीप के कालिज के फोन का नम्बर घुमा-घुमाकर देखा, पर कुछ याद नहीं आ रहा था···फिर शायद उंगलियां ही पुरानी याद के सहारे कुछ नम्बरों पर घूम गईं, क्योंकि उधर से जो आवाज आ रही थी, वह दलीप के कालिज का नाम ले रही थी।

—कालकाजी कालिज ?—उसने विश्वास पक्का करने के लिए पूछा।

उधर से पुष्टि हुई तो कहा—जरा दलीपराजजी को बुलवा दीजिए।

उसे लग रहा था—अब दलीप की आवाज शायद कभी भी उसके कानों को सुनाई नहीं देगी···कानों में न जाने कौन-सी, और कहां से, भयानक आवाजें आ रही थीं···

—मैं दलीप बोल रहा हूं···मै दलीप बोल रहा हूं—और शायद दूसरी ओर दलीप को कुछ सिसकियों की-सी आवाज सुनाई दी थी। वह घबराकर कहे जा रहा था—कौन ? मीना ? बोलतीं क्यों नहीं, मैं दलीप बोल रहा हूं···सुनो ! मैं दलीप बोल रहा हूं···

मीना के कान में लौट-लौटकर आवाज़ आई, तो लगा—यह सचमुच दलीप की आवाज थी। उसके मुंह से मुश्किल से सिर्फ इतना निकला—मैं, मीना···तुम जल्दी आओ···क्या ?···बाहर सड़क पर···घर ?···नहीं···सड़क पर···

उधर से फोन बन्द हो गया, तो एक बार मीना का विश्वास फिर टूट गया कि दलीप कहीं भी नहीं था···

और वह स्वयं, उसे कुछ पता नहीं लग रहा था कि वह स्वयं कहां थी···

न जाने कितनी देर तक वह फोन के पास फोन के तार की तरह पड़ी रही···तार में शायद कहीं करेंट थी, पर आवाज नहीं थी···

जिन लोगों के यहां फोन था, उन्होंने ही काफी देर बाद देखा कि मीना चुपचाप फोन के पास बैठी हुई है। वे कुछ देर तक देखते रहे कि शायद वह किसी के फोन का इन्तजार कर रही है, पर जब काफी समय बीत गया, उन्होंने पास आकर देखा—तो मीना ने इस तरह हैरान होकर उनकी ओर देखा जैसे उन लोगों को पहचानती न हो। उन लोगों ने सोचा कि शायद उसने फोन पर कोई बुरी खबर

सुनी थी, पूछा कुछ नहीं, पर पानी का गिलास लाकर उसे पीने के लिए दिया।

मीना को कुछ होश-सा आया, उसने फोन की तरफ देखा—याद आया कि उसने दलीप को उसके कालिज फोन किया था ··

मीना वहां से धीरे-धीरे चलते हुए बाहर सड़क पर आ गई और एक पेड़ से लगकर खड़ी हो गई···

उसके पांव कांप रहे थे और सामने सड़क पर गुजरने वाली हर चीज उसे उलटती हुई लगती थी···

दलीप की मोटरसाइकल जब उसके पास आकर खड़ी हो गई, उसे लगा, वह जोर से पेड़ से टकरा गया था···

और वह पेड़ के नीचे से ऐसे जल्दी से अलग हुई जैसे पेड़ उस पर गिरने वाला हो···

—तुम्हें क्या हुआ है मीनू ? तुम कहां चली गईं फोन करके ? मैं कितनी देर से सड़क पर घूमता फिर रहा हूं—दलीप ने जल्दी से मीना की बांह पकड़ ली—लगा, वह पेड़ से परे हटते हुए गिरने लगी थी।

मीना ने वहां सड़क पर ही दलीप की बांह को कसकर पकड़ लिया और अपना सिर उसके कन्धे पर रख दिया

दलीप ने घबराकर मीना के मुंह की ओर देखा—लगा, कोई खास बात हो गई थी, नहीं तो मीना सड़क पर इस तरह करने वाली नहीं थी···

—घर चलें ?—दलीप ने पूछा, तो मीना ने अपने घर की अन्दर वाली सड़क की ओर देखते हुए 'नहीं' में सिर हिलाया।

—यहां नहीं, मेरे घर !—दलीप ने फिर कहा तो मीना ने 'हां' में सिर हिलाया।

मीना कांप रही थी। दलीप को लगा, वह मोटरसाइकल पर नहीं बैठ सकेगी। उसने टैक्सी स्टैण्ड पर अपनी मोटरसाइकल उन लोगों को सौंप दी और वहां से एक टैक्सी ले ली।

रास्ते में दलीप ने एक बार पूछा—तुम बम्बई से कब आईं ?—पर मीना उसके कंधे से सिर लगाकर ऐसे चुप निढाल पड़ी हुई थी कि दलीप ने फिर कुछ नहीं पूछा।

मीना को अपने कमरे में ले जाकर और उसे पलंग पर लिटाकर दलीप ने पूछा—चाय बनाऊं ? पियोगी ?

—पानी—मीना के मुंह से मुश्किल से निकला।

दलीप ने उसे पानी पिलाया, फिर उसका सिर तकिए पर रखकर धीरे-धीरे उसका माथा सहलाने लगा।

—आज का अखबार···मीना ने फटी हुई आंखों से दलीप की ओर देखा।

मीना की बात दलीप की समझ में नहीं आई, पर उसने पास रखी हुई मेज पर से आज का अखबार उठाकर मीना के सामने कर दिया, पूछा—क्या है आज के अखबार में ?

मीना ने कांपते हुए हाथ से पहला पन्ना अलग किया, और अन्दर के तीसरे पन्ने पर पचास लाख के हीरों की खबर पर उगली रखकर सारी की सारी कांपने लगी···

दलीप ने खबर पढ़ी, पर हैरान होकर पूछा—इसमें क्या बात है ? ऐसी बातें तो होती रहती हैं···

—यह किताब···

– किताब की जिल्द में हीरे छिपाने का तरीका नया है, और क्या बात है ?

मीना की आवाज कांप रही थी, पर वह पूरे होश में थी। वह आज दलीप को सब कुछ बता देना चाहती थी। तकिए पर से सिर उठाकर उसने पलंग के ढासने से पीठ को सहारा दिया और कहने लगी—यह किताब मैं लाई थी।

—यह किताब ? हीरों वाली ? कहां से ?

—लन्दन से···

दलीप ने मीना की ओर ऐसे देखा जैसे वह होश में न हो।

—मैं होश में हूं···

—नहीं, तुम होश में नहीं हो···

—सच, मैं होश में हूं, मैं बम्बई नहीं गई थी, मैं लन्दन गई थी···

दलीप को फिर खयाल आया कि मीना होश में नहीं है। पूछने लगा—अच्छा, तुम लन्दन गई थीं तो तुम्हारा पासपोर्ट कहां है ?

—मेरे पर्स में···

—मुझे दिखाओ, पर्स कहां है ?

—वहां, घर···अलमारी में···

पर्स पास नहीं था, इसलिए पासपोर्ट नहीं दिखाया जा सकता था। दलीप ने सिर्फ इतना कहा—नहीं, मैं नहीं मान सकता···

मीन अपने ही ध्यान में थी। दलीप की बांह पकड़कर कांपते हुए कह रही थी—परसों एयरपोर्ट पर कस्टम वालों ने मेरे सूटकेस देखे थे···यह किताब मेरे सूटकेस में थी···उन्होंने देखी थी···पर उस समय उन्हें मालूम नहीं था···

दलीप की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, तो भी उसने पूछा—पर तुम्हें मालूम था ?

—नहीं, मुझे भी मालूम नहीं था···

—यह किताब तुम्हें किसने दी थी ?

—पापा ने···

—तुम लन्दन किसके साथ गई थीं ?

—पापा के साथ · मीना ने कहा, और दलीप के हाथ को अपनी ओर करके, अपने दोनों हाथों में कसकर पकड़ते हुए कहने लगी—इन पापा के साथ नहीं दलीप !

—फिर और किन पापा के साथ ?—दलीप ने पूछा, तो जवाब में मीना की आवाज का कंपन कम हो गया। लगा, वह केवल हीरों की बात से इतनी घबराई हुई थी, अपने या अपनी मां के रहस्य की बात से नहीं···

एक व्यंग्य-सा उसके होंठों पर आया, पर अब उसकी आवाज संभली हुई थी, कहने लगी—असल में मैं इन पापा की लड़की नहीं हूं···इन पापा के एक दोस्त थे ···मैं उनकी लड़की हूं···

अब दलीप कुछ घबराकर मीना की ओर देखने लगा। देखा कि मीना की आंखों में पानी आ गया है। कहने लगी—मैंने इसीलिए तुम्हें पहले नहीं बताया था। मैं जानती थी, यह बात सुनकर तुम मुझे छोड़ दोगे · मैं गैरकानूनी·· मीना की आवाज उसके गले में डूब गई।

—नहीं मीना ! यह बात नहीं···दलीप कुछ घबराया हुआ-सा इस बार पलंग की पट्टी से उठकर खड़ा हो गया, पर कोई मिनट-भर के लिए खिड़की के पास खड़े होकर इधर को आ गया और मीना के पलंग की पट्टी पर चुपचाप बैठ गया।

—मेरे असली पिता का नाम देसराज मलिक है···मीना ने दलीप के आगे, और किस्मत के आगे, मन में जो कुछ था, सबका सब रख दिया।

दलीप फिर घबराकर पलंग की पट्टी पर से उठ गया, पर परे खिड़की की ओर जाने लगा तो अचानक उसके पांव रुक गए, जल्दी से पीछे मीना की ओर मुड़ते हुए कहा—तुमने क्या कहा था ? तुम किसके साथ लन्दन गई थीं ?

—देसराज मलिक पापाजी के साथ···

दलीप को हंसी आ गई, कहने लगा—एक बार तो तुमने मुझे भी चक्कर में डाल दिया—फिर पूछने लगा—तुमने देसराज मलिक को देखा है ?

मीना की समझ में न दलीप की हंसी आई, न सवाल। कहने लगी—वह तुम्हें याद है न, एक काली कार मेरा पीछा करती थी, वह पापा ने ही मुझे बुलाने के लिए भेजी थी। वह यहां अशोका होटल में आए हुए थे···

—ओ, गॉड !—मीना के माथे को छूते हुए दलीप के हाथ कांपने लगे। वह कहे जा रहा था—तुम सचमुच जिन्दा हो न ? तुम सही-सलामत लन्दन से आ गई हो ?···तुम कहां चली गई थीं···

मीना को लगा कि दलीप को अभी भी पूरी बात का पता नहीं लग रहा है। कहने लगी—पापा बीमार रहते हैं। उनका मन करता था, मुझे एक बार अपने साथ लन्दन ले जाएं···मैं चली गई···पर अब मुझे यह अखबार देखकर लगा है कि वह कोई बहुत गलत काम करते हैं···शायद तभी उनके पास इतना पैसा है···

दलीप ने लम्बा सांस लिया, कहा—मीना ! तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। जव उस कार वाले ने तुमसे कुछ कहा था, तुम्हें चाहिए था, मुझे बता देतीं।

—यही राबर्ट था कार का ड्राइवर···

—और जिस आदमी ने तुम्हें बुलाया था, वह था कार का मालिक ?

—हां···

—तुमने मुझे तब बताया क्यों नहीं ?

—दलीप !—मीना कुछ देर चुप रही, फिर कहने लगी—बता तो दिया है, तब सोचती थी, तुम्हें पता लगेगा तो तुम मुझे छोड़ दोगे···

दलीप ने मीना के होंठों के पास झुककर जिन्दगी में पहली बार उसके होंठ चूमे। कहा—तुम पागल हो। जिस दुनिया पर तुम्हें विश्वास नहीं करना चाहिए था, उस पर तुमने विश्वास कर लिया; पर जिस कम्बख्त दलीप पर तुम्हें विश्वास करना चाहिए था, उस पर नहीं किया ··

—क्या मतलब ?—मीना उसकी ओर देखने लगी।

—पहली बात तो यह कि यह बात ही गलत है। और दूसरी बात यह है कि अगर ठीक भी होती तो तुम्हारा दलीप ऐसा घटिया आदमी नहीं कि वह इस बात की वजह से तुमसे रिश्ता तोड़ देता

—पर दलीप···

—ठहरो, मेरी बात सुनो। देसराज मलिक तुम्हारे पापा के दोस्त थे, पर वह तुम्हारी मां को वहन समान समझते थे। पर ठहरो, यह शब्द भी क्यों बरता जाए, क्या पुरुषों और स्त्रियों में दोस्ती जैसी चीज नहीं हो सकती ? वह थी, पर उस दोस्ती में जरा भी झूठ शामिल नहीं था। पर तुम्हारे पापा की समझ में यह बात नहीं आई। इसलिए वह गलतफहमी के डर से तुम्हारे पापा की जिन्दगी से दूर चले गए···

—दलीप ! तुम मेरी बात तो सुनो।

—क्या सुनूं ? तुम्हें कुछ मालूम हीं नहीं है। यह देसराजजी ने मुझे खुद बताया था। तुम नहीं जानतीं, किसने क्या कहा है—दलीप ने मीना के दोनों कंधों को झंझोड़कर गुस्से से कहा—तुम मुझे उस समय जरा भी बता देतीं, तो मैं तुम्हें उसी समय होशियार कर देता। वह न जाने कौन था, जिसके साथ तुम लन्दन गई थीं।

—पर वह मुझे बेटी कहता था···

—हां, तुम्हें बेटी-वेटी कहता रहा होगा, क्योंकि वैसे तो वह तुम्हें लन्दन नहीं ले जा सकता था···

—पर वह···

—उसे तुमसे सिर्फ एक मतलब था मीना ! उसे तुम्हारे जरिए वे हीरे यहां मंगवाने थे···

मीना को बात का तार सुलझता हुआ लगा। अब उसे दिखाई देने लगा कि उस आदमी को पुलिस जरूर पहचानती होगी। वह कस्टम से किसी तरह भी नहीं गुजर सकता था। उसका कोई आदमी भी नहीं गुजर सकता था। उन लोगों को किसी ऐसे आदमी की जरूरत थी जिसे कुछ पता न हो और जिस पर पुलिस की नजर न हो···

एक-एक बात स्पष्ट हो रही थी। उसे कार की ड्राइविंग भी इसीलिए सिखाई थी कि वह जब कार को बम्बई ले जाएगी तो किसी को उस कार पर शक नहीं होगा। राबर्ट किस तरह उसकी मिन्नतें करता रहा था कि वह कार चलाकर बम्बई छोड़ आए।

मीना ने दलीप को सब कुछ विस्तार से बताया। यह भी कहा—अब मुझे लगता है, अगर मैं उसकी लड़की होती तो वह इस तरह खतरे में न डालता—और मीना ने दलीप से पूछा—पर तुम्हें किस तरह मालूम है कि वह देसराज मलिक नहीं था ?

दलीप हंस दिया—वह नहीं था मीना, वह नहीं था। पता नहीं कौन था। देसराज मलिक मेरे अपने पिताजी का नाम है।

—तुम्हारे पिताजी···

—तुमने उस दिन फार्म पर उन्हें देखा था···

—उस दिन···

—तुम्हें याद नहीं ? तुम जब चाय पीकर गेहूं के खेत की ओर गई थीं, तो मैं पीछे रह गया था। उन्होंने मुझसे यही कहा था कि अगर मैं तुम्हारे साथ ब्याह करना चाहता हूं, तो अभी तुम्हारे पापाजी को उनका नाम न बताऊं। वह किसी दिन खुद जाकर उनसे मिल लेंगे···

—ओ गॉड !—मीना को यकीन नहीं आ रहा था कि वह कौन-कौन-सी जगहों से गुजरकर आई थी, और अभी तक जिन्दा थी···

—पर, दलीप, उस आदमी ने मुझे वह तस्वीर भी दिखाई थी जो मेरे पहले जन्मदिन की थी, और जिस दिन···मीना ने चौंककर कहा—पर वह तस्वीर उसने कहां से ली ?

—मैंने वह तस्वीर नहीं देखी है, पर यह बात पिताजी से सुनी है···उस आदमी को यह बात जरूर कहीं से पता चल गई होगी···तस्वीर उसने कहां से ली, किस तरह ली, उसकी खोज करनी पड़ेगी···

—पर, दलीप, अब वे लोग पकड़े जाएंगे, तो इसमें मेरा नाम भी आएगा ?

—शायद नहीं, क्योंकि इसमें उन लोगों को कोई फायदा नहीं···पर अगर आए भी तो इसमें तुम्हारा क्या कसूर है···अब हम सब संभाल लेंगे···

—आप सब···? पर यह बात मैं पापा को किस तरह बताऊंगी ?

—मैं खुद धीरे-धीरे बता दूंगा, तुम कुछ मत कहना—दलीप ने कहा, और मीना ने कई दिनों का थका हुआ सर दलीप के घुटने पर रख दिया···

दिन कब का ढल गया था। बाहर रात उतरने को थी। दलीप जाकर एक टैक्सी ले आया और मीना को उसके घर छोड़ने चला गया।

घर पहुंचकर मीना अन्दर चली गई, पर दलीप दहलीज में ही खड़ा रहा। सामने मीना के पापाजी बैठे हुए थे। दलीप वहीं खड़ा हुआ कहने लगा—अगर इजाजत दें तो अन्दर आ जाऊं? दादीजी कहती थीं न कि मत आना।

पापा हंसने लगे, और जरा दूर बैठी हुई अपनी मां की ओर देखते हुए कहने लगे—अरे ओ लड़की की दीदी! लड़का अन्दर नहीं आ रहा है, दरवाजे पर तेल देकर अन्दर लंघाओ···

दलीप अन्दर आते हुए बोला—पापाजी, मेरी तो कोई बात नहीं, पर आपका बीसों बरस का रूठा हुआ दोस्त जब आएगा, उसे तेल चुआकर अन्दर लंघाइएगा···

—कौन?—पापा कुछ हैरान-से दलीप की ओर देखने लगे।

—आपका दोस्त—देसराज मलिक। मैं उनका लड़का हूं।

मीना की मां दलीप के बैठने के लिए कुर्सी आगे रख रही थी, पर कुर्सी उसके हाथ से जैसे छिटक गई। मुंह से निकला—सच रे!—और उसने कसकर दलीप का माथा चूम लिया।

मीना के पापाजी जोर-जोर से हंसने लगे। कहने लगे—रब भी अजीब चीज है। मैं तमाम उम्र सोचता रहा कि मैं उस मलिकजादे को पहले नहीं बुलाऊंगा, वह आप आकर पहले मुझे बुलाए, और वह भी ससुरी का यही सोचता होगा। सो, रब ने कहा कि तुम दोनों जने रूठकर बैठे रहो, मैं तुम्हें ऐसे लड़कियां-लड़के दूंगा कि···

—हाय, यह मेरे देसे का बेटा है!—कहते हुए दादी जब इधर दलीप के पास आकर उसका सिर चूमने लगी तो दलीप ने परे अपने कमरे के दरवाजे में खड़ी हुई मीना की ओर देखा और हंस दिया।

—आज तो मैं बावली हो जाऊंगी।—कहते हुए मीना की मां ने अन्दर चूल्हे पर चाय का पानी रखा और फिर बाहर दलीप के पास आकर बैठते हुए कहा—वह निगोड़ा है कहां?

दादी हंसने लगी— अरी, अब तो तेरा समधी लगता है, जरा आदर-भाव से बोल।

मीना अन्दर रसोई से चाय बनाकर ले आई, तो मेज पर प्याले रखते हुए कहने लगी—अन्दर सब प्याले धुलने वाले थे, राधा कहां चली गई?

मां प्यालों में चाय डालते हुए बोली—उस बिचारी के कर्मों में सुख नहीं। लड़की का ब्याह करके फारिग हुई थी, पर लड़की घर आकर बैठ गई। जंवाई

खराब निकला। पहले कहीं जाकर ईसाई बन गया, आज सुना है कि उसने कोई हीरे चुराए हैं, और उसे पुलिस ने पकड़ लिया है···

—क्या ?—मीना ने चौंककर पहले मां की ओर देखा, फिर दलीप की ओर।

—और, बुरे कामों के बुरे नतीजे—मां कह रही थी। तभी दलीप ने पूछा—उसका नाम क्या था ? वही खबर होगी जो आज अखबार में थी ?

—अरे, नाम तो उसका अच्छा-भला था, रामचन्द्र। बाद में किसी लड़की के चक्कर में आकर राबर्ट बन गया—मां ने बताया और चाय का प्याला दलीप को देते हुए कहने लगी—फिर अब उससे पूछना, अभी उसका गुस्सा उतरा है कि नहीं।

बात का रुख फिर दलीप के पिताजी की तरफ मुड़ गया था। दलीप ने चाय के एक-दो घूंट भरकर कहा—अच्छा मां, वह तस्वीर तो दिखाओ, मीना के जन्म-दिन वाली, जब पिताजी ने उसके लिए सितारों वाला फ्राक बनवाया था।

मां अन्दर से जाकर तस्वीर ले आई और दिखाते हुए पूछने लगी—हैं रे, कभी पुरानी बातें करता है ? मैंने तो सोचा था कि उसे कुछ ध्यान ही नहीं होगा।

दलीप हंसने लगा, कहने लगा—अगर वह बातें न करते तो मुझे इस सितारों वाले फ्राक का क्या पता होता !—और तस्वीर को देखते हुए कहने लगा—पर यह तस्वीर मैंने पहले भी कहीं देखी है, न जाने कहां, शायद पिताजी के पास देखी थी···या शायद बात सुनकर ही लगने लगा कि तस्वीर देखी थी···

मां कहने लगी—अरे, कैसे ? वह तो तस्वीर खिंचने से पहले ही रूठकर चला गया था···नहीं, सच, तस्वीर खिचवाने लगे थे तो रूठकर चला गया···उसके पास कहां से आ सकती थी ? यह तो बस दो कापियां थीं; एक यह, मैंने संभालकर रखी हुई है, दूसरी राधा ने ले ली थी। सब लोगों के बीच में वह भी तो खड़ी हुई है···

मीना ने हैरान होकर दलीप की ओर देखा—मानो वह जिन्दगी के गहरे अर्थों की ओर देख रही हो।

दलीप ने सब अर्थों को खोलने वाली नजर से एक बार मीना की ओर देखा, फिर उठते हुए कहने लगा—पापाजी ! परसों आपकी इतवार की छुट्टी है, चलिए, सब पिताजी से मिलने फार्म पर चलेंगे···

भारतीय राजदूतावास, काठमाण्डौ, नेपालको
सौजन्यबाट सप्रेम भेंट
8045
7143

राजपाल एण्ड सन्ज़, द्वारा संचालित

साहित्य परिवार

के सदस्य बनकर रियायती मूल्य
पर मनपसन्द पुस्तकें मंगाइए और अपनी
निजी लायब्रेरी बनाइए
विशेष छूट तथा फ्री डाक-व्यय की **सुविधा**
नियमावली के लिए लिखें :

साहित्य परिवार

राजपाल एण्ड सन्ज,
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट,
दिल्ली-110006

जलते बुझते लोग